

शिक्षा के नूतन आयाम
New Dimensions in Education
BAED202

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
01	विशेष शिक्षा: संप्रत्यय, कार्य क्षेत्र एवं सिद्धान्त (Special Education: Concept, Scope and Principles)	१-१७
02	विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यविशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व , (Objectives of Special Education, Need and Significance of Special Education)	१८-३८
03	विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकार व विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ (Types of Special Education Services and Limitations of Special Education)	३९-६३
04	शिक्षा में समावेशन की अवधारणा तथा शिक्षा में समावेशन के अवयव (Concept of Inclusion in Education, Components of Inclusion in Education)	६४-८४
05	समावेशित शिक्षा के लाभ, समावेशित शिक्षा में मुद्दे (Advantages of Inclusive Education, Issues in Inclusive Education)	८५-१०५
06	मुक्त व दूरवर्ती शिक्षा: अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता, और मुख्य विशेषताएं (Meaning, definition, need and characteristic features, of Open and Distance Education)	१०६-११८
07	दूरवर्ती शिक्षार्थी: प्रकृति, विशेषतायें तथा प्रकार (Distance Learners: Nature and Characteristics and Types of Learners)	११९-१२७
08	दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री- अर्थ, प्रकार व महत्व (Study Materials in Distance Education- Meaning, Types, and Their Importance)	१२८-१५१
09	दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन तकनीकी (Evaluation Techniques in Distance Education)	१५२- १६८
10	मुक्त एवं दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श का संप्रत्यय, आवश्यकता व महत्व (Concept, Need and Importance of Counseling in Open and Distance Education)	१६९-१९२
11	प्रौढ़ शिक्षा: अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसका महत्व (Adult Education: Meaning, Nature, Objectives and Its Significance)	१९३-२०८
12	जीवन पर्यन्त अधिगम: अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसका महत्व (Life Long Learning: Meaning, Nature, Objectives and Its Significance)	२०९-२२४
13	सतत शिक्षा: अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य व महत्व (Continuing Education : Meaning, Nature and Objectives, and Its Significance)	२२५-२३९

14	पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education: Its Meaning, Nature and Objectives)	२४० -२५७
15	पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार व इनका मानव जीवन पर प्रभाव (Types of Environmental Pollution and their effects on Human life)	२५८ -२८३
16	पर्यावरण संरक्षण की विधियां व कार्यक्रम (Methods and Programmes for Environmental Conservation)	२८४ -३०३
17	जनसंख्या शिक्षा: इसका संप्रत्यय, प्रकृति, उद्देश्य एवं महत्व (Population Education: Concept, Nature, Objectives and its significance)	३०४ -३२२
18	जनसंख्या नियंत्रण हेतु शैक्षिक कार्यक्रम (Educational Programmes for Population Control)	३२३ -३३७

इकाई -1 विशेष शिक्षा: संप्रत्यय, कार्य क्षेत्र एवं सिद्धान्त (Special Education: Concept, Scope and Principles)

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 विशेष शिक्षा: संप्रत्यय, परिभाषा
- 1.4 विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य
- 1.5 विशिष्ट शिक्षा का कार्य क्षेत्र
 - 1.5.1 पहचान
 - 1.5.2 दृष्टिबाधित बालकों की शिक्षा
 - 1.5.3 श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा
 - 1.5.4 मानसिक मंद बालकों की शिक्षा
 - 1.5.5 अधिगम अक्षम बालकों की शिक्षा
 - 1.5.6 बहुविकलांग बालकों की शिक्षा
 - 1.5.7 व्यवहार का अध्ययन
 - 1.5.8 व्यक्तित्व विकास का अध्ययन
 - 1.5.9 मापन एवं मूल्यांकन
 - 1.5.10 निर्देशन एवं मानसिक स्वास्थ्य
 - 1.5.11 सीखने की परिस्थिति
 - 1.5.12 उपचार
 - 1.5.13 पुनर्वास
- 1.6 विशिष्ट शिक्षा के सिद्धान्त
- 1.7 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता
- 1.8 विशिष्ट बालकों के प्रकार
 - 1.8.1 दृष्टि बाधित बालक
 - 1.8.2 श्रवण बाधित बालक
 - 1.8.3 मानसिक मंद बालक
 - 1.8.4 अधिगम अक्षम बालक

-
- 1.8.5 अस्थि विकलांग बालक
 - 1.8.6 प्रतिभाशाली बालक
 - 1.8.7 बहुविकलांग बालक
 - 1.9 विशिष्ट शिक्षा के लाभ
 - 1.10 सारांश
 - 1.11 शब्दावली
 - 1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 1.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 1.14 निबंधात्मक प्रश्न
-

1.1 प्रस्तावना:

विशिष्ट शिक्षा के तहत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को विद्यालय, परिवार, समाज के अनुकूल समायोजित करने का प्रयास किया जाता है ताकि वे अपनी दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को हल करने में सक्षम हो सके।

प्रस्तुत इकाई में आप विशिष्ट शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, इसके उद्देश्य, आवश्यकता, सिद्धान्त, कार्यक्षेत्र एवं इससे होने वाले लाभों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- विशिष्ट शिक्षा का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
 - विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों को बता सकेंगे।
 - विशिष्ट शिक्षा के कार्य क्षेत्र को बता सकेंगे।
 - विशिष्ट शिक्षा के सिद्धान्तों को बता सकेंगे।
 - विशिष्ट शिक्षा के आवश्यकता को बता सकेंगे।
 - विशिष्ट शिक्षा से होने वाले लाभों को बता सकेंगे।
-

1.3 विशिष्ट शिक्षा:

विशिष्ट शिक्षा (Special Education) शिक्षाशास्त्र की एक ऐसी शाखा है जिसके अन्तर्गत उन बच्चों को शिक्षा दी जाती है जो सामान्य बच्चों से शारीरिक मानसिक और समाजिक क्षेत्रों

में कुछ अलग होते हैं। इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएँ भी सामान्य बच्चों से कुछ विशिष्ट होती है यही कारण है कि इनको विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक (Children with special needs) भी कहा जाता है। ये बच्चे अपनी सहायता स्वयं नहीं कर पाते। अतः इनकी सहायता के लिए तथा इनको सक्षम बनाने के लिए, विद्यालय, परिवार, समाज और परिवार में समायोजन के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा दी जाती है, जिससे वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूर्ति करने में स्वयं समर्थ हो सकें। इनकी सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है। अतः कहा जा सकता है कि "विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट रूप से तैयार किया गया एक शैक्षिक अनुदेशन है जिससे शैक्षणिक गतिविधियों, विशेष पाठ्यक्रम और विशेष शिक्षक के द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षण अधिगम सुविधा उपलब्ध करायी जाती है।" अतः विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अलग विद्यालयों में विशेष ढंग से दी जाने वाली शिक्षा की विशिष्ट शिक्षा कहते हैं।

1.3.1 परिभाषाएँ (Definitions) :

विशिष्ट शिक्षा, शिक्षाशास्त्र की एक ऐसी शाखा है जिसका संबंध विशिष्ट बालकों के शिक्षा एवं उनके समस्याओं से है। इस तरह कहा जा सकता है कि विशिष्ट शिक्षा, विशिष्ट बालकों के शिक्षा से संबंध समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है। इस मूल तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम कुछ शिक्षाशास्त्रियों द्वारा विशिष्ट शिक्षा की दी गई परिभाषाओं को इस प्रकार उद्धृत कर सकते हैं-

किर्क के अनुसार (1962):- " 'विशिष्ट शिक्षा' शब्द शिक्षा के उन पहलुओं को इंगित करता है जिसे विकलांग एवं प्रतिभाशाली बच्चों के लिए किया जाता है, लेकिन औसत बालकों के मामलों में प्रयुक्त नहीं होता। "

हल्लहन और कॉफमैन के अनुसार:- "विशेष शिक्षा का अर्थ विशेष रूप से तैयार किये गये साधनों के द्वारा विशिष्ट बच्चों को प्रशिक्षण देना है। इसके लिए विशिष्ट साधन, अध्यापन तकनीक, उपकरण तथा अन्य सुविधाओं की आवश्यकता होती है।"

विकलांग शिक्षा अधिनियम के अनुसार:- "विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट रूप से डिजाइन किया गया अनुदेशन है जो विकलांग बच्चों की अतुलनीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो। इसमें वर्ग कक्ष अनुदेशन गृह अनुदेशन एवं अस्पतालीय एवं संस्थानीय अनुदेशन भी शामिल है।"

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें विशेष शिक्षा (विशिष्ट शिक्षा) का अर्थ एवं स्वरूप के बारे में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं:-

1. विशेष शिक्षा विशिष्ट बालकों जैसे- दृष्टिबाधित, श्रवण अक्षम, मानसिक मंद, अधिगम अक्षम प्रतिभाशाली बालकों के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया अनुदेशन है।
2. विशेष शिक्षा में विशेष साधनों जैसे- ब्रेल, एवेकस, Sign Language, ट्रेलर फ्रेम इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।
3. इसमें कुछ विशिष्ट शिक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है।
4. यह अनुदेशन विशिष्ट बालकों के लिए ही लाभप्रद होती है न कि सामान्य बालकों के लिए।

1.4 विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Special Education) :-

विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- वर्ग कक्षा में विकलांग बच्चों के शिक्षण अधिगम क्षमता एवं कौशलों का आकलन करना।
- विशिष्ट बालकों की पहचान करना।
- विशिष्ट बालकों की शक्तियाँ एवं कमजोरियों की पहचान करना।
- नियमित कक्षाओं में विकलांग बच्चों के सुव्यवस्थित रूप से पढ़ने-लिखने संबंधी भौतिक एवं अकादमिक अनुकूलन करना।
- विकलांग बच्चों की मुख्य धारा में लाने वाली गतिविधियों के लिए योजना तैयार करना।
- अभिभावक एवं समुदाय में विकलांगता के रोकथाम के लिए योजना तैयार करना एवं उसे प्रस्तुत करना।
- पुनर्वास विशेषज्ञों एवं विद्यालय के कर्मचारियों के बीच परामर्शात्मक संबंध कायम करना।
- विशिष्ट शिक्षक एवं सामान्य शिक्षक के मध्य संबंध स्थापित करना।
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को मुख्य धारा की कक्षा में दाखिले के लिए कार्यक्रम का निर्माण करना।
- विद्यालय के भौतिक वातावरण को विकलांग बच्चों के उपयोगिता के अनुरूप बनाना।
- सामान्य कक्षा के शिक्षकों और छात्रों को विकलांग बच्चों की देखभाल के लिए मानसिक रूप से तैयार करना।
- विकलांग बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं के मापन के लिए सूचनाओं का संग्रह करना।
- विकलांग बच्चों की वर्तमान क्रियाकलापों का आकलन करना।

- विकलांग बच्चों के शैक्षिक लक्ष्यों का निर्धारण करना।
- बच्चों के लक्ष्य निर्धारण में समाज, माता-पिता एवं विद्यालय के मध्य संबंध कायम करना।
- विकलांग बालकों के पुनर्वास के लिए कार्यक्रम तैयार करना।
- विकलांग बच्चों के लिए शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण करना।
- गतिविधि आधारित शिक्षण कार्यक्रम का निर्माण करना।
- वैकल्पिक शैक्षिक रणनीतियों को डिजाइन करना।
- बालकों के पुनर्वास के लिए मानव संसाधन का विकास करना।

अभ्यास प्रश्न:- 1

1. विकलांग बालकों की शैक्षिक लक्ष्यों का निर्धारण के द्वारा होता है।
2. विशिष्ट शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य बालकों को पहचान करना है।

1.5 विशिष्ट शिक्षा का कार्य क्षेत्र:-

विशिष्ट बालकों एवं उनके व्यक्तित्व से संबंधित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करना विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र के अंतर्गत आता है। इसके विषय वस्तु के अंतर्गत विशिष्ट बालकों के पहचान उनकी शिक्षा, निर्देशन, निदान उनके व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित समस्याओं पर विचार किया जाता है।

- 1.5.1 **पहचान (Identification):-** विशिष्ट बालकों की पहचान करना विशिष्ट शिक्षा की मुख्य विषयवस्तु है। इसके अन्तर्गत दृष्टिबाधित श्रवण बाधित, मानसिक मंद, अधिगम अक्षम, बुद्धिमान बालकों की पहचान इनकी विशेषताओं के आधार पर किया जाता है। यद्यपि इन बालकों को पहचान करने के लिए अलग-अलग तरह के यंत्रों एवं विधियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे दृष्टि बाधित बालकों को पहचान करने के लिए स्नैलेन चार्ट, श्रवण बाधितों के लिए ऑडियोमीटर, मानसिक मंद बालकों के लिए बुद्धि परीक्षण प्रयुक्त किया जाता है।
- 1.5.2 **दृष्टि बाधित बालकों की शिक्षा:-** दृष्टि बाधित बालक वे बालक होते हैं जो ठीक प्रकार से देख पाने में असमर्थ होते हैं। ऐसे बालक भी दो प्रकार के होते हैं- पूर्ण दृष्टिबाधित एवं अल्प दृष्टि वाले बालक। विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत इन बालकों की शैक्षिक

- आवश्यकताएँ जैसे- ब्रेल, एवेकस, ट्रेलर फ्रेम, परिवर्धित मानचित्र के बारे में अध्ययन किया जाता है।
- 1.5.3 **श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा:-** विशिष्ट शिक्षा, शिक्षाशास्त्र की एक शाखा के जिसके अर्न्तगत श्रवण बाधित बालकों की पहचान, उनके प्रकार, शिक्षा, शिक्षा की विधि श्रवण बाधिता के कारण उसके परिणाम इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। इनके शिक्षण विधि में ओष्ठ पठन फिंगर स्पेलिंग, संकेत भाषा, स्पीच रीडिंग आदि प्रमुख है। विशेष शिक्षा के अर्न्तगत इन सभी शिक्षण विधियों का अध्ययन किया जाता है।
- 1.5.4 **मानसिक मंद बालकों की शिक्षा:-** मानसिक रूप से मंद बालक एक विशिष्ट प्रकार के बालक होते हैं। इसके अर्न्तगत वे बालक आते हैं जिनको बुद्धि स्तर तथा सोचने समझने की क्षमता सामान्य बालकों से कम होती है तथा वे समाज के साथ समायोजन करने में असमर्थ होते हैं। ऐसे बालकों की मानसिक बाधिता के परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। इन बालकों की पहचान, मानसिक मंदता के कारण, मानसिक मंद बालकों के प्रकार, उनकी शिक्षा एवं ऐसे बालकों की समस्याओं का अध्ययन विशिष्ट शिक्षा में किया जाता है।
- 1.5.5 **अधिगम अक्षम बालकों की शिक्षा:-** अधिगम अक्षम जैसे बालक होते हैं जिनकी बुद्धिलब्धि अन्य सामान्य बालकों के समान होती है। लेकिन ऐसे बालकों को पढ़ने-लिखने, गणितीय क्रियाओं में कठिनाई होती है। इनकी शिक्षण विधि भी सामान्य बालकों से अलग होता है। विशिष्ट शिक्षा के अर्न्तगत ऐसे बालकों की समस्या एवं शिक्षण विधियों का अध्ययन किया जाता है।
- 1.5.6 **बहुविकलांग बालकों की शिक्षा:-** विशिष्ट शिक्षा के द्वारा जैसे बालकों को भी शिक्षा प्रदान की जाती है जो बहुविकलांग होते हैं। बहुविकलांग जैसे बालक होते हैं, जो एक से अधिक विकलांगता से ग्रसित होते हैं। ऐसे बालकों को शिक्षण में कई परेशानियाँ होती है।
- 1.5.7 **व्यवहार का अध्ययन:-** विशिष्ट शिक्षा के द्वारा विशिष्ट बालकों के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। इन व्यवहारों के आधार पर इनके शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है।
- 1.5.8 **व्यक्तित्व विकास का अध्ययन:-** इसके अर्न्तगत विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले विकलांग व्यक्तियों के व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया, निर्धारक एवं प्रभावक कारकों का अध्ययन किया जाता है।
- 1.5.9 **मापन एवं मूल्यांकन:-** विशिष्ट शिक्षा के द्वारा विशिष्ट बालकों की शैक्षिक उपलब्धियों के मापन तथा मूल्यांकन पर भी जोड़ डालते हैं। शिक्षार्थी की समुचित शिक्षा के लिए आवश्यक है कि शिक्षार्थी की बुद्धि, अभिरूचि, मनोवृत्ति, अभिक्षमता की माप किया जाय तथा उसकी उपलब्धियों का सही-सही मूल्यांकन किया जाय। विशिष्ट शिक्षा के द्वारा इस तरह के मापन एवं मूल्यांकन के अध्ययन पर विशेष बल डाला जाता है, ताकि शिक्षा अर्थपूर्ण एवं लाभप्रद हो सके।

- 1.5.10 **निर्देशन एवं मानसिक स्वास्थ्य:-** विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्षेत्र में निर्देशन तथा शिक्षार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की प्रधानता बताई गई है। विशिष्ट बालकों को निर्देशन तीन स्तर पर दिये जाते हैं- वैयक्तिक निर्देशन, शैक्षिक निर्देशन तथा व्यावसायिक निर्देशन। विशिष्ट शिक्षक इन तीनों प्रकार के निर्देशनों का उचित प्रबंध करके शिक्षार्थियों को अपने सामर्थ्य के अनुसार अनुकूलन समायोजन में मदद करता है। इतना ही नहीं विशिष्ट शिक्षा के द्वारा शिक्षक विशिष्ट बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में सक्षम हो पाते हैं।
- 1.5.11 **सीखने की परिस्थिति:-** मनोविज्ञान के अनुसार सीखने की परिस्थिति बालकों के सीखने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावित करता है। इसमें शिक्षक की मनोवृत्ति (Attitude), वर्ग या कक्षा की परिस्थिति, विद्यालय की सांवेगिक आवोहवा आदि को महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इन सब कारकों से सीखने की परिस्थिति का निर्माण होता है। जब सीखने की परिस्थिति ऐसी होती है जिसमें बालकों की मनोवृत्ति अनुकूल होती है, वर्ग में विशिष्ट बालकों को बैठने की आरामदेह जगह होती है, कमरा साफ सुथरा होता है, रोशनी की व्यवस्था अच्छी होती है, व विद्यालय में अधिक कोलाहल नहीं होता है तो शिक्षा अधिक लाभप्रद एवं अर्थपूर्ण होती है। इस प्रकार विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्षेत्र में इस तथ्य का भी पता लगाना है कि विद्यालय का वातावरण कैसा है।
- 1.5.12 **उपचार:-** विशिष्ट बालकों को समय-समय पर अनेक तरह के स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न होती है। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न तरह के विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। इन विशेषज्ञों में ऑडियोलॉजिस्ट, चिकित्सा मनोवैज्ञानिक, डॉक्टर, हियरिंग एवं इयर मोल्ड टैक्नीशियन, स्पीच पैथोलॉजिस्ट, रिहैबिलिटेशन साइकोलाजिस्ट हैं। इन सभी विशेषज्ञों का कार्य विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आता है।
- 1.5.13 **पुनर्वास:-** विशिष्ट शिक्षा का एक प्रमुख कार्यक्षेत्र विकलांग व्यक्तियों को सामाजिक, व्यावसायिक, मानसिक रूप से पुनर्वासित करना है। पुनर्वास से तात्पर्य विकलांग व्यक्तियों को शारीरिक, सांवेगिक, बौद्धिक, मनोचिकित्सकीय अथवा समाजिक क्षेत्र में जिसमें भी सम्बद्ध विकलांगता के कारण, व्यक्ति विकलांगता के कारण पिछड़ा हो तो पुनर्वास प्रक्रिया के द्वारा वह व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार अधिकतम स्तर को प्राप्त कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न 2 :-

1. ऑडियोमीटर बालकों को जॉच के लिए प्रयुक्त किया जाता है।
2. बौद्धिक परीक्षण को पता करने के लिए किया जाता है।
3. ब्रेल लिपि का प्रयोग बालक करते हैं।

1.6 विशिष्ट शिक्षा के सिद्धान्त (Principles of Special Education):

विशिष्ट शिक्षा निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है:-

- **कोई निरस्त नहीं (No one is Rejected) :-** शारीरिक रूप से बाधित सभी बालकों को निःशुल्क उपयुक्त शिक्षा मिलनी चाहिए। सामान्य शिक्षा संस्थाओं में किसी बालक को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का विकल्प किसी विद्यालय के व्यवस्था में नहीं है।
- **व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर शिक्षा:-** प्रत्येक विशिष्ट बालक में कुछ न कुछ विभिन्नताएँ होती हैं। कुछ छात्र अन्य छात्रों से अधिकांश गुणों में सर्वथा भिन्न होते हैं जो शिक्षा की ओर विशेष झुकाव रखते हैं। ऐसे छात्रों को विशेष शिक्षण आवश्यकताएँ विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से पूरी करनी चाहिए।
- **अविभेदी शिक्षा:-** ऐसे बालकों की पहचान करनी चाहिए जो विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, जिससे उन्हें दी जाने वाली शिक्षा को उपयुक्त स्वरूप सुनिश्चित किया जा सके। प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत रूप से मूल्यांकन होना चाहिए। इसके पश्चात् सभी छात्रों को उसके विशिष्ट आवश्यकता के अनुसार शिक्षण कार्यक्रम रखा जाना चाहिए।
- **वैयक्तिक शिक्षा कार्यक्रम:-** जिन बालकों को विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है उन्हें व्यक्तिगत शिक्षा कार्यक्रम या तो विशिष्ट कक्षाओं में दिया जाना चाहिए या उनसे संबंधित संसाधन युक्त कक्षाओं में इस प्रकार की शिक्षा उन बालकों की वर्तमान कार्यप्रणाली और विशेष आवश्यकताओं के अनुसार होनी चाहिए। इसके लिए अभिक्रमित अनुदेशन को भी प्रयुक्त किया जाता है।
- **विशिष्ट प्रक्रिया (Special Process):-** विशिष्ट शिक्षा एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक विशेष शिक्षक विकलांग बालकों को संसाधन कक्ष, विशिष्ट उपकरण युक्त कक्षा-कक्ष में शिक्षा प्रदान करते हैं।
- **नियंत्रित वातावरण:-** जहाँ तक संभव हो शारीरिक रूप से बाधित बालक तथा सामान्य बालकों की शिक्षा एक ही कक्षा कक्ष में साथ-साथ होनी चाहिए। यह कक्षा सामान्य हो सकती है। सामान्य कक्षा विकलांग बालकों को न्यूनतम विघ्न डालने वाला वातावरण होना चाहिए।
- **माता-पिता का सहयोग:-** यदि शारीरिक रूप से बाधित बालकों के माता-पिता भी शिक्षण कार्यक्रमों में रुचि लेते हैं तो विशिष्ट शिक्षण कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

- **समुदाय की भागीदारी:-** विशिष्ट शिक्षा में समुदाय के व्यक्तियों की भागीदारी होने से यह अधिक प्रभावशाली हो जाता है। इसमें समुदाय के व्यक्ति जितना अधिक भागीदारी लेंगे विशिष्ट बालक को समुदाय में समायोजन करने में उतनी ही आसानी होगी।
- **प्रेरणा का सिद्धान्त:-** सामान्यतः बालक जब कोई भी विषय वस्तु को सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है तो वे उस पाठ को वे जन्दी एवं आसानी से सीख लेता है। इस प्रकार एक शिक्षक को चाहिए की इन बालकों को समय-समय पर अभिप्रेरित करने रहें।

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बताइये:-

1. विशिष्ट बालकों के लिए वैयक्तिक शिक्षा कार्यक्रम आवश्यक है।
2. विशिष्ट बालकों के लिए माता-पिता का सहयोग आवश्यक नहीं है।
3. विशिष्ट बालकों के लिए नियंत्रित वातावरण होना आवश्यक है।

1.7 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता (Needs of Special Education) :-

- विशिष्ट बालक अन्य बालकों के समान ही होते हैं। सामान्य बालक के ही तरह इन बालकों के शिक्षा के उद्देश्य होते हैं, उनकी आवश्यकता भी समान होती है। इन बालकों की विशेषता यह होती है कि सामान्य बालकों की तरह उन्हें देखने, बोलने, समझने की क्षमता विकसित नहीं होती है, इसलिए इन्हें विशेष शिक्षा के द्वारा उनके उद्देश्यों को पूरा किया जाता है।
- यद्यपि इन बालकों की ज्ञानेन्द्रियाँ सही रूप से विकसित या कार्य नहीं कर पाती हैं, इसलिए इन्हें विशेष निर्देशन की आवश्यकता होती है, जो विशिष्ट शिक्षा के द्वारा पूर्ति की जाती है।
- विशिष्ट शिक्षा के द्वारा दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, मानसिक मंद, अधिगम अक्षम आदि बालकों की पहचान की जाती है।
- विशिष्ट बालक सामान्य कक्षाओं में दी जाने वाली अनुदेशन से लाभ नहीं उठा पाते हैं, क्योंकि इन बालकों की बौद्धिक क्षमता सामान्य बालकों से या तो अधिक होती है या कम होती है। सामान्य कक्षाओं में दी जाने वाली अनुदेशन सामान्य

बालकों के अनुसार होती है। इसलिए इन्हें विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता होती है।

- विशिष्ट बालकों के अभिभावकों, अध्यापकों और प्रबंधकों को बालकों की आवश्यकताओं को समझने में विशिष्ट शिक्षा से सहायता मिलती है। इस शिक्षा से विशिष्ट बालक समाज में अपना समायोजन करते हैं।
- जिन बालकों को देखने, सुनने, बोलने, समझने में समस्या होती है उन्हें सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा नहीं दी जा सकती है। अतः ऐसे बालकों के लिए विशेष पाठ्यक्रम, विधि और विशेष शिक्षकों की आवश्यकता होती है।
- प्रतिभाशाली बालकों का बुद्धि स्तर सामान्य बालकों की अपेक्षा ऊँचा होता है इसलिए प्रतिभाशाली बालकों को सामान्य बालकों के साथ समायोजित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सामान्यतः ऐसा पाया जाता है कि शिक्षक अपने गति से शिक्षा देता है जो सामान्य बालकों के लिए उपयुक्त है। लेकिन प्रतिभाशाली बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा शीघ्र ही अपना कार्य समाप्त कर लेता है। ऐसी परिस्थिति में यह समस्या आती है कि प्रतिभाशाली बालक अपना समय कैसे व्यतीत करे, जबकि शिक्षक सामान्य बालकों के साथ उसी कार्य को पूरा करने में व्यस्त रहता है ऐसी परिस्थिति में इन बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षा आवश्यक है जिससे प्रतिभाशाली बालकों को उचित दिशा निर्देशन दिया जाय।
- विशिष्ट कक्षाओं में बुद्धिमान छात्रों को अग्रसर होने का अवसर मिलता है, लेकिन शिक्षक को ऐसे बालकों को सामान्य कक्षा में कार्य के प्रति प्रेरित करने में समस्या और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सामान्यतः विलक्षण बालक अन्य सामान्य बालकों के अपेक्षा संवेदनशील होता है। उनकी सोचने की क्षमता अधिक तथा तीव्र होती है। वे कार्य के प्रति सावधान होते हैं, इसलिए उनके शिक्षक में विशेष विधियों व प्रविधियों की आवश्यकता होती है।
- विशिष्ट शिक्षा के द्वारा चयनित स्थानापन्न (Selective Placement) किया जाता है विभिन्न शाखाओं के विशेषज्ञों द्वारा बालकों का पूर्ण रूप से सामाजिक वातावरण में विभिन्न श्रेणियों में विश्लेषण, मूल्यांकन एवं निर्धारण किया जाता है। भौतिक परीक्षण तथा मूल्य निर्धारण, विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों जैसे मानसिक मनोविज्ञानी चिकित्सक, श्रवण, नेत्र, अस्थि चिकित्सक तथा शिक्षाविद् विशिष्ट बालकों के चयनित स्थापन के लिए अति आवश्यक है।
- विशिष्ट शिक्षा को अन्य सेवाओं की भी आवश्यकता होती है जैसे- अस्थि विकलांग बालकों का शारीरिक परीक्षण, दृष्टिबाधित बालक, श्रवण बाधित

बालक एवं मानसिक मंद बालकों के लिए चिकित्सकीय परीक्षण समय-समय पर आवश्यक होती है। कुछ विशिष्ट बालकों को व्यावसायिक, शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक आदि सेवायें अति आवश्यक हैं।

अतः विशिष्ट बालकों को अपनी शक्ति के अनुसार विकास करने के लिए विशिष्ट शिक्षा मिलना अति आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न:- 4

1. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा की पहचान की जाती है।
2. प्रतिभाशाली बालकों की बौद्धिक क्षमता होती है।

1.8 विशिष्ट बालकों के प्रकार :

विशिष्ट बालक निम्न प्रकार के होते हैं:-

1.8.1 दृष्टि बाधित बालक:- दृष्टि बाधित बालक वे बालक होते हैं जिसको सही तरह से कोई वस्तु को देख पाने में कठिनाई होती है। ऐसे बालक दो प्रकार के होते हैं:-

- क. पूर्ण दृष्टि बाधित (Blind)
- ख. अल्प दृष्टि वाले बालक (Low Vision)

विकलांगता अधिनियम 1995 के अनुसार पूर्ण दृष्टि बाधित बालक वे बालक होते हैं जो निम्नलिखित अवस्था में से किसी एक से ग्रसित होते हैं:-

- i. दृष्टि का पूर्ण अभाव, या
- ii. सुधारक लेंसों के साथ बेहतर नेत्र में दृष्टि की तीक्ष्णता जो 6/60 या 20/200 (स्नेलन) से अधिक न हो, या
- iii. दृष्टि क्षेत्र की सीमा 20 डिग्री या इससे कम हो।

कम दृष्टि वाले व्यक्ति से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसकी उपचार या मानक अपवर्तनीय संशोधन के पश्चात् भी दृष्टि क्षमता का हास हो गया है किन्तु जो समुचित सहायक युक्ति से किसी कार्य की योजना या निष्पादन के लिए दृष्टि का उपयोग करता है या उपयोग करने में संभाव्य रूप से समर्थ होता है।

1.8.2 श्रवण बाधित बालक:- श्रवण बाधित बालक ऐसे बालक हैं जिनकी सुनने की क्षमता कम है या पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है। इन बालकों को बोलने और सुनने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। विकलांग व्यक्ति अधिनियम 1995

के अनुसार- "श्रवण अक्षमता से तात्पर्य है संवाद-संबंधी रेंज की आवृत्ति में बेहतर कर्ण में 60 डेसीबल या अधिक की हानि।"

आंशिक श्रवण बाधिता के अर्न्तगत श्रवण क्षमता आंशिक रूप से प्रभावित होती है। इस तरह के श्रवण बाधिता से पीडित बालक/व्यक्ति लगभग 5 फीट की दूरी पर हो रही बातचीत को सुन पाने में कठिनाई महसूस करते हैं। यदि इस प्रकार का बहरापन अधिक आयु में हो तो भाषा के विकास पर ज्यादा फर्क नहीं पड़ता है।

श्रवण बाधित बालक निम्नलिखित पाँच प्रकार के होते हैं:-

- i. कंडक्टिव श्रवण हास (Conductive Hearing Loss)
- ii. सेन्सरी न्यूरल श्रवण हास (Sensory- neural Hearing Loss)
- iii. मिश्रित श्रवण हास (Mixed Hearing Loss)
- iv. केन्द्रीय श्रवण हास (Central Hearing Loss)
- v. कार्यात्मक श्रवण हास (Functional Hearing Loss)

1.8.3 मानसिक मंद बालक:- मानसिक मंदता के अर्न्तगत वैसे बालक आते हैं जिनमें औसत से कम मानसिक योग्यता पायी जाती है लिहाजा वे मन्द गति से सीखते हैं। विद्यालय के औसत बच्चों की तुलना में शैक्षिक सम्प्राप्ति में पिछड़ जाते हैं। विकलांग व्यक्ति अधिनियम, 1995 के अनुसार- मानसिक मंदता से किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की अवरूद्ध या अपूर्ण विकास की दशा अभिप्रेत है जो विशेष रूप से बुद्धि की अपसमान्यता अभिलक्षित होती है।

इस श्रेणी में वे बालक रखे जाते हैं जिनकी बुद्धि स्तर तथा सोचने समझने की क्षमता बहुत कम होती है तथा वे समाज के साथ समायोजन करने में असमर्थ होते हैं। मानसिक बाधित बालकों की विभिन्न श्रेणियाँ होती है। जैसे- शिक्षा ग्रहण करने योग्य मानसिक मंद (EMR), प्रशिक्षण पाने योग्य मानसिक मंद (TMR) तथा संरक्षण पाने योग्य मानसिक मंद।

1.8.4 अधिगम अक्षम बालक:- अधिगम अक्षम बालक वैसे बालकों को कहा जाता है जिनकी बौद्धिक क्षमता सामान्य बालकों के समान होती है लेकिन इन बालकों को पढ़ने, लिखने एवं गणित से संबंधित समस्या के समाधान करने में कठिनाई

होती है। किर्क महोदय के अनुसार:- "अधिगम अक्षमता का तात्पर्य वाक्, भाषा, पठन, लेखन या अंकगणितीय प्रक्रियाओं में एक या अधिक प्रक्रियाओं में मंदता, विकृति अथवा अवरूढ़ विकास है जो संभवतः मस्तिष्क कार्यविरूपता और संवेगात्मक अथवा व्यावहारिक विक्षोभ का परिणाम है न कि मानसिक मंदता, संवेदी अक्षमता अथवा संस्कृति या अनुदेशन कारक के कारण।"

अधिगम अक्षम बालक इनकी विशेषताओं के आधार पर चार प्रकार के होते हैं:-

- i. डिस्लेक्सिया (Dyslexia)
- ii. डिस्ग्राफिया (Dysgraphia)
- iii. डिस्कैलकुलिया (Dyscalculia)
- iv. डिस्प्राक्सिया (Dyspraxia)

1.8.5 अस्थि विकलांग बालक:- अस्थि विकलांग बालकों से तात्पर्य ऐसे बालकों से है जिनकी अस्थियाँ (Bones), जोड़ और मांसपेशियाँ सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती हैं, ऐसे बालकों को सामान्यतः शारीरिक विकलांग, चलन निःशक्त बालक भी कहा जाता है। विकलांग व्यक्ति अधिनियम 1995 के अनुसार "अस्थि विकलांगता से तात्पर्य हड्डियों, जोड़ों, मांसपेशियों की कोई ऐसी निःशक्ता से है, जिससे अंगों के गति में पर्याप्त निबंधन या किसी प्रकार का प्रमस्तिष्क घात हो।

इस प्रकार के विकलांगता में सेरेब्रल पाल्सी, पोलियो, में रूदण्डीय द्विशिखा, संधिशोध इत्यादि से प्रभावित बालक आते हैं।

1.8.6 प्रतिभाशाली बालक:- वह बालक जिसकी मानसिक आयु अपनी आयु वर्ग के अनुपात में औसत से बहुत अधिक हो अथवा ऐसा बालक अपने आयु के बालकों से साधारण या विशेष योग्यता में श्रेष्ठ हो, उसे प्रतिभाशाली बालक कहा जाता है। संगीत, कला या अन्य क्षेत्रों में अधिक योग्यता रखने वाला बालक भी प्रतिभाशाली बालकों के श्रेणी में आता है। कालसनिक के अनुसार- "वह प्रत्येक बालक जो अपने आयु स्तर के बच्चों से किसी योग्यता में अधिक हो और हमारे समाज के लिए कुछ महत्वपूर्ण नया योगदान कर सके।"

1.8.7 बहु विकलांग बालक:- बहुविकलांगता से तात्पर्य बालक में एक से अधिक विकलांगता से है। उदाहरण स्वरूप जब बालक में मानसिक मंदता के साथ-साथ श्रवण बाधिता भी रहती है तो ऐसे बालक को बहुविकलांग बालक नाम से जाना जाता है। ऐसे बालक में एक से अधिक विकलांगता हो सकती है।

दृष्टिबाधिता + श्रवण बाधिता + मानसिक मंदता

श्रवण बाधिता + दृष्टि बाधिता

दृष्टि बाधिता + अस्थि विकलांगता इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न:- 5

1. दृष्टि बाधित बालकों की दृष्टि तीक्ष्णता होती है।
2. डिस्लेक्सिया (Dyslexia) बालकों का एक प्रकार है।
3. EMR..... बालक हैं।
4. श्रवण बाधित बालक प्रकार के होते हैं।

1.9 विशिष्ट शिक्षा के लाभ:-

- i. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा बालक अपनी गति के अनुसार सीखता है।
- ii. विशिष्ट शिक्षा में एक कक्षा में कम विद्यार्थी रहते हैं जिससे शिक्षक सभी बालकों पर व्यक्तिगत ध्यान देते हैं।
- iii. विशिष्ट शिक्षा में शिक्षक अध्यापन के लिए बालकों के अनुसार शिक्षण विधि का प्रयोग करता, जिससे विशिष्ट बालकों को अधिक लाभ होता है।
- iv. इसमें बालकों के लिए विशिष्ट रूप से तैयार किया गया शिक्षण सामग्री का प्रयोग किया जाता है।
- v. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा बालक अपने गति से आगे बढ़ता है इसलिए उनका आत्म विश्वास काफी ऊँचा रहता है।
- vi. विशिष्ट विद्यालय की भौतिक वातावरण इन बच्चों के आवश्यकता अनुसार बनाई जाती है जिससे इनको कम कठिनाई का सामना करना पड़ता है।
- vii. विशिष्ट विद्यालय में इन बच्चों को शिक्षण के लिए सभी सामग्री उपलब्ध होता है जिससे शिक्षक भी सुगमता से शिक्षण कार्य करते हैं।
- viii. विशिष्ट शिक्षा से विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों का आत्म-सम्मान एवं स्वाभिमान बढ़ता है। जब वे शिक्षक एवं अपने साथियों से संपर्क स्थापित करना शुरू करते हैं तो वे अपने आपको योग्य महसूस करना शुरू कर देते हैं।
- ix. विशेष शिक्षा के द्वारा विशिष्ट बालकों में अवांछित व्यवहार कम होते हैं, तथा सामाजिक वांछनीय व्यवहार विकसित होते हैं।

1.10 सारांश:

विशिष्ट शिक्षा विशेष तौर पर डिजाइन किया गया शैक्षिक अनुदेशन है जिसमें विशिष्ट कक्षाएं अथवा विशिष्ट बालकों के शैक्षिक सामर्थ्य विकसित करने वाली सेवाएँ, मसलन विद्यालय कमें टी द्वारा बच्चों के शैक्षिक स्थापन, लोक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, मानसिक मंद एवं युवा विभाग एवं शैक्षिक बोर्ड द्वारा बनाया गया अधिनियम आदि शामिल है। इसके अर्न्तगत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को विशिष्ट विद्यालयों में, विशिष्ट शिक्षक के माध्यम से, विशिष्ट पाठ्यचर्चा के अनुरूप शिक्षा दी जाती है। इस पाठ के अर्न्तगत हम लोगों ने विशिष्ट शिक्षा के अर्थ, इसकी आवश्यकता, इनके सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इसके अलावा विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्षेत्र, लाभों का भी विस्तार पूर्वक अध्ययन किया।

1.11 शब्दावली:

ब्रेल:- एक तरह की लिपि जो दृष्टि बाधित बालक लिखने और पढ़ने के लिए उपयोग करते हैं।

विशिष्ट शिक्षा:- विकलांग बालकों को दी जाने वाली शिक्षा।

ट्रेलर फ्रेम:- दृष्टि बाधित बालकों के लिए प्रयुक्त उपकरण।

ऑडियोमीटर:- श्रवण बाधित बालकों को जाँच करने के लिए प्रयुक्त उपकरण।

स्नेलन चार्ट:- आँखों की जाँच के लिए प्रयुक्त चार्ट।

विशेष विद्यालय:- जहाँ विशेष आवश्यकता वाले बच्चे अध्ययन करते हैं।

दृष्टि तीक्ष्णता:- सामान्य आँख के द्वारा देखी गयी दूरी।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. विशिष्ट शिक्षा
2. विशेष

अभ्यास प्रश्न-2

1. श्रवण बाधित
2. बौद्धिक क्षमता
3. दृष्टि बाधित

अभ्यास प्रश्न-3

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

अभ्यास प्रश्न-4

1. विशिष्ट बालकों
2. अधिक

अभ्यास प्रश्न-5

1. 6/60

2. अधिगम अक्षम

3. मानसिक मंद

4. पाँच

1.13 संदर्भ ग्रन्थ:

पांडा, के0सी0 (1997), " एजुकेशन ऑफ एक्सेपसनल चिल्ड्रेन" नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स।

गोविन्द राव, एल0 (2007), पर्सपेक्टिव ऑन स्पेशल एडुकेशन: हैदराबाद: नीलकमल पब्लिकेशन। मुखोपाध्याय, एस0 एण्ड मनी, एम0एन0जी0 (2002) एडुकेशन ऑफ चिन्ड्रेन विद् स्पेशल नीड्स, नई दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

इग्नू (2009) फाउनडेशन कोर्स आन एडुकेशन ऑफ चिन्ड्रेन विद् डिसएबिलिटीस। नई दिल्ली इग्नू।

डा0 कुमार संजीव (2008), विशिष्ट शिक्षा, अशोक राजपथ, पटना।

सिंह, अरूण कुमार, (2001) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना।

1.14 निबंधात्मक प्रश्न:-

1. विशिष्ट शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों की व्याख्या करें।
2. विशिष्ट शिक्षा के कार्य क्षेत्रों का विस्तृत वर्णन करें।
3. विशिष्ट शिक्षा के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इनके सिद्धान्तों को संक्षेप में वर्णन करें।
4. विशिष्ट बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पर संक्षेप में लेख लिखें।
5. विशिष्ट बालक से आप क्या समझते हैं? विभिन्न तरह के विशिष्ट बालकों का वर्णन करें।

इकाई 2: विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य, विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व (Objectives of Special Education, Need and Significance of Special Education)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य

2.4 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

2.5.1 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता

2.5.2 विशिष्ट शिक्षा का महत्व

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अपनी अधिगम प्रगति जानिए सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

विशिष्ट शिक्षा से सम्बंधित यह द्वितीय इकाई है। इससे पहले के इकाई के अध्ययनोपरांत आप विशिष्ट शिक्षा के संप्रत्यय एवं परिभाषा को बता सकते हैं।

विशिष्ट शिक्षा के पैरोकारों ने बहुत ही स्पष्ट रूप से व विस्तृत ढंग से चर्चा किया है कि विशिष्ट शिक्षा क्यों आवश्यक है? तथा इसके महत्व क्या हैं? प्रस्तुत इकाई में विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य, विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों को बता सकेंगे तथा विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप

- विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों को बता सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों को विभिन्न परिस्थितियों में पुनर्संगठित कर सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा क्यों आवश्यक है? पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा के व्यावहारिक महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

2.3 विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य

विशिष्ट शिक्षा विशेष आवश्यकता वाले बालकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए उसे समाज का एक उत्तरदायी, स्वतंत्र एवं सक्रिय सदस्य बनाने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया स्वतः ही एक लक्ष्य का निर्धारण करती है तथा इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु इस प्रक्रिया के उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक हो जाता है अन्यथा तूफान में बिन पतवार की नाव की भांति अथाह समुद्र में मात्र लहरों के थपेड़े खाने जैसा ही होगा। वैसे तो विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य नियमित शिक्षा के उद्देश्यों- बालकों को उपयुक्त शिक्षा प्रदान कर मानव संसाधन का विकास, राष्ट्रीय विकास, सामाजिक पुनर्रचना, नागरिक विकास, व्यावसायिक क्षमता का विकास आदि, से कदापि भिन्न नहीं हैं परन्तु विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं के चलते थोड़े व्यापक जरूर हो जाते हैं (एम. दास, 2007)। विशिष्ट शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों को निम्नवत संकलित किया जा सकता है-

- विशिष्ट बालक की पहचान, निदान एवं आंकलन (Identification, diagnosis and assessment of special child) करना
- शीघ्र हस्तक्षेप (Early intervention) करना

- अभिभावकों एवं समुदाय को जागरूक (Guardian and community awareness) करना
- पुनर्वास (Rehabilitation) करना

विशिष्ट बालक की पहचान, निदान एवं आंकलन (Identification, diagnosis and assessment of special child) करना-

विशिष्ट बालक की पहचान, निदान एवं आंकलन से तात्पर्य है कि यथाशीघ्र बालक की शिक्षण-अधिगम सम्बन्धी, शारीरिक व मानसिक विशेष आवश्यकताओं की पहचान कर उसका निदान किया जाय तत्पश्चात क्षति का आंकलन किया जाय जिससे उसके सहायक उपकरणों एवं शैक्षिक कार्यक्रमों को भी तैयार किया जा सके। यही विशिष्ट शिक्षा का प्रथम उत्तरदायित्व है अतः उद्देश्य भी।

विशिष्ट बालक की पहचान सर्वप्रथम उसके व्यवहार के प्रेक्षणों द्वारा किया जाना चाहिए। तत्पश्चात विभिन्न चिकित्सकीय एवं मनोवैज्ञानिक उपकरणों के प्रशासन द्वारा किया जाय तथा उसके यथासंभव चिकित्सकीय एवं मनोवैज्ञानिक परामर्शों के द्वारा निदान किया जाय। फिर बालक की स्थाई क्षति का विभिन्न तकनीकों से आंकलन किया जाय। उसकी क्षति की गंभीरता का पता लगाया जाय तथा वर्गीकरण किया जाय। उसकी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का स्पष्ट विवरण तैयार किया जाना चाहिए।

शीघ्र हस्तक्षेप (Early intervention) करना-

बालक की क्षमता एवं कौशलों में भिन्नता के कारण ही उसे “विशिष्ट” नाम दिया जाता है। विशिष्ट बालक की इस भिन्नता को कम करने या समाप्त करने हेतु उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप उसे सहायक उपकरण उपलब्ध कराना, प्रशिक्षण देना जिससे की हो रही क्षति को तुरंत रोका जा सके तथा हुई क्षति के कारण पडने वाले प्रभावों को कम किया जा सके, विशिष्ट शिक्षा का द्वितीय मुख्य उद्देश्य है। यहाँ पर शीघ्र शब्द का प्रयोग आपके समक्ष इसलिए किया गया है कि जितना शीघ्र आप बालक की आवश्यकताओं के अनुसार सहायक उपकरण व प्रशिक्षण उपलब्ध कराएँगे उतना ही शीघ्र उसमें क्षमताओं और कौशलों का विकास शुरू हो सकेगा और विशिष्ट बालक व सामान्य बालक की क्षमताओं में सार्थक अंतर भी कम हो पायेगा।

शीघ्र हस्तक्षेप एक व्यापक पद है जो की बालक की समस्त आवश्यकताओं को सम्मिलित करता है। बालक यदि दृष्टिबाधित है तो उसकी दृष्टि हेतु सबसे उत्तम संभव संशोधन उपलब्ध कराना तथा स्थाई क्षति के कारण बालक में आई अक्षमता को दूर करने के लिये उसे उन्मुखीकरण एवं चलिष्णुता का प्रशिक्षण, ब्रेल लिपि का प्रशिक्षण, टेलर फ्रेम व गिनतारा (Abacus) का प्रशिक्षण

देना। उसके लिए बाधारहित परिवेश तैयार कराना, दृष्टिबाधा के कारण उत्पन्न हीनता का भाव तथा प्रेरणा में कमी आदि मनोवैज्ञानिक प्रभावों को कम करना/ समाप्त करना तथा उसे शिक्षा के सामान्य अनुभवों को प्राप्त करने के सक्षम बनाना आदि समस्त क्रियाएं सम्मिलित हैं। अर्थात् बालक में अक्षमता की स्थिति न पैदा होने देना।

अभिभावक को परामर्श (Parent Counseling) देना-

विशिष्ट बालक की क्षति का उपचार एवं रोकथाम, उसकी देख-भाल और उसे दैनिक जीवन के कौशलों, स्व-सहायता कौशलों, पूर्व-शैक्षिक कौशलों तथा संचारण कौशलों आदि के प्रशिक्षण हेतु बालक के माता-पिता या अभिभावकों को परामर्श उपलब्ध कराना विशिष्ट शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। जिससे की विशिष्ट बालक के माता-पिता, बालक को आवश्यक कौशलों का प्रशिक्षण देकर उसे स्कूल पहुंचने से पूर्व ही स्कूल परिवेश के लिए तैयार कर पाने में सक्षम हो जाएँ। परामर्श देने का एक उद्देश्य यह भी है कि बालक की अक्षमता की स्थिति को गंभीर होने पर रोक लगे तथा शिघ्राती हस्तक्षेप भी हो जाय।

अभिभावकों एवं समुदाय को जागरूक (Guardian and community awareness) करना –

विशिष्ट शिक्षा का तृतीय मुख्य उद्देश्य अभिभावकों व समुदाय के नागरिकों को विशिष्ट बालक की आवश्यकताओं एवं क्षमताओं से परिचय कराना है तथा उन्हें जागरूक बनाना है। बालक की प्रथम पाठशाला उसका घर एवं समुदाय ही होता है तथा प्रथम शिक्षक उसके माता-पिता व समुदाय के अन्य सदस्य होते हैं। बालक सर्वप्रथम इन्हीं लोगों के संपर्क में आता है अतः बालक की विशेष आवश्यकताओं की पहचान, क्षति का आंकलन, शीघ्र हस्तक्षेप उसके घर व समुदाय के लोगों के द्वारा ही सर्वप्रथम संभव है। अतएव अभिभावकों व समुदाय की लोगों को विशिष्ट शिक्षा तथा अन्य सम्बंधित सेवाओं से अवगत कराया जाय।

पुनर्वास (Rehabilitation) करना-

बालक को क्षति (Impairment) के कारण उत्पन्न होने वाली अक्षमता उसे समुदाय से अलग-थलग कर देती है जिससे उसके मनस (Psyche) पर बहुत बुरा असर पड़ता है या यह कहिये कि वह उखड़ सा जाता है। जिसे उसी समुदाय में अक्षमता न होने पर रहने वाली स्थिति में पुनर्स्थापित करना ही बालक का पुनर्वास करना है, विशिष्ट शिक्षा का अंतिम व सर्वोच्च उद्देश्य है। पुनर्वासित या पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य को निम्नलिखित छः परन्तु अंतराच्छादित (Overlapping) बिंदुओं में व्यूयायित किया जा सकता है-

1. शैक्षिक पुनर्वास करना

2. चिकित्सकीय पुनर्वास करना
3. वैयक्तिक पुनर्वास करना
4. सामाजिक पुनर्वास करना
5. व्यावसायिक पुनर्वास करना
6. आर्थिक पुनर्वास करना

1. शैक्षिक पुनर्वास करना-

विशिष्ट बालक की आवश्यकताएं सामान्य बालक की आवश्यकताओं से भिन्न होती हैं जिससे कि विशिष्ट बालक सामान्य शैक्षिक परिवेश में अपने-आपको अक्षम पाता है। परिणामस्वरूप उसकी उपलब्धि एवं प्रदर्शन पर बुरा असर पड़ता है। अतः बालक को विशिष्ट शिक्षा उपलब्ध कराकर उसके शैक्षिक उपलब्धि को उन्नत करके शैक्षिक उपलब्धि के सन्दर्भ में सामान्य बालकों के समान्तर खड़ा कर उसका शैक्षिक पुनर्वास किया जाना चाहिए।

2. चिकित्सकीय पुनर्वास करना-

विशिष्ट बालक की शारीरिक क्षति को चिकित्सकीय प्रयासों/ विधियों से कम करना या समाप्त करना जिससे कि बालक अपने पुनर्वस्था को प्राप्त कर सके तथा सामान्य परिवेश में सामान्य बालकों की भांति जीवन जीने के योग्य बन जाय चिकित्सकीय पुनर्वास कहलाता है।

किसी दृष्टिबाधित बालक की कार्निया बदलने से उसकी आँख की रोशनी वापस आ जाय और वह सामान्य जीवन जीने के योग्य हो जाय। या फिर पिन्ना रहित बालक को प्लास्टिक सर्जरी के द्वारा कृत्रिम पिन्ना लगाकर उसे सामान्य बालकों की श्रेणी में खड़ा कर दिया जाय।

3. वैयक्तिक पुनर्वास-

विशिष्ट बालक में अक्षमता के कारण विभिन्न प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जैसे कि स्व-संप्रत्यय, स्व-सम्मान, विश्वास, हिम्मत आदि से सम्बंधित विसंगतियों का उत्पन्न होना। विशिष्ट बालक में उत्पन्न इन विसंगतियों को विभिन्न मनोवैज्ञानिक विधियों के द्वारा यथासंभव कम करना या समाप्त करना विशिष्ट शिक्षा के वैयक्तिक पुनर्वास का उद्देश्य है।

4. सामाजिक पुनर्वास-

बालक जिस समाज या समुदाय का सदस्य होता है उसके कुछ रीति-रीवाज होते हैं, उसकी एक संस्कृति होती है तथा हर समाज या समुदाय अपने प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा रखता है कि वह उसकी संस्कृति को धारण करे, संरक्षित करे व आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित करे तथा उसी की रीति-रीवाजों के अनुसार व्यवहार करे। विशिष्ट बालक से भी ये अपेक्षाएं अपेक्षित हैं। इसलिए विशिष्ट शिक्षा का यह परम उद्देश्य है कि वह बालक को अपने समाज व समुदाय की जरूरतों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप तैयार करे ताकि वह अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए सक्षम हो जाय व एक स्वतंत्र, जिम्मेदार एवं उत्पादक नागरिक के रूप में बालक को उसके समुदाय के समक्ष पेश करे।

5. व्यावसायिक पुनर्वास-

बालक को अपने समाज व समुदाय के व्यावसायिक उन्मुखता तथा बालक की क्षमताओं के अनुरूप व्यवसाय के चयन हेतु तैयार किया जाय तथा उसके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। जरूरत होने पर अन्य आवश्यक सुविधाओं की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। जैसे कि व्यवसाय हेतु धन उपलब्ध करना, अधिक जन-शक्ति की व्यवस्था करना आदि।

6. आर्थिक पुनर्वास-

आज के भौतिकतावादी युग में व्यक्ति का जीवन अर्थ (economy) पर आधारित हो गया है। अतः बालक को बड़े-बड़े एवं कर्णप्रिय दार्शनिक विचारों के अलावा उसे इस कटु सच्चाई से परिचय कराना तथा उसे अर्थ अर्जन के लिए तैयार करना जिससे वह समाज में अपने-आप को एक सम्मानित सदस्य के रूप में स्थापित कर सके, विशिष्ट शिक्षा का एक उद्देश्य है।

राष्ट्रीय शिक्षा निति (1986) भी यह स्पष्ट रूप से अनुबंधित करती है कि विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य

- शारीरिक एवं मानसिक विकलांगों का उसके सामान्य समुदाय में एक सामान सहभागी के रूप में समें कित कराना,
- सामान्य वृद्धि के लिए तैयार कराना तथा
- साहस एवं विश्वास के साथ अपने जीवन की समस्याओं का सामना करने के योग्य बनाना;

होना चाहिए।

बोध प्रश्न-

टिप्पणी-

- i. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिए गए खाली स्थान का प्रयोग कीजिये।
- ii. अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से कीजिये।

प्रश्न-

1. विशेष शिक्षा के उद्देश्यों को संकलित कीजिये।

2. शीघ्र हस्तक्षेप से आप क्या समझते हैं?

3. विशिष्ट शिक्षा के सामाजिक पुनर्वास का उद्देश्य क्या है?

4. विशिष्ट शिक्षा के आर्थिक पुनर्वास के उद्देश्य से आप क्या समझते है?

5. सामुदायिक जागरूकता से आप क्या समझते है?

6. बाधामुक्त परिवेश से आप क्या समझते है?

7. सहायक उपकरणों एवं यंत्रों का क्या तात्पर्य है?

पुनर्वास का क्या अर्थ है?

2.4 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व-

विशिष्ट बालक की आवश्यकताएँ अन्य सामान्य बालकों से भिन्न होती हैं। अतः ऐसे बालकों की शिक्षा-दीक्षा सामान्य नियमित शिक्षा प्रणाली से संभव नहीं है। इसके लिए विशेष उपकरणों, विशेष तकनीकियों, विशेष विधियों आदि की आवश्यकता होती है। अतः ऐसी परिस्थिति में विशिष्ट शिक्षा एक विकल्प है जिसके द्वारा हम विशेष आवश्यकता वाले बालकों का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं।

अब आप सोच रहे होंगे कि जब इन विशेष आवश्यकता वाले बालकों को शिक्षित, प्रशिक्षित एवं पुनर्वासित करना इतना कठिन एवं जटिल है तो फिर इस अल्पसंख्यक समूह हेतु इतना क्यों? इसके क्या लाभ हैं? तो आइये इन प्रश्नों के जबाबों को निम्नलिखित बिंदुओं में विमर्श करते हैं।

2.4.2 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता-

यदि विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को उनकी यथास्थिति पर भाग्य-भरोसे छोड़ दिया जाय तो क्या हम हेलेन केलर, स्टेफेन हार्किंस आदि विद्वानों की परिकल्पना कर सकते थे। कदापि नहीं। प्रतिभा किसी व्यक्ति, समाज, धर्म, जाति, संप्रदाय, देश, भाषा या विकलांगता आदि की मोहताज नहीं होती। इसीप्रकार न जाने कितनी प्रतिभाएं इन्हीं विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के बीच छिपी हैं, जरूरत है तो सिर्फ उन्हें पहचानने की, निखारने की और सँवारने की। जिसके लिए विशिष्ट शिक्षा अत्यंत आवश्यक है।

मानवाधिकारों के सन्दर्भ में बात करें तो विशेष आवश्यकता वाले बालक सर्व प्रथम एक मानव हैं फिर अक्षम हैं या फिर उनकी आवश्यकताएँ भिन्न हैं। और शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक मानव का मूल अधिकार है। विशिष्ट बालक के इस मूल अधिकार की रक्षा हेतु भी विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक है।

आर्थिक सन्दर्भ में अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन जी मानवपूंजी (Human Capital) की बात करते हैं अर्थात् मानव को लाभ-मुनाफा कमाने के संसाधन के रूप में देखते हैं। एक राष्ट्र के संसाधन जितने ही उन्नत होंगे वह राष्ट्र उतना ही सशक्त होगा और इस मानव संसाधन को उन्नत करने के लिए उसे शिक्षित व प्रशिक्षित करना पड़ेगा। प्रत्येक विशिष्ट बालक भी अपने राष्ट्र की एक बहुमूल्य थाती है। उसका सर्वांगीण विकास देश के सर्वांगीण विकास हेतु अपरिहार्य है। अतः विशिष्ट बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था करना प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपरिहार्य है।

सामाजिक सन्दर्भों में मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और विशिष्ट बालक भी एक मनुष्य होने के नाते सामाजिक प्रकृति का है। प्रत्येक समाज का उत्तरदायित्व है कि वह आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताएँ पूरी करे तत्पश्चात् अपेक्षाएं रखे। विशिष्ट बालक भी एक समाज का सदस्य होता है अतः अपने समाज से मिलने वाली सुविधाओं को प्राप्त करने का पात्र है। परन्तु इसकी आवश्यकताएँ भिन्न हैं। तो क्या? समाज के उत्तरदायित्व समाप्त हो जाते हैं? नहीं! अपितु ये उत्तरदायित्व और भी चुनौतीपूर्ण हो जाते हैं। जिसका निर्वहन विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है।

जनतांत्रिक सन्दर्भों में विशिष्ट बालक भी राष्ट्र का एक स्वतंत्र नागरिक है और उसे एक सुखी, सम्पन्न एवं समृद्धशाली जीवन जीने का समान अवसर प्राप्त है। उसके व्यक्तिगत सम्मान व अधिकारों की रक्षा करना भी उस राष्ट्र की जिम्मेदारी है। जब विशिष्ट बालक को विशिष्ट शिक्षा उपलब्ध कराई जायेगी तो एक हद तक उसके अधिकारों की रक्षा की जा सकती है तथा उसके जीवन को सुखी व समृद्धशाली बनाया जा सकता है। वैसे तो भारत में 86 वाँ संविधान संशोधन, 2002, शिक्षा को प्रत्येक 6-14 वर्ष के बालक के लिए मूल अधिकार के रूप में सुरक्षित करता है। जो कि स्वतः ही विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता को बल देता है।

2.4.2 विशिष्ट शिक्षा का महत्व-

विशिष्ट शिक्षा के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट किया जा सकता है-

विशिष्ट बालक की पहचान एवं आँकलन-

विशिष्ट शिक्षा बालक की पहचान करने एवं उसकी क्षति तथा अक्षमता का आँकलन करने की व्यवस्था करती है। बालक की पहचान जितनी जल्द होगी आप उतनी ही शीघ्रता से उसकी समस्या का निदान करने में सक्षम हो पाएंगे। विशिष्ट शिक्षा के द्वारा बालकों की पहचान करने के लिए तरह-तरह के प्रयास किये जाते हैं। घर-घर जाकर सर्वेक्षण करना, विशेष कैंम्पों की व्यवस्था करना, स्कूल में एवं अन्य सामुदायिक केन्द्रों पर जाँच शिविरों का आयोजन करना आदि प्रयास विशिष्ट शिक्षा के अंतर्गत विशिष्ट बालकों की पहचान के लिए किये जाते हैं। बालक की पहचान के बाद उसकी समस्याओं के निदान की व्यवस्था भी विशिष्ट शिक्षा के अंतर्गत की जाती है। उसकी समस्याओं, उम्र, अक्षमता की प्रकृति के आधार पर उसके शैक्षिक स्थान का निर्धारण किया जाता है तथा उसके

शैक्षिक कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है। जिससे बालक स्वतंत्र रूप से अपने दैनिक क्रिया कलापों को करने में सक्षम हो जाता है तथा साथ ही अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्मुख हो जाता है।

सक्रिय हस्तक्षेप-

शीघ्र हस्तक्षेप में भी विशिष्ट शिक्षा का बड़ा महत्व है। विशिष्ट शिक्षा में सक्रिय हस्तक्षेप का प्रबंध है। पुनर्वास कार्यकर्ताओं के द्वारा विभिन्न स्तरों पर हस्तक्षेप का प्रबंध विशिष्ट शिक्षा में है। जिससे बालक की अक्षमता की गंभीरता को रोका जाता है। परिणाम स्वरूप बालक में क्षति के कारण उत्पन्न अक्षमता का प्रभाव कम हो जाता है तथा बालक शीघ्र ही सामान्य बालकों से उत्पन्न दूरी को कम कर लेता है।

यह हस्तक्षेप विभिन्न स्तरों पर किया जाता है। जैसे कि बालक को उसकी आवश्यकता के अनुरूप सहायक उपकरणों एवं यंत्रों को उपलब्ध कराकर, सहायक उपकरणों एवं यंत्रों के प्रयोग करने का प्रशिक्षण देकर, बाधामुक्त परिवेश उपलब्ध कराकर, दैनिक जीवन के कौशलों का प्रशिक्षण देकर, नवीन संबद्धी तथा वैकल्पिक संचार माध्यमों का प्रशिक्षण आदि देकर।

जीवन कौशलों का विकास-

विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट बालक को दैनिक जीवन के कौशलों का प्रशिक्षण देती है जिससे एक विशिष्ट बालक अपने सामाजिक परिवेश में केवल अपने क्रिया-कलापों को ही स्वतंत्रता पूर्वक नहीं करने में सक्षम होता है अपितु सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने में भी निपुण हो जाता है। वह सामाजिक सम्बंधों की जटिलता व बारीकियों को समझ कर उनके अनुरूप सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है तथा एक कुशल सदस्य के रूप में अपने-आप को प्रक्षेपित करने में सक्षम हो पाता है।

सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन-

विशिष्ट शिक्षा के द्वारा एक समाज अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर पाता है। विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट बालक की आवश्यकताओं से समाज एवं समुदाय को अवगत कराती है तथा समुदाय को जागरूक बनाती है।

विशिष्ट शिक्षा बालक को अपने समाज का एक उत्तरदायी एवं उत्पादक सदस्य बनाने में सहायता करती है। उसे अपने समाज की रीति-रिवाजों से परिचय कराती है तथा उस समाज की संस्कृति को इस विशिष्ट बालक के हाथों में हस्तांतरित करती है।

राष्ट्रीयता का विकास-

एक राष्ट्र अपने विशिष्ट नागरिक के लिए विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था करके उसके जीवन को सुखी, संपन्न एवं समृद्धशाली बनाने में अपना योगदान देता है तो बालक को भी अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम व सम्मान की भावना उत्पन्न होती है। और यह बालक भी आत्मसम्माननी होने के नाते अपने राष्ट्र के लिए जीने-मरने के लिए तैयार रहता है। या ये कहे कि विशिष्ट बालक में विशिष्ट शिक्षा राष्ट्रीयता का विकास करती है।

नया दृष्टिकोण-

विशिष्ट शिक्षा समुदाय एवं समाज को एक नया दृष्टिकोण देती है। जिससे समुदाय विशिष्ट बालक को एक उत्तरदायी एवं उत्पादक सदस्य के रूप में स्वीकार करता है।

विशिष्ट बालक को भी यह एहसास दिलाती है कि वह अक्षम नहीं बल्कि उसकी क्षमताएं भिन्न हैं। वह भी समाज व देश का एक उत्तरदायी एवं सक्रिय नागरिक है। वह भी अपने देश व समाज के लिए अपना योगदान दे सकता है। विशिष्ट शिक्षा बालक को एक सुखी एवं संपन्न जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

विशिष्ट बालकों के अधिकारों एवं सम्मान की रक्षा-

विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट बालक के मूल अधिकारों- सम्मान पूर्ण जीवन जीने का अधिकार, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, कानून के समक्ष समानता, पूर्ण सहभागिता, अवसरों की समानता आदि की रक्षा करती है। उसे अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं जागरूक बनाती है।

क्रियात्मक साक्षरता-

विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से विकलांगताग्रस्त व्यक्तियों व बालकों को भी सामान्य जीवन में प्रयोग आने वाली जानकारियों से परिचित कराया जाता है। दिनप्रतिदिन हो रहे अन्वेषणों से रोजमर्रा के प्रयोग में आने वाली सामग्रियों का प्रयोग भी काफी जटिल हो गया है जिसके उपयोग के लिए विशिष्ट बालकों के साथ-साथ प्रौढ़ों को प्रशिक्षण का प्रबंध भी विशिष्ट शिक्षा के अंतर्गत है। जैसे कि कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाइल, ए. टी. एम्., टी. वी., आदि इलेक्ट्रॉनिक सामानों के उपयोग का प्रशिक्षण तथा ट्रेन, मेंट्रो, हवाई जहाज, बस, टैक्सी आदि में यात्रा का प्रशिक्षण, विभिन्न सार्वजनिक स्थानों की प्रकृति से अवगत कराकर, भोजन पकाने व ग्रहण करने के तरीकों को सिखाकर इन्हें स्वतंत्र रूप से अपना जीवन जीने के योग्य बना दिया जाता है। अर्थात् समय के साथ चलना सीखा दिया जाता है।

बोध प्रश्न-

टिप्पणी-

- i. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिए गए खाली स्थान का प्रयोग कीजिये।
- ii. अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से कीजिये।

प्रश्न-

8. क्रियात्मक साक्षरता(Functional literacy) से आप क्या समझते हैं?

9. जीवन कौशलों से क्या तात्पर्य है?

10. सक्रिय हस्तक्षेप क्या है?

11. विशिष्ट शिक्षा के सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन का महत्व क्या है?

12. “मानव पूंजी” से आप क्या समझते हैं?

2.5 सारांश-

विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य सामान्य शिक्षा से बिलकुल भिन्न नहीं हैं अपितु विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं एवं उनकी अक्षमताओं की प्रकृति के अनुसार थोड़े व्यापक हो जाते हैं तथा कुछ अतिरिक्त उद्देश्य सामान्य शिक्षा के उद्देश्यों में जुड़ जाते हैं। ये उद्देश्य कुछ इस प्रकार से हैं-

- विशिष्ट बालकों की अक्षमताओं की पहचान, निदान एवं आँकलन करना।
- विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं एवं अक्षमता का शीघ्र हस्तक्षेप करना।
- भौतिक एवं शैक्षिक अनुकूलन कि पहचान करना तथा विद्यालय एवं अन्य सम्बंधित स्थानों पर बाधामुक्त परिवेश उपलब्ध कराना।
- अभिभावक एवं समुदायिक जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन करना एवं उनमें इनकी सहभागिता सुनिश्चित करना।
- विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा हेतु शिक्षण-अधिगम सामग्रियों का निर्माण करना।
- पुनर्वास विशेषज्ञों एवं स्कूल कर्मचारियों के बीच एक सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित कराना।

- बालकों को समाज की मुख्यधारा में लाने वाली गतिविधियों का नियोजन एवं कार्यान्वयन करना।
- बालक को समाज में पूर्ण सहभागिता हेतु तैयार करना एवं उसे समाज का एक उत्तरदायी एवं स्वावलंबी सदस्य बनाना।
- बालक का पुनर्वास करना आदि।

शिक्षा ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति को सही मायने में मनुष्य या मानव बनाया जाता है। इसी प्रकार विशिष्ट शिक्षा भी विशिष्ट बालकों को एक विशेष प्रकार की तकनीकियों, विधियों, विशेष शिक्षण-अधिगम सामग्रियों के द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा ही है। अतः इसकी आवश्यकता और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता को निम्नवत संकलित किया जा सकता है-

- शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक मानव का अधिकार है और विशिष्ट बालक भी सर्वप्रथम एक मानव है तब उसकी आवश्यकताएं भिन्न हैं।
- अक्षम बालक में उपस्थित क्षमताओं की सहायता से उसे दैनिक जीवन के कौशलों के प्रशिक्षण प्रदान कराने में भी विशिष्ट शिक्षा की ही भूमिका होती है।
- विशिष्ट बालक की आवश्यकताएं भिन्न होती हैं न कि वह अक्षम होता है। उसके अंदर बहुत सी क्षमताएं भी होती हैं। जिसके द्वारा उसे समाज का उत्तरदायी नागरिक बनाने में विशिष्ट शिक्षा का योगदान आवश्यक है।
- मानव का उन्नतिकरण शिक्षा द्वारा ही संभव है। सार्वभौमीकरण के दौर में राष्ट्र के विकास हेतु “मानव पूंजी(Human Capital)” का उन्नतिकरण उसके विकास का द्योतक है। अक्षम व्यक्ति भी एक मानव पूंजी है। अतः इसका उन्नतिकरण करने वाला राष्ट्र ही विकास कर सकता है।
- अक्षम व्यक्तियों को समाज तथा समुदाय में सक्रिय सहभागिता तथा न्याय के समक्ष समानता सुनिश्चित करना एवं समान अवसर उपलब्ध कराने में भी विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है।

- अक्षम व्यक्ति भी समुदाय का एक सदस्य हैं अतः उसकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति समुदाय के मानक के अनुरूप हो इसके लिए उसे व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करने में भी विशिष्ट शिक्षा की भूमिका अपरिहार्य है।
- अंततः विशिष्ट बालक का पुनर्वास विशिष्ट शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है।

विशिष्ट शिक्षा बालक की अक्षमता को सक्षमता में परिवर्तित कर उसे समुदाय का एक स्वावलंबी, उत्तरदायी एवं उत्पादक सदस्य बनाती है। इसके महत्त्व को हम निम्नलिखित विन्दुओं में प्रस्तुत कर सकते हैं-

- विशिष्ट शिक्षा सर्वप्रथम बालक की विशिष्ट आवश्यकताओं की पहचान करने एवं उसके अक्षमता के आँकलन में सहायता करती है।
- विशिष्ट शिक्षा बालक की किसी भी क्षति के कारण आने वाली अक्षमता के शीघ्र हस्तक्षेप में सहायता करती है।
- विशिष्ट शिक्षा विशेष आवश्यकता वाले बालक के मूल अधिकारों की रक्षा करती है।
- विशिष्ट शिक्षा बालक को अपने समुदाय एवं समाज में स्वतंत्र तथा स्वावलंबी जीवन जीने के योग्य बनाती है।
- विशिष्ट शिक्षा बालक को राष्ट्र का एक जिम्मेदार एवं कुशल नागरिक बनाती है।
- विशिष्ट शिक्षा समुदाय को बालक की विशेष आवश्यकताओं से अवगत कराती हैं तथा बालक को समाज की अपेक्षाओं से परिचित कराती है।
- विशिष्ट शिक्षा बालक के जीवन को सुखी, समृद्ध एवं संपन्न जीवन जीने के योग्य बनाती है।
- विशिष्ट शिक्षा बालक को क्रियात्मक साक्षर बनाती है।

2.6 शब्दावली

शीघ्र हस्तक्षेप- बालक में किसी कारणवश हुई क्षति के कारण अक्षमता की स्थिति पैदा होने से यथाशीघ्र रोकना ही शीघ्र हस्तक्षेप है।

पुनर्वास- व्यक्ति या बालक यदि अक्षम न होता तो उसकी समुदाय में होने वाली उपयोगी स्थिति में शिक्षा या उपचार के द्वारा उसे पुनर्स्थापित करना ही पुनर्वास है।

मानव पूँजी- मानव पूँजी श्रम करने की क्षमता में सन्निहित रचनात्मकता के साथ व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुण, ज्ञान एवं क्षमताओं का संग्रह है जिसका प्रयोग आर्थिक मूल्य (economic value) उत्पन्न करने हेतु किया जाता है।

क्रियात्मक साक्षरता- क्रियात्मक साक्षरता समाज या समुदाय में हुए विकासों के अनुसार अपने दैनिक जीवन में तथा रोजगार के कार्यों में प्रयोग होने वाले सभी क्रिया-कलापों को दक्षता पूर्वक करने के कौशलों की व्याख्या करने वाला पद है।

दैनिक जीवन कौशल- दैनिक जीवन कौशल पद व्यक्ति के परिवेश में स्व-देखरेख करने के क्रिया कलापों को निर्देशित करता है।

सहायक उपकरण एवं यन्त्र- विशिष्ट बालक को अपने जीवन को उन्नत एवं आसान बनाने के क्रम में दैनिक क्रिया कलापों में प्रयोग आने वाले सभी उपकरण एवं यन्त्र सहायक उपकरण एवं यन्त्र कहलाते हैं।

बाधा मुक्त परिवेश- ऐसा परिवेश जिसमें एक अक्षम व्यक्ति स्वतंत्र एवं सुरक्षित रूप से भ्रमण कर सके बाधा मुक्त परिवेश कहा जाता है।

सामुदायिक जागरूकता- समुदाय के किसी गंभीर मुद्दे को समुदाय के लोगों को समझाना एवं उससे निजात पाने के उपाय सुझाना।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों को निम्नवत संकलित किया जा सकता है-

- i. विशिष्ट बालकों की अक्षमताओं की पहचान, निदान एवं आँकलन करना।
- ii. विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं एवं अक्षमता का शीघ्र हस्तक्षेप करना।
- iii. भौतिक एवं शैक्षिक अनुकूलन कि पहचान करना तथा विद्यालय एवं अन्य सम्बंधित स्थानों पर बाधामुक्त परिवेश उपलब्ध कराना।

- iv. अभिभावक एवं समुदायिक जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन करना एवं उनमें इनकी सहभागिता सुनिश्चित करना।
- v. विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा हेतु शिक्षण-अधिगम सामग्रियों का निर्माण करना।
- vi. पुनर्वास विशेषज्ञों एवं स्कूल कर्मचारियों के बीच एक सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित कराना।
- vii. बालकों को समाज की मुख्यधारा में लाने वाली गतिविधियों का नियोजन एवं कार्यान्वयन करना।
- viii. बालक को समाज में पूर्ण सहभागिता हेतु तैयार करना एवं उसे समाज का एक उत्तरदायी एवं स्वावलंबी सदस्य बनाना।
- ix. बालक का पुनर्वास करना आदि।

उत्तर 2. बालक में किसी कारण हुई क्षति के कारण अक्षमता की स्थिति को शैक्षिक या चिकित्सकीय तकनीकियों द्वारा पैदा होने से रोकना ही शीघ्र हस्तक्षेप है। यह हस्तक्षेप बालक के जन्म से लेकर जीवन के किसी भी उम्र में हो सकता है।

उत्तर 3. सामाजिक पुनर्वास का तात्पर्य विशिष्ट बालक की अपने समुदाय में उस आर्थिक-सामाजिक स्थिति(Socio-economic Status) में पुनर्स्थापित करने से है जिसमें बालक अक्षम न रहता तो होता। अतः विशिष्ट शिक्षा को इस प्रकार का होना चाहिए कि विशिष्ट बालक का सामाजिक पुनर्वास हो सके बालक अपने समुदाय में स्वावलंबी एवं सम्मानित जीवन जी सके।

उत्तर 4. विशिष्ट शिक्षा के आर्थिक पुनर्वास का अर्थ यह है कि विशिष्ट बालक को शिक्षा के माध्यम से इस प्रकार तैयार करना कि वह अपने भावी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के योग्य हो जाय। बालक को उसकी क्षमता के अनुरूप व्यावसायिक परामर्श, व्यावसायिक प्रशिक्षण, बैंक ऋण आदि की व्यवस्था कराना आर्थिक पुनर्वास के अंतर्गत आता है।

उत्तर 5. विशिष्ट शिक्षा के अंतर्गत सामुदायिक जागरूकता से यह तात्पर्य है कि समुदाय के लोगों की एक उभयनिष्ठ समस्या (अक्षमता) से समुदाय के लोगों को अवगत कराने तथा उससे पेश आने के तरीके, रोकने के उपाय, या अक्षमता को क्षमता में बदलने की तकनीकियों से अवगत कराने से है।

उत्तर 6. ऐसा परिवेश जिसमें एक अक्षम व्यक्ति स्वतंत्र एवं सुरक्षित रूप से भ्रमण कर सके बाधा मुक्त परिवेश कहा जाता है। ऐसा ही परिवेश तैयार करने के क्रम में आज एक सार्वभौमिक अभिकल्प (Universal Design) अस्तित्व में आ गया है जिससे विशिष्ट व्यक्तियों को सार्वजनिक स्थानों पर बाधा मुक्त परिवेश उपलब्ध कराया जा रहा है।

उत्तर 7. वे सभी उपकरण एवं यन्त्र जो विशिष्ट बालक के जीवन को उन्नत एवं आसान बनाये सहायक उपकरण एवं यन्त्र कहे जाते हैं।

उत्तर 8. व्यक्ति या बालक यदि अक्षम न होता तो उसकी समुदाय में होने वाली उपयोगी स्थिति में शिक्षा या उपचार के द्वारा उसे उसके समुदाय में पुनर्स्थापित करना ही पुनर्वास है।

उत्तर 9. क्रियात्मक साक्षरता (Functional literacy) समाज या समुदाय में हुए विकासों के अनुसार अपने दैनिक जीवन में तथा रोजगार के कार्यों में प्रयोग होने वाले सभी क्रिया-कलापों को दक्षता पूर्वक करने के कौशलों की व्याख्या करने वाला पद है।

उत्तर 10. दैनिक जीवन कौशल पद व्यक्ति के परिवेश में स्व-देखरेख करने के क्रिया कलापों को निर्देशित करता है।

उत्तर 11. पुनर्वास कार्यकर्ताओं के द्वारा विभिन्न स्तरों पर हस्तक्षेप का प्रबंध विशिष्ट शिक्षा में है। जिससे बालक की अक्षमता की गंभीरता को रोकने का प्रयास निरंतर जारी रहता है, सक्रीय हस्तक्षेप कहते हैं।

उत्तर 12. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा एक समाज अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर पाता है। विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट बालक की आवश्यकताओं से समाज एवं समुदाय को अवगत कराती है तथा समुदाय को जागरूक बनाती है।

विशिष्ट शिक्षा बालक को अपने समाज का एक उत्तरदायी एवं उत्पादक सदस्य बनाने में सहायता करती है। उसे अपने समाज की रीति-रिवाजों से परिचय कराती है तथा उस समाज की संस्कृति को इस विशिष्ट बालक के हाथों में हस्तांतरित करती है।

उत्तर 13. मानव पूँजी श्रम करने की क्षमता जिसमें रचनात्मकता भी शामिल है, के साथ व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुण, ज्ञान एवं क्षमताओं का संग्रह हैं जिसका प्रयोग आर्थिक मूल्य(economic value) उत्पन्न करने हेतु किया जाता है।

2.8 संदर्भग्रंथ सूची

1. Das.M.(2007). *Education of Exceptional Children*. Atlantic Publishers, New Delhi.
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986). मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार. नई दिल्ली.

2.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. संजीव के.(2008). *विशिष्ट शिक्षा*. जानकी प्रकाशन, पटना.
2. भार्गव एम.(2009). *विशिष्ट बालक शिक्षा एवं पुनर्वास*. एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा.
3. Das. M.(2007). *Education of Exceptional Children*. Atlantic Publishers, New Delhi.

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. विशिष्ट शिक्षा के अतिरिक्त उद्देश्यों की व्याख्या कीजिये।
2. विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
3. विशिष्ट शिक्षा के महत्व की विवेचना कीजिये।

इकाई 3: विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकार व विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ (Types of Special Education Services and Limitations of Special Education)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकार

3.3.1 पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

-
- 3.3.2 विशिष्ट शिक्षा परामर्शों के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन
 - 3.3.3 परिभ्रामी विशिष्ट शिक्षक सेवा व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन
 - 3.3.4 संसाधन कक्ष/ संसाधन शिक्षक व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन
 - 3.3.5 सहयोगी समूह शिक्षण के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन
 - 3.3.6 अंश-कालिक विशिष्ट वर्ग में स्थापन के साथ अंश-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन
 - 3.3.7 पूर्ण-कालिक विशिष्ट कक्षा में स्थापन
 - 3.3.8 पूर्ण-कालिक विशिष्ट विद्यालय में स्थापन
 - 3.3.9 पूर्ण-कालिक आवासीय विद्यालय में स्थापन
 - 3.3.10 अस्पताल तथा गृह-बाध्य अनुदेश
 - 3.4 विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ
 - 3.5 सारांश
 - 3.6 शब्दावली
 - 3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 3.8 संदर्भग्रंथ सूची
 - 3.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री
 - 3.10 निबंधात्मक प्रश्न
-

3.1 प्रस्तावना

विशिष्ट शिक्षा से सम्बंधित यह तृतीय इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययनोपरांत आप विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों तथा उसकी आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट कर सकते हैं।

जैसे-जैसे विशिष्ट शिक्षा का विकास होता गया नए- नए शोध व अविष्कार हुए, नए सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ, समाज के दृष्टिकोण बदले तथा जैसे-वैसे विशिष्ट शिक्षा द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं का विकास हुआ। आज विशिष्ट शिक्षा के द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं को एक संतात्यक(Continuum) के रूप में संगठित किया जा सकता है, जो कि अक्षम बालकों के समे कित शिक्षा से लेकर पृथक्कीकरण तक या नियमित कक्षा में स्थापित करने से लेकर २४-घंटे संस्थागत देख-रेख तक विस्तारित है। इस इकाई में अक्षमता की मात्रा एवं विशिष्ट आवश्यकताओं

की प्रकृति के आधार पर विशिष्ट शिक्षा की कौन-कौन सी सेवाएं उपलब्ध हैं? तथा विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ क्या हैं? आदि प्रश्नों पर विमर्श प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकारों को बता सकेंगे, उनमें विभेद कर सकेंगे तथा विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ बता सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप

- विशिष्ट शिक्षा सेवाओं को गिना सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकारों को बता सकेंगे।
- विभिन्न विशिष्ट शिक्षा सेवाएं क्या हैं? पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- विभिन्न विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ बता सकेंगे।

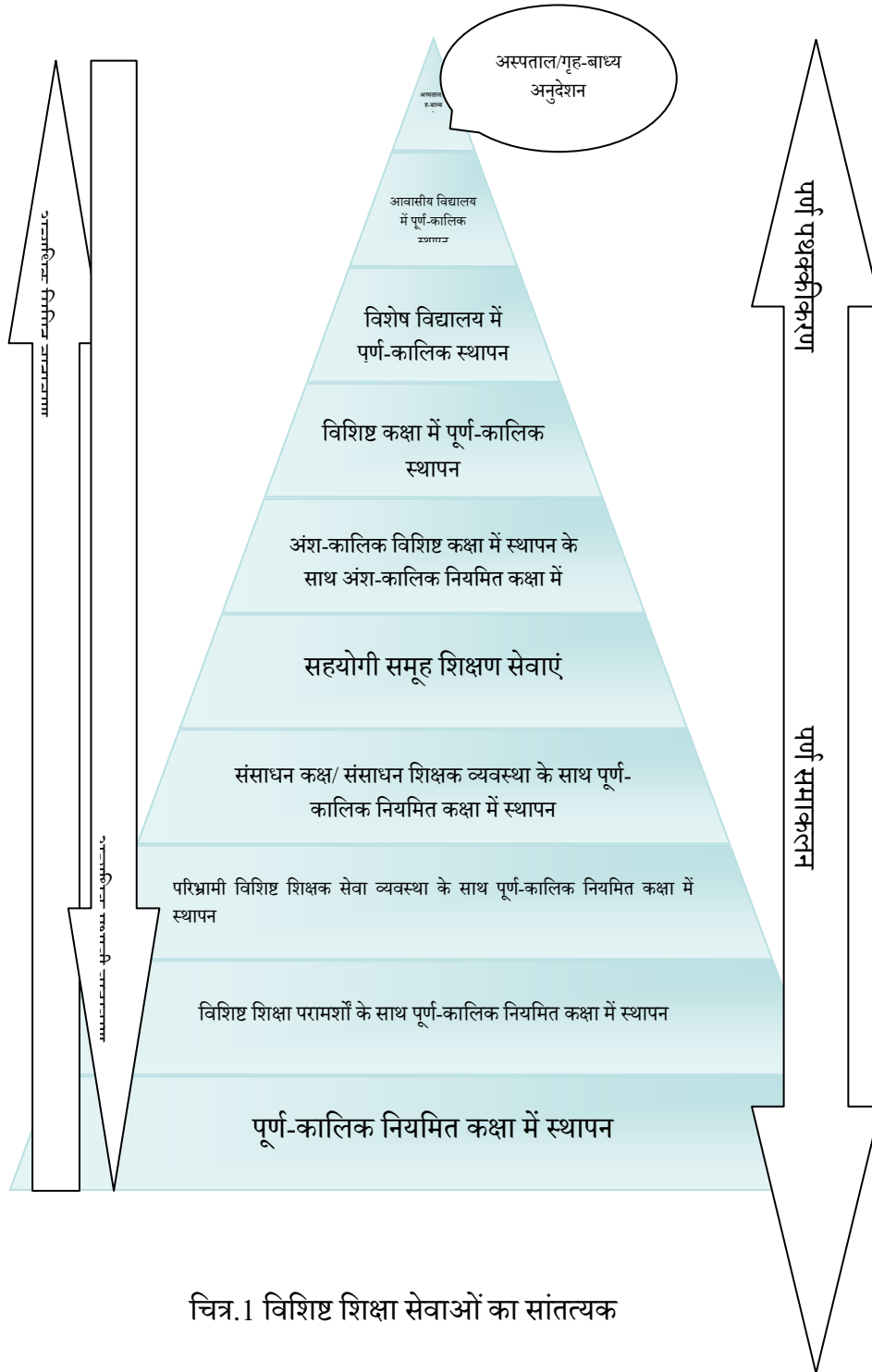
3.3 विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकार

विशिष्ट बालकों की शिक्षा हेतु बहुत सारे प्रयास किये गए। जिसके क्रम में बहुत से प्रतिदर्शों एवं विधियों आदि का विकास हुआ। विशिष्ट शिक्षा के जन्म से ही इस बात पर विचार एवं मंथन जारी रहा कि इसे कैसे उत्कृष्ट एवं बोधगम्य बनाया जाय? विशिष्ट बालकों को अल्पतम सिमित वातावरण (Least Restrictive Environment) में अत्यधिक प्रभावी (Most Effective), सामान्य पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा प्रदान करने के क्रम में बहुत सारे सिद्धांत एवं उपागम अस्तित्व में आए। विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु दी जाने वाली सेवाएं विशिष्ट शिक्षा सेवाएं कही जाती हैं। विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भूत में उपलब्ध सेवाओं को देखा जाय तो वे अधिक सिमित वातावरण में कम प्रभावी सेवाएँ थीं। परन्तु समय एवं विचार के साथ वर्तमान समय में उपलब्ध सेवाएं विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं के अनुसार कई स्तरों पर एक संतात्यक के रूप में उपलब्ध हैं जो कि एक-दूसरे से अपेक्षाकृत अल्पतम सिमित वातावरण में अधिक प्रभावशाली हैं। विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के क्रम में उनकी क्षमताओं एवं आवश्यकताओं के अनुसार उपलब्ध विशिष्ट शिक्षा सेवाएं एक सांतत्यक रूप में निम्नवत हैं।

- 1) पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (Full-time placement in a regular classroom)
- 2) विशिष्ट शिक्षा परामर्शों के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with special education consultations)
- 3) परिभ्रामी विशिष्ट शिक्षक सेवा व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with provisions of itinerant special educator service)
- 4) संसाधन कक्ष/ संसाधन शिक्षक व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with provision of resource room/resource teacher)
- 5) सहयोगी समूह शिक्षण सेवाओं के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (Full-time placement in a regular classroom with provision of collaborative team teaching services)
- 6) अंश-कालिक विशिष्ट वर्ग में स्थापन के साथ अंश-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Part-time placement in a regular classroom with part-time placement in a special class)
- 7) पूर्ण-कालिक विशिष्ट कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a special class)
- 8) पूर्ण-कालिक विशेष विद्यालय में स्थापन(Full-time placement in a special school)
- 9) पूर्ण-कालिक आवासीय विद्यालय में स्थापन(Full-time placement in a residential school)
- 10) अस्पताल तथा गृह-बाध्य अनुदेशन(Hospital and home-bound instruction)

उपरोक्त प्रकार की सेवाएं विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं के अनुसार पुनर्वास कर्मियों विशेषतः विशिष्ट अध्यापकों की अनुशंसा पर उपलब्ध संसाधनों के द्वारा प्रदान की जाती हैं। पुनर्वास कर्मी सर्वप्रथम इन विशेष आवश्यकता के बालकों की पहचान करते हैं, अक्षमता का मूल्यांकन करते हैं फिर उनकी क्षमता एवं अक्षमता के अनुसार उपयुक्त सेवा के लिए अनुशंसा करते हैं। यह क्रिया एक विशिष्ट शिक्षक के लिए अति संवेदनशील एवं जिम्मेदारीपूर्ण है। शिक्षकों को इन सेवाओं का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है तथा इन सेवाओं के चयन से क्या-क्या लाभ या क्या-क्या हानियाँ हो सकती हैं? पर विश्लेषण कर लेने के बाद ही किसी सेवा के लिए अनुशंसा करनी चाहिए। अतः इन सेवाओं

का विस्तृत अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। जिसके क्रम में यह चित्रात्मक परिचर्चा आपको लाभान्वित करेगी।



11)

चित्र.1 विशिष्ट शिक्षा सेवाओं का सांतत्यक

3.3.1 पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

विकालान्गताग्रस्त बालक का पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन निम्नतम स्तर की विशिष्ट शिक्षा सेवा है। इस व्यवस्था के अंतर्गत उन बालकों का स्थापन किया जाता है जिनके विकलांगता की गंभीरता कम होती है या फिर विकलांगता की प्रकृति नियमित कक्षा में शिक्षण-अधिगम को प्रभावित न करती हो। जैसे कि यदि बालक पोलियो से ग्रस्त है और सिर्फ चलने फिरने में असमर्थ है तो इस स्थिति में कक्षा वातावरण में नियमित शिक्षण-अधिगम प्रभावित नहीं होता है। ऐसे बालक का पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन किया जा सकता है। क्योंकि इस प्रकार की उदार विकलांगता वाले बालक कम प्रशिक्षण के बाद ही स्वावलंबी हो जाते हैं और ऐसी स्थिति में किसी विशेषज्ञ के प्रत्यक्ष सलाह की आवश्यकता नहीं हो सकती है। नियमित अध्यापकों को भी किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। उन्हें केवल बालक की विकलांगता की प्रकृति एवं उसकी आवश्यकता से अवगत करा देना ही पर्याप्त हो सकता है।

कक्षा वातावरण एवं विद्यालय वातावरण में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं जिससे बालक को अल्पतम सिमित या बाधा-रहित वातावरण उपलब्ध किया जा सके परन्तु इस स्थापन में वैसे तो बालक को ही विद्यालय की जरूरतों के अनुरूप ढालने का प्रयास किया जाता है। इस व्यवस्था में बालक को समाज की मुख्या धारा में समाकलित कर लिया जाता है।

विशिष्ट बालकों के स्थापन की इस व्यवस्था में नियमित अध्यापक को विशिष्ट बालक की आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यसामग्री, यन्त्र व उपकरण तथा अनुदेशन विधि आदि प्रदान करा दी जाती है। इस स्तर पर सामान्यतया प्रत्यक्ष निर्देशन हेतु किसी विशेषज्ञ की जरूरत नहीं होती है। नियमित अध्यापक की विशेषज्ञता तथा कौशल विशिष्ट बालक की जरूरतों को पूर्ण करने में सक्षम हो सकती हैं।

सामान्यतया उदार मानसिक मंदता से ग्रसित बालक, अधिगम विकलांगता से ग्रसित बालक, अस्थि विकलांगता से ग्रसित बालक, वाणी विकलांगता से ग्रसित बालक, दृष्टिबाधित बालक जो ब्रेल सामग्री के साथ स्वावलंबन पूर्वक काम कर लेते हों तथा ऊँचा सुनने वाले बालक इस प्रकार की नियमित कक्षा की व्यवस्था में पूर्ण-कालिक रूप से स्थापित किये जा सकते हैं।

इस प्रकार की स्थापन व्यवस्था कम खर्चीली है तथा बालक को अपने समुदाय में ही समाकलित करने का अवसर उपलब्ध कराती है। इस व्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि नियमित अध्यापक भी विशिष्ट बालक की जरूरतों को पूर्ण करने में सक्षम होते हैं। किसी विशेषज्ञ के प्रत्यक्ष निर्देशन की जरूरत नहीं पड़ती अतः विद्यालय को ऐसे बालकों को समायोजित करने में कोई परेशानी नहीं होती।

3.3.2 विशिष्ट शिक्षा परामर्शों के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

यह स्थापन भी नियमित कक्षा में पूर्ण-कालिक स्थापन है। इसमें बालक नियमित कक्षा का पूर्ण-कालिक विद्यार्थी होता है। नियमित अध्यापक नियमित कक्षा में विशिष्ट पाठ्य-सामग्रियों, विधियों, उपकरणों एवं यंत्रों की सहायता से विशिष्ट बालक की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अध्यापन कार्य करता है। परन्तु इस व्यवस्था में नियमित अध्यापकों को विशिष्ट शिक्षकों के परामर्श की आवश्यकता हो सकती है। विशिष्ट शिक्षक नियमित शिक्षकों को विशिष्ट सामग्रियों के चयन एवं प्रयोग, यंत्रों एवं उपकरणों के प्रशिक्षण तथा विशिष्ट बालकों के आवश्यकतानुरूप शिक्षण विधियों के प्रयोग सम्बन्धी निर्देशन एवं परामर्श देता है। यहाँ भी विशेषज्ञ के प्रत्यक्ष निर्देशन की आवश्यकता नहीं होती है। वह केवल नियमित अध्यापकों को अनुदेशित करता है।

यह स्थापन भी विशिष्ट बालक को अपने समुदाय में यथासंभव समाकलित करने का प्रयास करता है। इस व्यवस्था में भी विद्यालय के आधारभूत ढांचों में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। परन्तु बालक को अल्पतम सिमित वातावरण प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

3.3.3 परिभ्रामी विशिष्ट शिक्षक सेवा व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

यह स्थापन विशिष्ट बालक की आवश्यकता को थोड़ा अधिक महत्व देते हुए नियमित कक्षा में पूर्ण-कालिक स्थापन की व्यवस्था करता है। इस स्थापन में विशिष्ट बालक को नियमित कक्षा में ही परिभ्रामी शिक्षक के प्रत्यक्ष निर्देशन व अनुदेशन की व्यवस्था होती है। यह परिभ्रामी शिक्षक नियोजित समय-सारणी के अनुसार विशिष्ट बालकों को व्यक्तिगत या छोटे समूहों में सप्ताह के एक या दो दिन विद्यालय में अपनी प्रत्यक्ष सेवा प्रदान करता है। इस प्रकार की व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों या सुदूर क्षेत्रों, जहाँ विशिष्ट बालकों की संख्या कम होती है में उपलब्ध कराई जाती है। ये परिभ्रामी शिक्षक विशिष्ट बालकों से प्रत्यक्ष अंतःक्रिया करते हैं तथा नियमित अध्यापकों को भी विशिष्ट शिक्षण सामग्रियों के चयन, निर्माण एवं प्रयोग तथा विशिष्ट शिक्षण विधियों के साथ उपयुक्त सहायक उपकरणों एवं यंत्रों के प्रशिक्षण सम्बन्धी निर्देशन एवं परामर्श देते हैं।

इस व्यवस्था से उदार विकलांगों के साथ-साथ संयत विकलांग भी आसानी से लाभान्वित हो जाते हैं। यह स्थापन की व्यवस्था भी कम खर्चीली है क्योंकि एक विशिष्ट परिभ्रामी शिक्षक ८-१० विद्यालयों में अपनी सेवा देता है। जहाँ पर नियमित संसाधन शिक्षक उपलब्ध नहीं कराया जा सकता वहाँ के लिए यह सबसे उपयुक्त व्यवस्था है।

3.3.4 संसाधन कक्ष/ संसाधन शिक्षक व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

एक कदम और आगे बढ़ते हुए संसाधन कक्ष/ संसाधन शिक्षक व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन व्यवस्था में विशिष्ट बालक का नामांकन नियमित कक्षा में ही किया जाता है परन्तु उसकी विशिष्ट समस्याओं का निदान संसाधन कक्ष में संसाधन शिक्षक द्वारा किया जाता है। बालक अपने विद्यालय समय का कुछ भाग संसाधन कक्ष में व्यतीत करता है तथा बचे समय में वह नियमित कक्षा का सदस्य होता है। विशिष्ट बालक की समस्याओं की गंभीरता के अनुसार विशिष्ट शिक्षक के द्वारा उसकी समस्याओं का निदान संसाधन कक्ष में किया जाता है। इस प्रकार के स्थापन व्यवस्था में विद्यालय के आधारभूत ढांचे में अंशतः परिवर्तन किया जा सकता है। इस स्थापन में भी उदार एवं संयत विकलांग लाभान्वित होते हैं। जैसे तो कुछ-कुछ विकलांगताओं की गंभीर स्थितियों को भी इस व्यवस्था से लाभ मिल सकता है। यह व्यवस्था भी बालकों को समाकलित करने का प्रयास करती है। इसमें बालक अपने समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ भी अंतःक्रिया स्थापित करता है।

संसाधन शिक्षक संसाधन कक्ष में विशिष्ट बालकों की समस्याओं का निदान करता है। साथ ही वह नियमित शिक्षकों को भी सहायता प्रदान करता है। उन्हें विशिष्ट शिक्षण सहायक सामग्रियों के चयन, निर्माण तथा प्रयोग का प्रशिक्षण देता है तथा विशिष्ट शिक्षण विधियों एवं तकनीकों से भी अवगत कराता है। विशिष्ट बालकों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली सहायक उपकरणों एवं यंत्रों का प्रशिक्षण भी प्रदान करता है।

इस प्रकार यह स्थापन व्यवस्था अपेक्षाकृत महँगी एवं अधिक जटिल है लेकिन गंभीर विकलांगताओं हेतु अधिक उपयोगी एवं प्रभावशाली है।

3.3.5 सहयोगी समूह शिक्षण सेवाओं के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

सहयोगी समूह शिक्षण विशेष आवश्यकता वाले बालकों को उनके सामान्य सहपाठियों के साथ नियमित कक्षा में पूर्ण-कालिक अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत नियमित कक्षा में ही पूरे दिन विशिष्ट अध्यापक नियमित अध्यापकों के साथ विशिष्ट बालकों की समस्याओं को संशोधित एवं अनुकूलित अनुदेशन के द्वारा हल करता है। इस प्रकार की व्यवस्था में छात्रों की संख्या सामान्य कक्षा संख्या से कदापि अधिक नहीं रखी जाती। विशिष्ट बालकों की संख्या कुल बालकों की संख्या की 40%से अधिक नहीं रखी जा सकती। अर्थात् कक्षा में सामान्य बालकों की संख्या 20-25 तथा विशिष्ट बालकों की संख्या अधिकतम 10 हो सकती है।

सहयोगी समूह शिक्षण में एक नियमित अध्यापक के साथ एक विशिष्ट अध्यापक सह-पाठ योजना बनाते हैं तथा उसके अनुसार ही कक्षा में अनुक्रिया एवं क्रिया-कलाप करते हैं। जिससे सभी बालकों के शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। विशिष्ट अध्यापक एवं नियमित अध्यापक साथ में

विभिन्न विधियों के प्रयोग से एक अधिगम-अनुकूलित वातावरण तैयार करते हैं तथा सामान्य पाठ्यक्रम को लागू करते हैं।

जबकि सहयोगी समूह शिक्षण पूरे दिन उपलब्ध कराया जाता है लेकिन बालकों की समस्याओं के अनुसार यह कम भी हो सकता है या विषयगत भी हो सकता है।

यह व्यवस्था भी थोड़ी अपेक्षाकृत महंगी है लेकिन बालकों के पूर्ण समाकलन के अवसर उपलब्ध कराती है। नियमित अध्यापकों की एक व्यावहारिक समस्या भी आ जाती है कि उन्हें विशिष्ट अध्यापक के साथ मिलकर सह-पाठ-योजना का निर्माण करना पड़ता है तथा वे विषय के अध्यापन में भी कठिनाई महसूस करते हैं।

3.3.6 अंश-कालिक विशिष्ट वर्ग में स्थापन के साथ अंश-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन

इस प्रकार की सेवा में विशिष्ट बालक विशिष्ट कक्षा का सदस्य होता है तथा अपने पाठ्यक्रम के शैक्षिक भाग के विषयगत समस्याओं को विद्यालय समय के प्रथम अर्ध-भाग में विशिष्ट कक्षा में ही विशिष्ट अध्यापक के विशेष अनुदेशन की सहायता से हल करता है तथा विद्यालय समय के द्वितीय अर्ध-भाग में वह नियमित कक्षा के क्रिया-कलापों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करता है। जिसमें वह संगीत, कला, शारीरिक शिक्षा एवं अन्य सह-विद्य क्रिया-कलापों में भाग लेता है।

इस प्रकार की सेवा में संयत विकलांग ठीक ढंग से लाभान्वित हो सकते हैं। यह सेवा भी बालक को सामान्य से अलग होने का भान कराते हुए भी समाकलन के अवसर उपलब्ध कराती है।

3.3.7 पूर्ण-कालिक विशिष्ट कक्षा में स्थापन

इस सेवा के अंतर्गत विशिष्ट बालक को पूर्ण-रूप से नियमित विद्यालय की विशिष्ट कक्षा में स्थापित कर दिया जाता है। इस प्रकार की सेवा से सामान्यतया गंभीर विकलांगों- जैसे कि गंभीर मानसिक मंदता से ग्रसित बालक को लाभान्वित किया जा सकता है। यह विकलांगजनों को प्रदान की जाने वाली बहुत ही पुरानी एवं परंपरागत प्रकार की सेवा है। इस प्रकार की सेवा सामान्य सहपाठियों से पृथक्कीकरण के कारण बड़ी आलोचना में भी रही है। इस प्रकार की व्यवस्था में एक ही प्रकार की विकलांगता वाले 10-15 बालकों को विशेष कक्षा में स्थापित किया जाता है, जहाँ बालक विशिष्ट अध्यापको की सहायता से अपने अधिगम को प्राप्त कर पाते हैं। ये बालक पूरे दिन विशिष्ट कक्षा में ही विशिष्ट शिक्षकों के द्वारा लाभान्वित होते हैं। केवल मध्यन्हावकाश तथा सामूहिक विद्यालय क्रियाकलापों एवं समारोहों में ही ये विशिष्ट बालक अपने नियमित सामान्य सहपाठियों के साथ अन्तः क्रिया स्थापित कर पाते हैं। ग्रामीण या सुदूर इलाकों में जहाँ 10-15 एक ही विकलांगता के

बालक नहीं मिल पाते वहाँ कई विकलांगताओं को भी शामिल कर लिया जाता है। लेकिन विशिष्ट अध्यापक की विशेषज्ञता भी विभिन्न विकलांगताओं में हो का भी ध्यान दिया जाता है। ताकि विशिष्ट बालकों की समस्याओं का निदान ठीक ढंग से किया जा सके।

इस प्रकार की सेवा पृथक्कीकरण को बढ़ावा देती है अतः वर्तमान में कम लोकप्रिय है। अपेक्षाकृत शैक्षिक निष्पादन के पदों में अधिक प्रभावशाली हो सकती है। परन्तु व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक आदर्शों को प्राप्त नहीं कर पाती।

3.3.8 पूर्ण-कालिक विशेष विद्यालय में स्थापन

यह सेवा विशिष्ट बालकों की किसी एक विकलांगता के विद्यालय के शैक्षिक परिवेश में अधिगम वातावरण उपलब्ध कराती है जहाँ बालक पूरे दिन एक ही विकलांगता वाले बालकों के बीच अपने अधिगम अनुभवों को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के विद्यालयों को विशेष विद्यालय कहते हैं। यह व्यवस्था भी पृथक्कीकरण को बढ़ावा देती है परन्तु एक सकारात्मक पक्ष यह है कि विद्यालय के बाद बालक अपने माता-पिता एवं परिवार के साथ अंतःक्रिया स्थापित कर पाते हैं। ये विद्यालय विशिष्ट रूप से किसी एक विकलांगता की प्रकृति के अनुसार बनाये गए होते हैं तथा विशिष्ट यंत्रों एवं उपकरणों से सुसज्जित होते हैं जिससे बालकों की सम्पूर्ण समस्याओं का निदान किया जा सके। इस प्रकार की सेवा भी विशेषतः गंभीर विकलांगजनों हेतु ही प्रभावी हो सकती है। अपने देश के अलावे अन्य देशों में भी विशेष विद्यालय काफी प्रचलन में रहें हैं और आज भी मौजूद हैं।

3.3.9 पूर्ण-कालिक आवासीय विद्यालय में स्थापन

इस प्रकार की सेवा आवासीय विद्यालयों द्वारा अति सीमित वातावरण में विशिष्ट बालकों को अधिगम अनुभवों के साथ जीवन कौशलों, स्व-सहायता कौशलों तथा सम्प्रेषण कौशलों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है। इस प्रकार की सेवा से अति गंभीर एवं गहन विकलांगजन लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार की सेवा सामान्यतया पूर्ण दृष्टिबाधित, पूर्ण श्रवणबाधित तथा अति गंभीर मानसिक मंद बालकों को प्रदान की जाती है। ये बालक पूर्णरूपेण समुदाय, परिवार, माता-पिता से पृथक रहते हैं परन्तु लंबी छुट्टियों में उन्हें घर जाने व अपने परिवार या समुदाय से अंतःक्रिया स्थापित करने का अवसर मिलता है। इन विद्यालयों में विशेष विकलांगता के विभिन्न विशेषज्ञों के साथ अन्य विशेषज्ञ भी होते हैं जहाँ बालक की सम्पूर्ण समस्याओं का निदान एक ही छत के निचे उपलब्ध हो सके। जैसे कि चिकित्सक, मनोचिकित्सक, व्यावसायिक चिकित्सक, पुनर्वास कार्यकर्ता एवं निर्देशक आदि उपलब्ध रहते हैं। यहाँ पर बालक स्वाबलंबी तो हो जाता है लेकिन यह सेवा पृथक्कीकरण के कारण थोड़ी आलोचना की पात्र भी है। यह व्यवस्था काफी खर्चीली है तथा ग्रामीण एवं सुदूर क्षेत्रों में जहाँ एक विकलांगता के बालकों की संख्या अत्यंत कम हो, उपलब्ध नहीं कराई जा सकती।

3.3.10 अस्पताल तथा गृह-बाध्य अनुदेशन

इस प्रकार की सेवा उन गहन विकलांगजनों को उपलब्ध कराई जाती है जो कि किसी मनोवैज्ञानिक या शारीरिक परिस्थितियों (स्थायी या अस्थायी) के कारणवश अस्पताल या घर से विद्यालय पहुंचने में असमर्थ हों। इस सेवा के अंतर्गत विशिष्ट अध्यापक बालक को अस्पताल या उसके घर पर ही जाकर अनुदेशन देता है तथा उसकी समस्याओं का समाधान करता है। साथ ही बालक के माता-पिता एवं नियमित अध्यापकों से भी सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उसके विकास की योजना बनाता है। इस प्रकार की सेवा से सामान्यतया अतिगंभीर मानसिकमंद या भावात्मक परेशान बालकों को अनुदेशन उपलब्ध कराया जाता है।

पूर्व में ये सेवाएं अधिक सिमित एवं अल्प प्रभावी थीं परन्तु वर्तमान में ये अल्पतम सिमित वातावरण में अत्यधिक प्रभावी हैं। वर्तमान में ये सेवाएं उदार एवं गंभीर विकलांगजनों को अल्पतम सिमित वातावरण में अत्यधिक प्रभावी अनुभव प्रदान कर रही हैं। वैसे तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ये सेवायें कम प्रभावी मानी जा रही हैं तथा लोग अब समावेशी शिक्षा व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावी एवं मानवीय मान रहे हैं। यून तो ये दोनों अलग-अलग सिद्धांत हैं। यहाँ पर हम केवल विशिष्ट शिक्षा के समाकलन सिद्धांत से ही संबन्धित हैं।

अभ्यास प्रश्न-

टिप्पणी-

- (i) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिए गए खाली स्थान का प्रयोग कीजिये।
- (ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से कीजिये।

प्रश्न-

1. विशेष शिक्षा सेवाएं क्या हैं?

2. नियमित कक्षाओं में पूर्ण-कालिक स्थापन से आप क्या समझते हैं?

3. नियमित कक्षा में पूर्ण-कालिक स्थापन वाली सेवाओं को गिनाइये?

4. विशिष्ट शिक्षा सेवाओं में कौन सी सेवा अत्यधिक प्रभावी वातावरण उपलब्ध कराती है? और कैसे?

5. विशिष्ट शिक्षा सेवाओं में कौन सी सेवा पूर्ण पृथक्कीकरण को बढ़ावा देती है?

6. अत्यधिक सिमित वातावरण से आप क्या समझते है?

7. अल्पतम सिमित एवं अत्यधिक प्रभावी वातावरण का क्या तात्पर्य है?

8. विशेष विद्यालयों में पूर्ण-कालिक स्थापन की अनुशंसा किन परिस्थितियों में की जानी चाहिए? स्पष्ट करें।

3.4 विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ

विशिष्ट शिक्षा जहाँ एक ओर विशिष्ट बालकों की शिक्षा व्यवस्था एवं पुनर्वास का पूर्ण समाधान देने का प्रयत्न करती है वहीं इस शिक्षा व्यवस्था की कुछ सीमाएँ भी हैं। विशिष्ट शिक्षा में समय के साथ बहुत से सिद्धांत आये और सब अपने आप में उत्कृष्ट रहे परन्तु हर आने वाले सिद्धांत पीछे के सिद्धांत को कहीं-न-कहीं अनुपयुक्त ही साबित किये। वैसे तो विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के सभी प्रकार आज भी अस्तित्व में हैं और उन सबकी अपनी महत्ता है। आज भी सभी क्षेत्रों में ज्ञान के असीम विकास हो जाने के बावजूद भी हमें बालकों के व्यवहार का ज्ञान अधूरा ही है तथा हम यह भी जानने में सफल नहीं हो पाए है कि विशिष्ट बालकों का सही परिदृश्य क्या है। इन सभी अपर्याप्त ज्ञान के साथ भी विशिष्ट शिक्षा से होने वाले लाभों व फायदों को नाकारा नहीं जा सकता। विशिष्ट शिक्षा ने ही विशिष्ट बालकों को दुनिया में सामान्य जन्संख्या के समानांतर खड़ा किया है। आज जो भी बदलाव या परिवर्तन हैं उन सबके पीछे कहीं-न-कहीं विशिष्ट शिक्षा का ही योगदान है। इन सभी विशेषताओं के साथ विशिष्ट शिक्षा की सीमाओं को निम्नलिखित बिन्दुओं में संकलित किया जा सकता है।

- विशिष्ट बालक जब इस प्रकार की सेवाओं के लिए चिन्हित किया जाता है तब तक सामान्यतया देर हो जाती है। जिससे बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन प्राप्त करना कठिन हो जाता है। विशिष्ट शिक्षा में हुए सभी प्रयासों के बावजूद अभी तक शीघ्र हस्तक्षेप की प्रभावी रणनीति नहीं बनायी जा सकी है जिससे बालक का पूर्ण विकास किया सके। बालक का जब विशेष विद्यालय में नामांकन किया जाता है तो उसे सामान्यतया घरेलू प्रशिक्षण भी नहीं दिया गया रहता है। परिणामस्वरूप इन बालकों को सामाजिक कौशलों, दैनिक जीवन जीने के कौशलों के साथ शैक्षिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण देने में अधिक समय लगता है।
- विशिष्ट बालकों का नामांकन विभिन्न उपलब्ध सेवाओं में उनकी अक्षमता एवं क्षमता के आधार पर किये गए वर्गीकरण के आधार पर किया जाता है। जब कि यह वर्गीकरण कि वास्तविकता ही संदेह के घेरे में है। क्या वह बालक जिसको किसी विशिष्ट सेवा के लिए अनुशंसित किया गया है उसी सेवा को प्राप्त करने के योग्य है? या उसको किसी अन्य सेवा से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। चूँकि यह प्रक्रिया मानवीय है इसलिए इसकी वस्तुनिष्ठता भी कम है।

- विशिष्ट बालकों को विभिन्न विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के लिए अनुशंसित करने से पूर्व उनकी विकलांगता का आँकलन एवं मूल्यांकन विभिन्न परीक्षणों एवं तकनीकों के द्वारा किया जाता है। आई इ डी योजना में यह उल्लेख किया गया है कि यह सभी मूल्यांकन एवं आँकलन योग्य एवं अनुभवी विशेषज्ञों द्वारा किया जाना चाहिए। यह आँकलन दो प्रयोजनों के लिए किया जाता है- विकलांगता का स्तर एवं प्रकार या प्रकृति जानने हेतु तथा इसके हस्तक्षेप हेतु प्रदान किये जाने वाले निर्देशन हेतु। यहाँ पर दो प्रश्न सामने आते हैं- आँकलन हेतु कौन सा परीक्षण एवं कौन सी तकनीक का प्रयोग किया गया तथा आँकलन किसके द्वारा किया गया। ये दोनों प्रश्न स्वाभाविक हैं क्योंकि इस क्षेत्र में जो भी परीक्षण एवं तकनीकें उपलब्ध है वो निरपेक्ष नहीं हैं तथा ये परीक्षण आँकलन विशेषज्ञों को उपलब्ध भी नहीं हो पाते। दूसरे कि ग्रामीण या सुदूर इलाकों में विभिन्न आँकलन विशेषज्ञों की अनुपलब्धता भी इस प्रक्रिया को अविश्वसनीय बना देती है।
- आगे हम बात करें तो “बच्चे कैसे सिखते हैं” तथा “सिखने के कारकों” का स्पष्ट चित्रण आज भी एक मुद्दा है। और जब विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएं भिन्न है तो उनके सिखने के तरीके भी भिन्न होंगे तथा इनके सिखने को प्रभावित करने वाले कारक भी भिन्न होंगे। ऐसी परिस्थिति में अधूरे ज्ञान के साथ ही हम विशिष्ट जनों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था कर पा रहे हैं।
- चूँकि यह शिक्षा सेवा अपेक्षाकृत महँगी है इसलिए निजी संस्थानों के साथ सरकारें भी बजट के आभाव में इसे लागू करने में कठिनाई महसूस करती हैं।
- वर्तमान में विशिष्ट बालकों को नियमित विद्यालयों में नामांकित किया जा रहा है। परन्तु प्रश्न है क्या उनकी क्षमताओं का पूर्ण विकास किया जा रहा है? क्या विशेष शिक्षक एवं अन्य पुनर्वास कर्मियों की सेवा उपलब्ध कराई जा रही है? क्या हम उन्हें निम्नतम स्तर का अधिगम उपलब्ध कराने में सक्षम हैं? तो हम पाएंगे कि अभी हम बहुत पीछे है। इसके पीछे नियुक्ति प्रक्रियाओं में भी भारी खामियां हैं। एक तरफ जहाँ योग्य विशेषज्ञों की कमियां हैं, वे बेरोजगार भी हैं, वहीं अप्रशिक्षितों को भर्ती कर दिया गया है।

- परीक्षा प्रणाली भी अभी विशिष्ट बालकों के अनुकूल नहीं हो पाई है। कुछ परिवर्तन हुए हैं जैसे- दृष्टिबाधितों को लेखक व अधिक समय की व्यवस्था। परन्तु अन्य विकलांगजनों एवं दृष्टिबाधितों को भी जांचने व परखने के क्रम में अभी परीक्षा प्रणाली सक्षम नहीं हो पाई है।
- विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण (Labelling) भी अभी एक बहुत बड़ा मुद्दा है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि वर्गीकरण नहीं होना चाहिए तथा कुछ इसके पक्ष में हैं। वास्तव में इसके कुछ अच्छे प्रभावों के साथ कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हैं। नकारात्मक प्रभाव इतने प्रबल हैं कि बालक को दीन-हीन का भाव ला देते हैं तथा समाज, परिवार आदि में भी लोग बालक के साथ भेद-भाव करने लगते हैं, जो कि अमानवीय है।
- विशिष्ट शिक्षा की एक बड़ी परेशानी यह भी है कि वह एक ही विशिष्ट (संसाधन) शिक्षक से सभी विषयों का ज्ञाता होने की अपेक्षा करती है। बहुत सारी सेवाओं में केवल एक विशिष्ट शिक्षक की व्यवस्था है तथा प्रत्यक्ष अनुदेशन की भी व्यवस्था भी है। जो कि अव्यवहारिक है।
- एक बड़ी समस्या यह है कि बहुत सी सेवाओं के अंतर्गत एक विद्यालय में एक विशिष्ट अध्यापक के नियुक्ति का प्रयोजन है। एक ही विशिष्ट शिक्षक से सभी विकलांगताओं की विशेषज्ञता की अपेक्षा करना भी अतर्कसंगत है।
- विशिष्ट शिक्षा सेवा में कई प्रकार की सेवाएं तो पृथक्कीकरण को बढ़ावा देती हैं। जबकि कई ऐसी विशिष्ट शिक्षा सेवाएं हैं जो समाकलन तक की पहुँच तो रखती हैं परन्तु समावेशन जैसे आदर्शों को प्राप्त करने में असक्षम हैं।
- विशिष्ट शिक्षा सेवा में खास कर वे सेवाएं जो पृथक्कीकरण को बढ़ावा देती हैं माता-पिता की भूमिका से अनभिज्ञ कराती हैं। इस शिक्षा सेवा में माता-पिता की सहभागिता भी सुनिश्चित नहीं हो पाती अतः अप्रभावी है।

अभ्यास प्रश्न-

टिप्पणी-

- (i) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिए गए खाली स्थान का प्रयोग कीजिये।
- (ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से कीजिये।

प्रश्न-

9. वर्गीकरण की प्रक्रिया विशिष्ट शिक्षा को कैसे सिमित करती है?

10. आँकलन की प्रक्रिया से विशिष्ट शिक्षा कैसे प्रभावित होती है?

11. “सीखने के निम्नतम स्तर” से आप क्या समझते हैं?

12. विशिष्ट शिक्षा सेवाओं को प्रचलित परीक्षा प्रणाली कैसे प्रभावित करती है?

3.5 सारांश-

विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु किये जाने वाले प्रयास के क्रम में कई प्रकार की सेवाएं अस्तित्व में आयीं जिनमें से प्रमुख सेवाएं एक संतात्यक के रूप में व्यवस्थित की जा सकती हैं, निम्नवत हैं-

- 1) **पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (Full-time placement in a regular classroom):** इस प्रकार की सेवा में विशिष्ट बालक नियमित कक्षा का पूर्ण-कालिक सदस्य होता है तथा नियमित अध्यापकों के अनुदेशों से ही उसकी समस्याओं का निदान कर लिया जाता है।
- 2) **विशिष्ट शिक्षा परामर्शों के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with special education consultations):** इस प्रकार की सेवा विशिष्ट बालकों को नियमित कक्षा में ही स्थापित कराती है तथा उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विशेष शिक्षण सहायक सामग्रियों, सहायक उपकरणों एवं तकनीकों के प्रयोग का प्रयोजन करती है।
- 3) **परिभ्रामी विशिष्ट शिक्षक सेवा व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with provisions of itinerant special educator service):** इस सेवा के अंतर्गत विशिष्ट बालक नियमित कक्षा का ही सदस्य रहता है परन्तु एक परिभ्रामी शिक्षक की सहायता से उसके नियमित शिक्षकों को निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था होती है। यहाँ पर विशिष्ट शिक्षक के द्वारा बालक को प्रत्यक्ष निर्देशन नहीं मिलता है।
- 4) **संसाधन कक्ष/ संसाधन शिक्षक व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with provision of resource room/resource teacher):** यह सेवा विशिष्ट

बालकों को विशिष्ट शिक्षक की प्रत्यक्ष सेवा संसाधन कक्ष में प्रदान कराती है तथा बालक अन्य क्रियाकलापों को नियमित कक्षाओं में ही करता है।

- 5) सहयोगी समूह शिक्षण सेवाओं के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (**Full-time placement in a regular classroom with provision of collaborative team teaching services**): इस सेवा में बालक नियमित कक्षा में ही अपने अन्य सहपाठियों के साथ शिक्षा ग्रहण करता है। यहाँ पर विशिष्ट बालकों की समस्याओं को हल करने हेतु एक ही समय में कक्षा में दो या तीन शिक्षक होते हैं। एक नियमित शिक्षक व अन्य विशिष्ट शिक्षक।
- 6) अंश-कालिक विशिष्ट वर्ग में स्थापन के साथ अंश-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (**Part-time placement in a regular classroom with part-time placement in a special class**): इस प्रकार की सेवा में बालक विद्यालय समय का कुछ भाग विशिष्ट वर्ग में, जहाँ उसकी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है तथा शेष नियमित कक्षा में, जहाँ वह अन्य सामान्य सहपाठियों के साथ विद्यालय की क्रियाकलापों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करता है व्यतीत करता है।
- 7) पूर्ण-कालिक विशिष्ट कक्षा में स्थापन (**Full-time placement in a special class**): इस प्रकार की सेवा में नियमित विद्यालय में ही एक विशिष्ट कक्षा का प्रबंध होता है जिसमें बालक पूरे दिन उसी विशिष्ट कक्षा में शिक्षा ग्रहण करता है तथा विद्यालय के अन्य सामूहिक गैर शैक्षणिक क्रिया-कलापों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करता है।
- 8) पूर्ण-कालिक विशेष विद्यालय में स्थापन (**Full-time placement in a special school**): यह सेवा किसी एक विकलांगता में विशेषज्ञता रखती है तथा इस विद्यालय में केवल उसी विकलांगता के विद्यार्थी ही नामांकित किये जाते हैं। बालक विद्यालय में विद्यार्जनोपरांत अपने घर व समुदाय से अंतःक्रिया करने का अवसर प्राप्त करता है।
- 9) पूर्ण-कालिक आवासीय विद्यालय में स्थापन (**Full-time placement in a residential school**): इस सेवा के अंतर्गत बालक आवासीय विद्यालय जो की

किसी एक विकलांगता में विशेषज्ञता रखते हैं में नामांकित किया जाता है तथा २४-घंटे विद्यालय में अपने शैक्षिक क्रिया-कलापों के साथ जीवन के अनेक कौशलों को सीखता है। बालक छुट्टियों एवं त्योहारों में अपने घर को जाते है।

10) अस्पताल तथा गृह-बाध्य अनुदेशन (Hospital and home-bound instruction): इस सेवा के अंतर्गत बालक को अस्पताल या घर पर ही अनुदेशन की व्यवस्था की जाती है। इस सेवा में विशिष्ट शिक्षक स्वयं बालक को अनुदेश देता है तथा परिवार के अन्य सदस्यों को भी निर्देशित करता है।

विशिष्ट शिक्षा की ये सभी सेवाएँ विशिष्ट बालक को निःसंदेह अधिक लाभान्वित करती हैं परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं जो कि निम्नवत हैं-

- विशिष्ट बालक जब इस प्रकार की सेवाओं के लिए चिन्हित किया जाता है तब तक सामान्यतया देर हो जाती है। जिससे बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन प्राप्त करना कठिन हो जाता है।
- विशिष्ट बालकों का नामांकन विभिन्न उपलब्ध सेवाओं में उनकी अक्षमता एवं क्षमता के आधार पर किये गए वर्गीकरण के आधार पर किया जाता है। जब कि यह वर्गीकरण कि वास्तविकता ही संदेह के घेरे में है।
- विशिष्ट बालकों को विभिन्न विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के लिए अनुशासित करने से पूर्व उनकी विकलांगता का आँकलन एवं मूल्यांकन विभिन्न परीक्षणों एवं तकनीकों के द्वारा किया जाता है। इस क्षेत्र में जो भी परीक्षण एवं तकनीकें उपलब्ध है वो निरपेक्ष नहीं हैं तथा ये परीक्षण आँकलन विशेषज्ञों को उपलब्ध भी नहीं हो पाते। दूसरे कि ग्रामीण या सुदूर इलाकों में विभिन्न आँकलन विशेषज्ञों की अनुपलब्धता भी इस प्रक्रिया को अविश्वसनीय बना देती है।
- आगे हम बात करें तो “बच्चे कैसे सिखते हैं” तथा “सिखने के कारकों” का स्पष्ट चित्रण आज भी एक मुद्दा है।
- चूँकि यह शिक्षा सेवा अपेक्षाकृत महँगी है इसलिए निजी संस्थानों के साथ सरकारें भी बजट के आभाव में इसे लागू करने में कठिनाई महसूस करती हैं।

- वर्तमान में विशिष्ट बालकों को नियमित विद्यालयों में नामांकित किया जा रहा है। परन्तु प्रश्न है क्या उनकी क्षमताओं का पूर्ण विकास किया जा रहा है? क्या विशेष शिक्षक एवं अन्य पुनर्वास कर्मियों की सेवा उपलब्ध कराई जा रही है? क्या हम उन्हें निम्नतम स्तर का अधिगम उपलब्ध कराने में सक्षम हैं? तो हम पाएंगे कि अभी हम बहुत पीछे हैं।
- परीक्षा प्रणाली भी अभी विशिष्ट बालकों के अनुकूल नहीं हो पाई है। कुछ परिवर्तन हुए हैं जैसे- दृष्टिबाधितों को लेखक व अधिक समय की व्यवस्था। परन्तु अन्य विकलांगजनों एवं दृष्टिबाधितों को भी जांचने व परखने के क्रम में अभी परीक्षा प्रणाली सक्षम नहीं हो पाई है।
- विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण (Labelling) भी अभी एक बहुत बड़ा मुद्दा है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि वर्गीकरण नहीं होना चाहिए तथा कुछ इसके पक्ष में हैं।
- विशिष्ट शिक्षा की एक बड़ी परेशानी यह भी है कि वह एक ही विशिष्ट (संसाधन) शिक्षक से सभी विषयों का ज्ञाता होने की अपेक्षा करती है जोकि अव्यवहारिक है।
- एक बड़ी समस्या यह है कि बहुत सी सेवाओं के अंतर्गत एक विद्यालय में एक विशिष्ट अध्यापक के नियुक्ति का प्रयोजन है। एक ही विशिष्ट शिक्षक से सभी विकलांगताओं की विशेषज्ञता की अपेक्षा करना भी अतर्कसंगत है।
- विशिष्ट शिक्षा सेवा समाकलन तक की पहुँच तो रखती है परन्तु समावेशन जैसे आदर्शों को प्राप्त करने में असक्षम हैं।
- विशिष्ट शिक्षा सेवा में माता-पिता की सहभागिता भी सुनिश्चित नहीं हो पाती अतः अप्रभावी है।

3.6 शब्दावली

संतात्यक- बिना किसी विदरूप परिवर्तन के क्रमागत विकास।

नियमित कक्षा- सामान्य विद्यालयों में जहाँ सामान्य बच्चे अनुदेशन प्राप्त करते हैं।

अल्पतम सिमित वातावरण- ऐसा वातावरण जहाँ बालक का सर्वांगीण विकास अधिकतम हो।

समाकलन- बालक को उसके परिवार व समुदाय से जोड़ना।

पृथक्कीकरण- बालक को उसके समुदाय तथा परिवार से अलग करना।

संयत विकलांगता- विकलांगता की गंभीरता को प्रदर्शित करता है जो कि वर्गीकरण का एक पद है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. विशिष्ट बालकों को शैक्षिक परिवेश में प्रदान की जाने वाली वे सभी सेवाएँ जो बालक के सर्वांगीण विकास के लिए दी जाती हैं विशिष्ट शिक्षा सेवाएँ कहलाती हैं।

उत्तर 2. नियमित कक्षाओं में पूर्ण-कालिक स्थापन से तात्पर्य यह है कि बालक पुरे दिन नियमित कक्षा में ही सामान्य विद्यार्थियों के साथ अपने अधिगम अनुभवों को प्राप्त करता है। विद्यालय के समस्त क्रियाकलापों का आनंद उठाता है।

उत्तर 3. नियमित कक्षाओं में पूर्ण-कालिक स्थापन वाली सेवाएँ निम्नलिखित हैं-

- 1) पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (Full-time placement in a regular classroom)
- 2) विशिष्ट शिक्षा परामर्शों के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with special education consultations)
- 3) परिभ्रामी विशिष्ट शिक्षक सेवा व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with provisions of itinerant special educator service)
- 4) संसाधन कक्ष/ संसाधन शिक्षक व्यवस्था के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन(Full-time placement in a regular classroom with provision of resource room/resource teacher)
- 5) सहयोगी समूह शिक्षण सेवाओं के साथ पूर्ण-कालिक नियमित कक्षा में स्थापन (Full-time placement in a regular classroom with provision of collaborative team teaching services)।

उत्तर 4. विशिष्ट शिक्षा सेवा में नियमित कक्षा में पूर्ण-कालिक स्थापन वाली सेवा अत्यधिक प्रभावी वातावरण उपलब्ध कराती है। क्योंकि इसमें बालक स्वाभाविक रूप में सीखता है। यहाँ बालक के

समाकलन का प्राविधान है। बालक की मूल प्रवृत्तियों का सम्मान किया जाता है। विशिष्ट शिक्षा का बालक को अंततः समुदाय का एक उत्पादक एवं जिम्मेदार सदस्य बनाना उद्देश्य है इसलिए समुदाय में रहकर वह समुदाय से समायोजन भी सिखाता है।

उत्तर 5. विशिष्ट शिक्षा सेवाओं में आवासीय विद्यालय में पूर्ण-कालिक स्थापन तथा अस्पताल या गृह-बाध्य अनुदेशन वाली सेवाएं पूर्ण पृथक्कीकरण को बढ़ावा देती हैं। इन सेवाओं में बालक का समुदाय से अंतःक्रिया बिल्कुल नगण्य होती है फलस्वरूप बालक अपने समुदाय में समायोजन करने में कठिनाई महसूस करता है।

उत्तर 6. ऐसा वातावरण जहाँ बालक का अधिगम अनुभव अत्यधिक कम हो अत्यधिक सिमित वातावरण कहलाता है। जहाँ बालक की क्रिया-कलापों में बाधाएँ हों। ऐसे वातावरण में बालक का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता।

उत्तर 7. अल्पतम सिमित एवं अत्यधिक प्रभावी वातावरण से तात्पर्य यह है कि ऐसा वातावरण जहाँ बालक का अधिगम अनुभव अत्यधिक हो तथा यह अधिगम अनुभव गुणात्मक भी हो। जहाँ बालक अपनी प्रत्येक क्रिया-कलापों में स्वतंत्रता का अनुभव कर सके।

उत्तर 8. विशेष विद्यालयों में पूर्ण-कालिक स्थापन की अनुशंसा तब की जानी चाहिए जब बालक में विकलांगता की गंभीरता अत्यधिक हो या गंभीर विकलांग हो तथा नियमित विद्यालयों में उसके आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाए। क्योंकि ऐसी परिस्थिति में नियमित विद्यालय सिमित संसाधनों के साथ बालक के साथ न्याय नहीं कर सकते। बालक धीरे-धीरे और गंभीर समस्याओं से घिर सकता है। अतः ऐसी परिस्थिति में बालक के सर्वांगीण विकास हेतु विशेष विद्यालय में पूर्ण-कालिक स्थापन की अनुशंसा की जा सकती है।

उत्तर 9. वर्गीकरण से बालक का स्थापन क्रियान्वित होता है तथा बालक के लिए शैक्षिक कार्यक्रम बनाये जाते हैं अतः यह बहुत ही संवेदनशील क्रिया है। तो यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि “क्या वह बालक जिसको किसी विशिष्ट सेवा के लिए अनुशंसित किया गया है उसी सेवा को प्राप्त करने के योग्य है?” या उसको किसी अन्य सेवा से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। चूँकि यह प्रक्रिया मानवीय है इसलिए इसकी वस्तुनिष्ठता भी कम है। परिणामस्वरूप यदि बालक का वर्गीकरण सही नहीं हुआ तो उसे दिए जाने वाले अधिगम अनुभव भी सही नहीं होंगे और विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकेंगे।

उत्तर 10. विशिष्ट बालकों को विभिन्न विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के लिए अनुशंसित करने से पूर्व उनकी विकलांगता का आँकलन एवं मूल्यांकन विभिन्न परीक्षणों एवं तकनीकों के द्वारा किया जाता है। यह आँकलन दो प्रयोजनों के लिए किया जाता है- विकलांगता का स्तर एवं प्रकार या प्रकृति जानने हेतु तथा इसके हस्तक्षेप हेतु प्रदान किये जाने वाले निर्देशन हेतु। यहाँ पर दो प्रश्न सामने आते

हैं- आँकलन हेतु कौन सा परीक्षण एवं कौन सी तकनीकी का प्रयोग किया गया तथा आँकलन किसके द्वारा किया गया। ये दोनों प्रश्न स्वाभाविक हैं क्योंकि इस क्षेत्र में जो भी परीक्षण एवं तकनीकें उपलब्ध हैं वो निरपेक्ष नहीं हैं तथा ये परीक्षण आँकलन विशेषज्ञों को उपलब्ध भी नहीं हो पाते। दूसरे कि ग्रामीण या सुदूर इलाकों में विभिन्न आँकलन विशेषज्ञों की अनुपलब्धता भी इस प्रक्रिया को अविश्वसनीय बना देती है।

उत्तर 11. “सीखने के निम्नतम स्तर” का तात्पर्य प्रेक्षित सात्रिक व्यवहारों से परिभाषित अपेक्षित अधिगम निष्पादन से है। बालकों को सभी विद्यालयों में समता व समानता के आधार पर अधिगम अनुभव प्रदान किया जाना सुनिश्चित किया जा चुका है। इसी क्रम में सिखने के निम्नतम स्तर को भी उपरोक्त रूप में सुनिश्चित किया गया है।

उत्तर 12. परीक्षा प्रणाली भी अभी विशिष्ट बालकों के अनुकूल नहीं हो पाई है। कुछ परिवर्तन हुए हैं जैसे- दृष्टिबाधितों को लेखक व अधिक समय की व्यवस्था। परन्तु अन्य विकलांगजनों एवं दृष्टिबाधितों को भी जांचने व परखने के क्रम में अभी परीक्षा प्रणाली सक्षम नहीं हो पाई है। जैसे एक श्रवणबाधित बालक की सम्प्रेषण क्षमता प्रभावित हो जाती है और वह सीखे गए अनुभवों को पुस्तिका पर हू-ब-हू उतार नहीं पाता तो क्या वह वास्तव में कुछ सिखा ही नहीं? ऐसी स्थितियों में हमारी प्रचलित परीक्षा प्रणाली फेल हो जाती है।

3.8 संदर्भग्रंथ सूची

1. दास एम० (२००७). *एजुकेशन आफ एक्सप्सनल चिल्ड्रेन*. अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
2. संजीव के० (२००८). *विशिष्ट शिक्षा*. जानकी प्रकाशन, पटना.

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. संजीव के० (२००८). *विशिष्ट शिक्षा*. जानकी प्रकाशन, पटना.
2. भार्गव एम० (२००९). *विशिष्ट बालक शिक्षा एवं पुनर्वास*. एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा.
3. हल्हान, डी० पी० एण्ड काफमैन, जे० एम० (१९९१). *अपवादित बच्चे: विशिष्ट शिक्षा का परिचय*. एलिन एण्ड बेकन, बोस्टन.
4. दास एम० (२००७). *एजुकेशन आफ एक्सप्सनल चिल्ड्रेन*. अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली.

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. विशिष्ट शिक्षा सेवाओं के प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
2. आप विशिष्ट शिक्षा सेवाओं में सबसे प्रभावी सेवा किसे मानते हैं? और क्यों?
3. विशिष्ट शिक्षा की सीमाएँ क्या हैं? विवेचना कीजिये।

इकाई- 04 शिक्षा में समावेशन की अवधारणा तथा शिक्षा में समावेशन के अवयव (Concept of Inclusion in Education, Components of Inclusion in Education)

इकाई की रूप रेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 समावेशी शिक्षा
- 4.4 विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा
 - 4.4.1 विशेष शिक्षा
 - 4.4.2 एकीकृत शिक्षा
- 4.5 एकीकृत शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा में अन्तर
- 4.6 विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा
 - 4.6.1 मंद बुद्धि बालक
 - 4.6.2 दृष्टि बाधित बालक
 - 4.6.3 श्रवण बाधित बालक
- 4.7 समावेशी शिक्षा हेतु प्रशासनिक उपाय
- 4.8 माता पिता एवं अभिभावकों की भूमिका
- 4.9 सक्षम/सकलांग सहपाठियों की भूमिका
- 4.10 नियमित अध्यापकों की भूमिका एवं उतरदायित्व
- 4.11 शब्दावली

 4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.13 सारांश

4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

समाज में कई प्रकार के बालक मौजूद होते हैं, उनमें वैयक्तिक विभिन्नता होती है। कुछ बालक सामान्य बालक से कुछ अलग होते हैं। जिन्हें विशिष्ट बालक या विशेष आवश्यकता वाले बालक कहा जाता है। जब विशेष आवश्यकता वाले बालक एवं सामान्य बालकों को एक ही छत के नीचे शिक्षा प्रदान किया जाता है तो वह समावेशी शिक्षा कहलाती है।

इस इकाई में हमलोग समावेशी शिक्षा एवं विशेष शिक्षा एकीकृत शिक्षा पर चर्चा करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत प्रमुख विशेष आवश्यकता वाले बालकों की पहचान एवं उनकी शिक्षा के बारे में जानने का प्रयत्न करेंगे, साथ ही समावेशी शिक्षा, प्रशासनिक उपायों एवं माता-पिता, सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका की भी चर्चा करेंगे।

हम आशा करते हैं कि आप इस इकाई को ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे तथा समावेशी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को जानेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- समावेशी शिक्षा के व्यापक अर्थ को समझ सकेंगे।
- विशेष शिक्षा, एकीकृत शिक्षा एवं समावेशी शिक्षा के बीच तुलना कर सकेंगे।
- प्रमुख विशेष आवश्यकता वाले बालकों की पहचान एवं उनकी शिक्षा पद्धति को समझ सकेंगे।
- समावेशी शिक्षा के प्रशासनिक उपायों की चर्चा कर सकेंगे।
- समावेशी शिक्षा में माता-पिता, सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका पर चर्चा कर सकेंगे।

4.3 समावेशी शिक्षा (Inclusive Education)

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थियों के कमजोरियों, उसके मजबूत पक्षों एवं उसकी क्षमताओं को एक ही कक्षा में विकास करना।

समावेशन विभिन्न अधिगमकर्ता, जैसे-विभिन्न अक्षम बालकों, विभिन्न तरीकों से सिखने वाले बालकों को उनकी व्यक्तिगत अधिगम क्षमताओं को विकसित करने की लिए शिक्षण व्यूह रचना को अपनाना एवं बिना किसी भेदभाव या समूह से अलग कर विद्यार्थियों को शिक्षा देना।

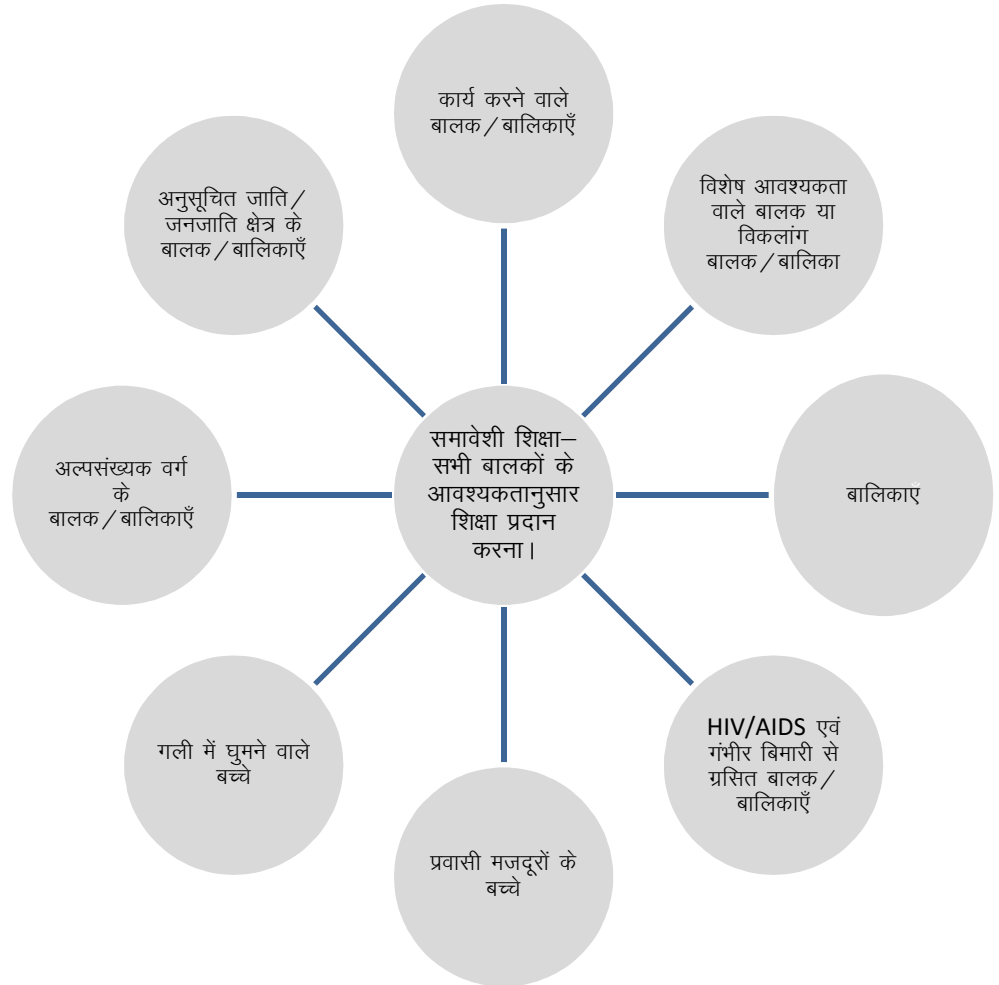
समावेशी शिक्षा के उद्देश्य -

- समावेशी विद्यालय का उद्देश्य उचित व्यक्तिगत सहायता एवं सेवा प्रदान करना।
- शिक्षक समावेशी कक्षा में विभिन्न तरीकों को अपनाकर सभी विद्यार्थियों के अधिगम को बढ़ाता है।
- समावेशी शिक्षा का उद्देश्य सभी वर्ग के विद्यार्थियों में ज्ञान, कौशल एवं सूचनाओं को बढ़ाना है।
- इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार के पिछड़ों एवं अलग-अलग क्षमताओं वाले छात्रों को एक साथ विद्यालय में समाहित करना।
- शिक्षकों के सहयोग एवं सहभागिता, माता-पिता एवं सामाजिक नेताओं द्वारा अच्छे कलाओं का विकास करना।

समावेशन एक शैक्षिक उपागम एवं दर्शन हैं जो कि सभी विद्यार्थियों को सामाजिक सदस्यता के साथ शैक्षिक एवं सामाजिक उपलब्धि प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती है। समावेशन में प्रत्येक विद्यार्थियों का उनके विशेष आवश्यकताओं एवं विशेष अधिगम क्रियाओं को शामिल किया जाता है।

समावेशी शिक्षा एक विस्तृत शब्दावली है, जिसके अन्तर्गत कई तथ्यों को समाहित किया गया है। इसमें सभी बालकों को एक साथ शिक्षा देने का प्रावधान है। चाहे वे उनमें कितनी ही प्रकार की विभिन्नता क्यों न पाई जाती हों। जैसे- यदि कोई बालक उम्र, लिंग या भाषायी रूप से भिन्न हो, विकलांग तथा किसी अन्य गंभीर बिमारी से ग्रसित हो, सभी को इसके अंतर्गत एक साथ शिक्षा दी जाती है। इसके तहत सभी बच्चों को आवश्यकताओं के अनुरूप ही शैक्षिक संरचना, एवं शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह विस्तृत व्यूह रचना का एक भाग है, पाठ्यक्रम जिसके द्वारा समावेशी समाज का उत्थान किया जाता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। इसमें किसी भी प्रकार के

बालकों को रोका नहीं जाता हैं एवं अन्य प्रकार के संसाधनों के माध्यम से उनकी क्षति पूर्ति की जाती है।



4.4 विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा (Special Education and Integrated Education):

शिक्षा की व्यवस्था पूरे विश्व में प्राचीन काल से चली आ रही है। जैसे-जैसे समाज का उत्थान होता गया शिक्षा की पद्धतियाँ भी बदलती गईं। इसी क्रम में शिक्षा के अन्तर्गत जैसे बालकों पर भी ध्यान दिया जाने लगा जिसे लोग पहले यह मानते थे कि ये शिक्षा प्राप्त ही नहीं कर सकते हैं। जैसे बालक

जो सामान्य बालक या औसत बालकों से भिन्न होते इन्हे लोग विशेष बालक या विशिष्ट बालक (Children with Special Needs) के नाम से जानते हैं। इनको शिक्षा देने के लिए समय के अनुसार तीन प्रकार की अवधारणा विकसित हुई है, विशेष शिक्षा, एकीकृत शिक्षा एवं समावेशी शिक्षा।

4.4.1. विशेष शिक्षा (Special Education):

विशेष शिक्षा एक संकुचित शब्दावली है। इस शिक्षा के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है। इसका विद्यालय, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ अलग होती हैं। जैसे यदि कोई बच्चा दृष्टि बाधित है, तो उनके अलग समूह बनाकर उनकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दी जाती है। उसी प्रकार यदि कोई बालक श्रवण बाधित है या मानसिक मंद है, उन्हें भी अलग शिक्षा दी जाती है। विशेष शिक्षा गंभीर अक्षम/विकलांग बालकों के लिए उपयुक्त शिक्षा पद्धति मानी जाती है। क्योंकि जो बालक गंभीर या अति गंभीर रूप से अक्षम/विकलांग होते हैं, वे अपने आपको सामान्य बालकों के साथ समायोजित नहीं कर पाते हैं।

4.4.2. एकीकृत शिक्षा (Integrated Education):

विशेष शिक्षा में यह देखा जाने लगा कि कोई बालक अगर सामान्य बालकों से अलग शिक्षा प्राप्त करता है, तो उसका पूर्णतः समायोजन नहीं हो पाता है। वे कई क्षेत्रों में सामान्य बालकों से पिछड़ जाते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, एकीकृत शिक्षा की अवधारणा का विकास हुआ। भारत में भी इसके महत्व को ध्यान में रखते हुए सन् 1974 से कल्याण मंत्रालय द्वारा एकीकृत शिक्षा का प्रारम्भ किया गया। इसे एकीकृत शिक्षा योजना (ICDS) के रूप में लागू किया गया। एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पहले विशेष उपकरणों के माध्यम से आधारभूत प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान की जाती है, ताकि अक्षम बालक अपने आपको सामान्य बालकों के साथ समायोजित कर सकें। एकीकृत शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले बालकों को सामान्य बालकों के साथ एकीकृत करना है। साथ ही एकीकृत शिक्षा में बालकों को कक्षा या शिक्षक के अनुसार अपने आपको समायोजित करना होता है। इसके अतिरिक्त विशेष आवश्यकताओं को विशेष कक्षा (Special Class) संसाधन कक्ष (Resource Room) तथा विशेष शिक्षकों (Special Teachers) के माध्यम से पूर्ण किया जाता है।

एकीकृत शिक्षा में निम्नलिखित तथ्य शामिल हैं:-

(i) सामान्य विद्यालय में विशेष आवश्यकता वाले विकलांग बालकों को शैक्षिक सुविधाएँ एवं शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना ही एकीकृत शिक्षा है।

(ii) इस शिक्षा में बालकों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाता है।

(iii) एकीकृत शिक्षा में विकलांग बालकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को आवश्यकता नुसार विद्यालय के कार्यक्रम व पाठ्यक्रम के लिए समायोजित करें।

(iv) इसे (Mainstreaming) कहा गया है, क्योंकि इसका मुख्य लक्ष्य विकलांग बालकों को सामान्य विद्यालय में भर्ती कराना है।

4.5 एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) तथा समावेशी शिक्षा (Inclusive Education) में अन्तर:

एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) समावेशी शिक्षा (Inclusive Education)

1. एकीकृत शिक्षा व्यक्तिगत प्रारूप (personal model) समावेशी शिक्षा पर आधारित है। समावेशी शिक्षा सामाजिक प्रारूप (social model) समावेशी शिक्षा पर आधारित है।
2. एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को विद्यालय के आवश्यकतानुसार अपेक्षित सुधार कर सामंजस्य स्थापित करे। समावेशी शिक्षा में विद्यालय का उत्तरदायित्व है कि वह विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकता के अनुरूप पाठ्यक्रम में अनुकूलन करे।
3. एकीकृत शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले बालकों को सामान्य विद्यालय में प्रवेश कराना है। समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बालकों को विद्यालय की प्रत्येक क्रिया में भागीदारी सुनिश्चित की जाती है।
4. एकीकृत शिक्षा न्यूनतम अवधि का उद्देश्य है। समावेशी शिक्षा एक लम्बी अवधि की प्रक्रिया एवं उद्देश्य है।
5. एकीकृत शिक्षा विकलांग या विशेष आवश्यकता वाले बालकों के लिए समान अवसर एवं समान सहभागिता को सुनिश्चित करता है। समावेशी शिक्षा एकीकृत शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त पर आधारित है, इसी कारण इसे एकीकृत शिक्षा का परिवर्धित अथवा परिमार्जित रूप भी कहा गया है।

4.6 विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा (Education of Children with Special Needs):

समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षकों के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य उन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करना एवं उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा प्रदान करना है। समावेशी शिक्षा में जब तक विशेष आवश्यकता वाले बालकों की आवश्यकता को

नहीं समझेंगे, उन्हें हम उचित शिक्षा प्रदान नहीं कर सकते। कक्षा में विभिन्न प्रकार के विशेष आवश्यकता वाले बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं। उनमें से प्रमुख विशेष आवश्यकता वाले बालकों की चर्चा हम नीचे कर रहे हैं:-

4.6.1 मंद बुद्धि बालक (Children with Mental Retardation)- मंद बुद्धि बालक से तात्पर्य वैसे बालक से है जिनकी मानसिक योग्यता सामान्य बालकों से कम होती है, अर्थात् वैसे बालक जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 70 से कम होती है, मंद बुद्धि बालक कहलाते हैं। मानसिक कमी पर अमें रिकन एशोसिएशन के अनुसार 'मानसिक पिछड़ेपन से तात्पर्य सार्थक रूप से औसत से कम सामान्य बौद्धिक कार्यपरकता से है जो अनुकूलन व्यवहार में कमी के सहगामी के रूप में विद्यमान होती है तथा विकासात्मक अवस्था में परिलक्षित होती है।' Mental retardation refers to significantly sub-average general intellectual functioning existing concurrently with deficits in adoptive behaviour and manifested during the developmental period".

मंद बुद्धि बालकों की पहचान एवं विशेषतायें (Identification and Features of Children with Mental Retardation)

मंद बुद्धि बालकों की पहचान उनकी विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है। जो निम्न है:-

1. ऐसे बालक सीखी गई बात को नवीन परिस्थितियों में प्रस्तुत करने में प्रायः कठिनाई का अनुभव करते हैं।
2. ऐसे बालकों अति क्रियाशील या चंचल होते हैं।
3. ऐसे बालकों के मुहँ से हमें शा लार टपकता रहता है।
4. ऐसे बालकों में सीखने की क्रिया धीमी होती है।
5. ऐसे बालकों में दो अंगों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई होती है। जैसे- लिखने में, पढ़ने में, चलने में इत्यादि में।
6. ऐसे बालकों को कभी-कभी दौरे भी पड़ते हैं।

मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा (Education of Children with Mental Retardation):

मंद बुद्धि बालकों को शैक्षिक दृष्टि से मुख्यतः तीन भागों में बाँटते हैं:-

(i) शिक्षणीय मानसिक मंद (Educable Mental Retardation)- शिक्षणीय मानसिक मंद वे मानसिक मंद बालक कहलाते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 75 से 50 के बीच होती है। ऐसे बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा किसी बात को धीमी गति से समझते व सीखते हैं। पर्याप्त अभ्यास के पश्चात ऐसे बालक में सामान्य रूप से पढ़ने-लिखने और साधारण व्यवहार में आनेवाली गणितीय संक्रियाओं को दैनिक जीवन के उपयोग में लाने में से सफल हो सकते हैं। ऐसे बालक सामान्यतः प्राथमिक स्तर (वर्ग-7) तक की पढ़ाई पूरी कर सकते हैं।

(ii) प्रशिक्षणीय मानसिक मंद (Trainable Mental Retardation)- प्रशिक्षणीय मानसिक मंद बालक वे बालक होते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 50 से 25 के बीच होती है। ऐसे बालकों में शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता बहुत कम होती है। इन्हें बहुत अधिक प्रयास के बाद भी केवल कक्षा 4 से 5 तक शिक्षा दी जा सकती है। परन्तु इन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण और अभ्यास के पश्चात व्यवसायिक एवं दैनिक क्रिया-कलाप सिखाया जा सकता है। जैसे- अपनी आजीविका के न्यूनतम स्तर पर चलाने के लिए बुनाई करना, लिफाफे बनाना, मोमबती बनाना, कुर्सी बुनना इत्यादि कार्य सिखाये जा सकते हैं।

(iii) अभिरक्षणीय मानसिक मंद (Custodial Mental Retardation)- इसके अन्तर्गत जैसे बालक आते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 50 से 25 के बीच होती है। ऐसे बालक सामान्यतया पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। ये अपने दैनिक जीवन के क्रियाकलापों को भी स्वयं नहीं कर पाते हैं। ये प्रायः दूसरों के देखभाल पर निर्भर होते हैं।

4.6.2 दृष्टिबाधित बालक (Children with Visual Impairment)-

दृष्टिबाधित बालक वे बालक होते हैं जिन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता हो या बहुत कम दिखाई देता हो। एक चिकित्सीय परिभाषा के अनुसार दृष्टि बाधित को दो प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। प्रथम दृष्टि क्षमता (First Visual Acuity) के आधार पर-एक सामान्य मनुष्य की दृष्टि क्षमता 20/20 या 6/6 होती है। जैसे बालक जिनकी दृष्टि क्षमता (Visual Acuity) 20/200 या 6/60 या इससे कम हो, उसे हम दृष्टिबाधित कहते हैं। द्वितीय, दृष्टि क्षेत्र (Field of Vision) के आधार पर एक सामान्य मनुष्य अपने आँखों से 1800 के क्षेत्र को देखता है। परन्तु अगर कोई बालक 200 या इससे कम के क्षेत्र को देख सकता है, वे बालक दृष्टिबाधित कहलाते हैं।

दृष्टिबाधित बालकों की पहचान एवं विशेषताएँ (Identification of Children with Visual Impairment):

दृष्टिबाधित बालकों की पहचान हम उनकी विशेषताओं या लक्षणों के आधार पर कर सकते हैं। जो निम्न हैं:-

- (i) ऐसे बालक हमें शा अपने आँखों को मलते रहते हैं।
- (ii) ऐसे बालक की आँखे मिलमिलाते रहते हैं।
- (iii) आँखों में दर्द कि शिकायत करते हैं।
- (iv) श्यामपट के पास जाकर पढ़ते एवं लिखते हैं।
- (v) आँखों में पानी आने की शिकायत करते हैं।
- (vi) श्यामपट पर लिखी गई बातों को अपने सहपाठी से पूछते हैं।
- (vii) अक्सर सिर दर्द की शिकायत करते हैं। इत्यादि

दृष्टिबाधित बालकों की शिक्षा (Education of Children with Visual Impairment)-

एक सामान्य बालक सीखने में सबसे ज्यादा प्रयोग दृष्टि का करता है। इसके माध्यम से लगभग 80% अधिगम होती है। आँख मनुष्य की सभी ज्ञानइन्द्रियों में प्रमुख है। इसके न होने से मनुष्य का अधिगम सबसे अधिक प्रभावित होता है। दृष्टिबाधित बालक सामान्य बालकों की तरह न तो लिख सकता है, न पढ़ सकता है, न चल सकता है और न ही कोई क्रियाकलाप कर सकता है। जिसके कारण इन्हें सामान्य कक्षाओं में सामान्य बालकों के साथ शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

दृष्टिबाधितों को उचित शिक्षा देने के लिए निम्न क्षेत्रों/उपकरणों में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(i) **ब्रेल (Braille)** ब्रेल एक प्रकार की लिपि है, जो विशेष कर दृष्टिबाधितों के लिए है। इसी लिपि के माध्यम से दृष्टिबाधित बालक पढ़ एवं लिख सकते हैं। इस लिपि की खोज फ्रांस के लुई ब्रेल ने की थी। यह लिपि मुख्यतः छः उभार बिन्दुओं (dots) के माध्यम से लिखी एवं पढ़ी जाती है। इसमें हर अक्षर के लिए अलग-अलग उभार बिन्दु होते हैं। जैसे- 'अ' के लिए केवल 1 नं० की बिन्दु (dot) 'क' (1,3) इत्यादी।

ब्रेल लिपि को दाँए से बाए की ओर लिखी जाती है एवं बाँए से दाँए की ओर पढ़ी जाती है। इसे लिखने के लिए ब्रेल स्लेट एवं स्टाइलस का प्रयोग किया जाता है।

(ii) **अबेकस एवं टेलर फ्रेम (Abacus and Taylor Frame)**- इन उपकरणों के माध्यम से दृष्टिबाधित बालकों को गणितीय ज्ञान दिया जाता है। अबेकस एक प्रकार का मोतियाँ लगी हुई उपकरण होते हैं। जिससे दृष्टिबाधित बालकों को गिनती करना, साधारण जोड़-घटाव, गुणा एवं भाग

सिखाया जाता है। टेलर फ्रेम भी एक प्रकार का गणितीय उपकरण है जो कि अष्टभुज आकार की संरचनाओं का बना होता है। इन अष्टभुज आकार की संरचनाओं में टाइप को डाला जाता है। इन टाइप की दिशा परिवर्तन होने पर अंको का मान बदलता रहता है। टेलर फ्रेम से दृष्टिबाधितों को जोड़, घटाव, गुणा, भाग एवं बीज गणित के प्रश्नों को हल करना सिखाया जाता है।

(iii) अनुस्थितिज्ञान एवं चालिष्णुता (Orientation and Mobility)- दृष्टिबाधित बालकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके लिए दृष्टिबाधितों को अनुस्थितिज्ञान एवं चालिष्णुता (Orientation and Mobility) का प्रशिक्षण दिया जाता है। अनुस्थिति ज्ञान का अर्थ होता है, वातावरण में अपने स्थिति का पता लगाना। जब हम कहीं भी जाते हैं, तो चलने वाले को यह पता होना आवश्यक होता है कि हम कहाँ पर स्थित हैं और कहाँ जाना है, इसका पता दृष्टिबाधित बालक अपने अन्य ज्ञानइन्द्रियों को प्रयोग कर लगाता है, जैसे- फूलों के महक से, नाली के गंध से, मंदिर एवं स्कूल की घंटी से, चौराहे पर वाहनों के आवागमन एवं रेड लाईट इत्यादि से, दृष्टिबाधित अपने अनुस्थिति ज्ञान का पता लगाता है।

चालिष्णुता का अर्थ होता है- चलना एक दृष्टिबाधित बालक को चलने के लिए कई नियमों का पालन करना होता है। जैसे- छड़ी का प्रयोग कैसे करना चाहिए, अपने साथियों के साथ कैसे चलना चाहिए, सीढ़ियों पर कैसे चढ़ना चाहिए इत्यादि गतिविधियों का प्रशिक्षण चालिष्णुता के अन्तर्गत दी जाती है ताकि दृष्टिबाधित बालक अपने आपको अपने वातावरण के साथ समायोजित कर सकें।

दृष्टिबाधित बालकों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए 'राष्ट्रीय दृष्टिहीन विकलांग संस्थान'(National Institute of Visual Handicapped, Dehradun) द्वारा उपयोगी उपकरणों का निर्माण एवं अनुसंधान कार्य किया जाता है, ताकि दृष्टिबाधितों की समस्याओं का कम किया जा सकें।

4.6.3 श्रवणबाधित बालक (Children with Hearing Impairment)- श्रवणबाधित बालक वे बालक होते हैं, जो कम सुनते हैं या बिल्कुल भी नहीं सुनते हैं। एक परिभाषा के अनुसार वैसे बालक जो 25db से अधिक तीव्रता की ध्वनि सुनते हैं , उन्हें श्रवण बाधित बालक कहा जाता है।

श्रवणबाधित बालकों की पहचान एवं विशेषताएं (Identification and Features of Children with Hearing Impairment):

कक्षा कक्ष में एक शिक्षक श्रवण वाधित बालकों की पहचान उनकी विशेषताओं के आधार पर करता जो निम्न है:-

(i) ऐसे बालक कान के पीछे हाथ लगाकर सुनने का प्रयास करते हैं।

- (ii) ये बालक जोर से बोलते हैं।
- (iii) श्रवण बाधित बालक बोलने वाले (वाचक) के चेहरे और होठों पर ज्यादा ध्यान देते हैं।
- (iv) ऐसे बालक बोली गई बातों को दुबारा या नहीं सुनने की शिकायत करते हैं।
- (v) इनके चेहरे के हाव-भाव व मुख मुद्रा द्वारा भी आवाज दोष पहचाना जा सकता है।
- (vi) ऐसे बालकों में कान बहने की शिकायत होती है।

श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा (Education of Children with Hearing Impairment):

प्रायः यह देखा गया है कि जो बच्चे सुन नहीं पाते हैं, वो बोल भी नहीं पाते हैं अर्थात् गूँगे एवं बहरे दोनो होते हैं, परन्तु यह हर स्थिति में संभव नहीं होता है। वे बालक ही गूँगे एवं बहरे (Dumb and Deaf) होते हैं, जो जन्म या भाषायी विकास की अवस्था के बाद पूर्व श्रवण बाधित है। और जो बालक भाषायी विकास के बाद श्रवण बाधित होते हैं, वे बोल सकते हैं।

श्रवण बाधितों के लिए मुख्य समस्या सम्प्रेषण (Communication) की होती है न सुनने तथा न बोल पाने के कारण ये बालक किसी दूसरे सामान्य बालकों के साथ अपने आपको सम्प्रेषित (Communicate) नहीं कर पाते हैं। ऐसे बालकों की शिक्षा के लिए हम निम्न उपाय कर सकते हैं।

- (i) अल्प श्रवणबाधितों को सामान्य कक्षा में पहले बेंच पर बैठा कर शिक्षा दे सकते हैं।
- (ii) अल्प एवं मध्यम श्रवण बाधितों को श्रवण यंत्र (Hearing Machine) की सहायता से शिक्षा दिया जा सकता है।
- (iii) गंभीर एवं अति गंभीर श्रवण बाधितों को सांकेतिक भाषा (Sign Language), तथा होठों (Lip Reading) के द्वारा शिक्षा दी जाती है।

सांकेतिक भाषा (Sign Language)- इसमें संकेतो के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सम्प्रेषण स्थापित करता है। सांकेतिक भाषा का विकास 18वीं शताब्दी में हुआ। इसे अम्बे चार्ल्स माइकेल के द्वारा अपनाया गया था। सांकेतिक भाषा का प्रयोग विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के पद्धति द्वारा की जाती है। जैसे- अमेरिका में A.S.L (American Sign Language), ब्रिटेन में B.S.L.(British Sign Language), उसी प्रकार भारत में I.S.L (Indian Sign language) का प्रयोग किया जाता है।

होठ पठन (Lip Reading) भी एक प्रकार का संप्रेषण का माध्यम हैं जिसकी सहायता से सामने वाले व्यक्ति की बातों को समझा जा सकता है।

श्रवण वाधितों के शिक्षा के लिए अली आवर जंग राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान (Ali Yavar Jung National Institute of Hearing Impairment), मुम्बई द्वारा ऐसे बालकों के नए-नए सांकेतिक भाषाओं एवं क्रिया कलाओं का विकास करती है। ताकि श्रवण वाधित बालकों को समाज में समायोजित किया जा सके।

4.7 समावेशी शिक्षा हेतु प्रशासनिक उपायः

सभी प्रकार के बच्चों हेतु समावेशी शिक्षा के लिए उचित सकारात्मक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है। प्रायः यह देखा गया है कि विकलांगता के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियाँ उनके विद्यालय प्रवेश में प्रमुख बाधाएँ हैं, परिणामस्वरूप प्रधानाचार्य इन विद्यार्थियों को विद्यालय में प्रवेश देने से मना कर देते हैं। उनकी यह सोच होती है कि विकलांग बच्चे उनके विद्यालय की शैक्षिक गतिविधियों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेंगे। सामान्य बच्चों की शिक्षा भी प्रभावित होगी एवं साथ ही अध्यापकों की जिम्मेदारी भी अनावश्यक रूप से बढ़ जाएगी। दूसरे शब्दों में सामान्य विद्यालय विकलांग बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी नहीं ले सकते अक्सर देखने में आता है कि वे विकलांग विद्यार्थियों की क्षमताओं से अपरिचित रहने के कारण उनकी विकलांगता को अधिक आँकते हैं। यदि वे विकलांग बच्चों की क्षमताओं से परिचित हों तो बिना किसी समस्या के इन बच्चों की विशेष आवश्यकता के आधार पर अपने विद्यालय में परिवर्तन लाते हुए शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराकर अपने विद्यालय को आदर्श विद्यालय के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। समावेशी विद्यालय में बच्चों में परस्पर सहयोग एवं सहभागिता की भावनाओं का विकास होता है। अपने विकलांग सहपाठी का सहयोग करते हुए, ऊँच-नीच भूलकर समान अवसरों का लाभ उठाते हुए उनकी क्षमताओं से परिचित होते हैं। विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं एवं विशेष उपकरणों से परिचित हो जाते हैं। प्रशासन का सहयोग इस अधिगम को और अधिक सुचारू एवं क्रमबद्ध बना सकता है। इस संदर्भ में समावेशी शिक्षा के सफल नियोजन के लिए निम्न उपाय आवश्यक हैं:-

1. प्रशासनिक अधिकारियों हेतु परिचयात्मक (Introductory) कार्यक्रम:-

विकलांग के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियों का प्रमुख कारण विकलांग व्यक्तियों की क्षमताओं से अनभिज्ञ रहना है, अतः आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारियों को उनकी क्षमताओं के साथ-साथ उनकी विशेष आवश्यकताओं से भी परिचित कराया जाय। विकलांगता व्यक्ति के सोचने की शक्ति को इतना प्रभावित नहीं करती कि वह शिक्षा प्राप्त करने योग्य ही न रहे। शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया में विशेष आवश्यकता के अनुरूप अनुकूलन कर उन्हें सामान्य विद्यार्थियों की भांति

ही शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। हेलेन केलर, सूरदास, मिल्टन जैसे अनेकों उदाहरण अतीत में देखे जा सकते हैं। विकलांग व्यक्ति को दया की नहीं समानता की आवश्यकता होती है। उनकी शिक्षा से सम्बन्धित सभी मुद्दों (Issues) से उन्हें परिचित कराना चाहिए। समावेशी शिक्षा योजना (Inclusive Education Scheme) आदि की जानकारी भी उन्हें उपलब्ध करानी चाहिए, ताकि वे विकलांग बच्चे के उचित शिक्षार्थ उचित वातावरण व सामग्री उपलब्ध कराते हुए उन्हें समान अवसर प्रदान करा सकें।

2. दृश्य-श्रव्य (Audio Visual) सामग्री द्वारा विद्यालय के कर्मचारियों व विद्यार्थियों हेतु संवेदीकरण (Sensitization) कार्यक्रम का आयोजन:-

जिस विद्यालय में विकलांग विद्यार्थियों हेतु समावेशी शिक्षा लागू की जा रही हो, सर्वप्रथम वहाँ उचित वातावरण हेतु सभी शिक्षक, गैर शिक्षाकर्मियों व सामान्य विद्यार्थियों की तैयारी अति आवश्यक है। प्रायः उनकी अभिवृत्तियाँ नकारात्मक होती हैं, अतः आवश्यकता है कि इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए जायें। दृश्य-श्रव्य सामग्री विकलांग व्यक्ति की क्षमताओं से परिचित कराने का सशक्त माध्यम है। विभिन्न राष्ट्रीय विकलांग संस्थान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, मुख्य आयुक्त (निःशक्त जन), भारत सरकार तथा गैर सरकारी संस्थानों द्वारा दृश्य-श्रव्य सामग्री विकसित की गई है। उनको विद्यालय में उपलब्ध कराकर विभिन्न स्तर के कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने में उसका उपयोग करना चाहिए।

3. विकलांग बालकों की खोज हेतु संवेदीकरण शिविर का उपयोग:-

विकलांग बालकों की खोज एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्रायः माता-पिता बच्चों की विकलांगता को स्वीकार न कर तो विभिन्न चिकित्सकों के चक्कर में पड़े रहते हैं अथवा स्वयं ही विकलांगता को समस्या मानकर हीन भावना से ग्रसित रहते हैं। अपने पूर्व जन्मों की सजा मानकर विकलांगता को किसी से बताते हुए भी घबराते हैं, विद्यालय भेजना तो बहुत ही दूर की बात है। अतः समाज को झकझोरने के लिए संवेदीकरण शिविर का आयोजन आवश्यक है ताकि विकलांग बच्चों की खोज हो सके, जिससे कोई भी विकलांग बच्चा शिक्षा के अपने मौलिक अधिकार से वंचित न रह सके।

4. संसाधन कक्ष व संसाधन सामग्री विद्यालय के लिए उपलब्ध कराना-

प्रशासनिक उपायों में आवश्यक हैं कि विद्यालय में संसाधन कक्ष उपलब्ध कराया जाय। यह विद्यालय का कोई भी कक्ष या कमरा हो सकता है। आवश्यक है कि विकलांग विद्यार्थियों के लिए यह सुविधाजनक स्थिति में हो, केन्द्र में स्थित हो तो उत्तम होगा। ऐसे कक्ष के उपलब्ध न होने की स्थिति में कक्ष का निर्माण कराना आवश्यक हो जाता है। भवन का प्रत्येक कक्ष विकलांग विद्यार्थियों की पहुँच में होना चाहिए, जिसमें तिपहिया साइकिल (Tricycle) वाले विद्यार्थी एवं दृष्टिहीन विद्यार्थी बिना किसी समस्या के स्वतंत्र रूप से आ - जा सकें। विकलांग विद्यार्थी की विशेष

आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधन कक्ष में संसाधन सामग्री, भी उपलब्ध कराना प्रशासन का उत्तरदायित्व है। दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए ब्रेल सामग्री, स्पर्शीय सामग्री व पुस्तकें संसाधन कक्ष में होनी चाहिए, वही श्रवण विकलांग विद्यार्थियों हेतु दृश्य सामग्री, श्रवण सहायक यंत्र (Hearing Aids), इत्यादि उपलब्ध कराई जानी आवश्यक है।

5. विकलांग बच्चों हेतु आकलन दल (Assessment Team) का नियोजन-

प्रत्येक विकलांग बच्चा स्वयं में एक इकाई है, उसकी शिक्षा के लिए आवश्यक है कि आकलन दल उसका आकलन (Assessment) कर उसके विद्यालय प्रवेश के लिए निर्देश दे। विद्यालय प्रवेश नियम विकलांग बच्चों के लिए लचीले होने चाहिए। प्रवेश के समय लिया गया गलत निर्णय उसके भावी जीवन के लिए घातक हो सकता है।

7. विकलांग विद्यार्थियों हेतु सह-चिकित्सकीय अधिकारियों (Medical Officers) को सेवाओं को उपलब्ध कराना-

विकलांग विद्यार्थियों की प्रायः अनेक आवश्यकतायें होती हैं, जिनकी पूर्ति के लिए सह-चिकित्सकीय सेवाओं को उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। यही नहीं सामान्य विद्यार्थियों में प्रायः छिपी हुई विकलांगतायें होती हैं, जैसे अधिगम विकलांगता अथवा श्रवण विकलांगता सह-चिकित्सकीय अधिकारियों द्वारा ऐसे बच्चों की खोज कर अविलम्ब चिकित्सीय लाभ पहुंचाकर उनके विकास में सकारात्मक भूमिका निभाई जा सकती है।

4.8 माता-पिता एवं अभिभावकों की भूमिका:

एकीकृत एवं समावेशी शिक्षा में माता-पिता एवं अभिभावकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण होती है। घर को बच्चे के लिए प्रथम पाठशाला कही गयी है। शोध द्वारा पता चला है कि प्रारम्भ के 6 वर्ष इतने महत्वपूर्ण हैं कि 90 से 95 प्रतिशत तक बौद्धिक विकास इस अवस्था में हो जाता है। विकलांग बच्चों के संदर्भ में तो माता-पिता व अभिभावकों की अहम भूमिका होती है। विकलांग बालकों को न तो तिरस्कृत करना चाहिए और न ही अति संरक्षण देना चाहिए।

विकलांग बालक तो इससे अनभिज्ञ होता है कि वह अन्य से भिन्न है। इस बात का ध्यान तो उसके परिवार के सदस्य माता-पिता, अभिभावक, भाई-बहिन, पड़ोसी दिलाते हैं कि उसका जीवन अति कठिन है, क्योंकि वह देख नहीं सकता/सकती उनकी चिन्ता दृष्टिहीन/श्रवणवाधित एवं अन्य बालकों को सोचने पर विवश करती हैं कि वह अन्य व्यक्तियों, माता-पिता व भाई-बहनों से भिन्न है, जो कि उन सभी के लिए चिन्ता का विषय है। उसका कोमल मन व बुद्धि कुछ भी समझ पाने में असमर्थ होती है। माता-पिता विभिन्न चिकित्सकों के चक्कर इस आशा से लगाते रहते हैं कि उनका बच्चा विकलांग नहीं हो सकता ईश्वर उनके साथ इतना बड़ा अन्याय नहीं कर सकता, बच्चे

कि दृष्टि/श्रवण बाधित शक्ति वापिस आ जाएगी। इस प्रकार दर-दर की ठोकें खाते हुए उसके माता-पिता उसके जीवन के प्रारम्भिक वर्षों को व्यर्थ में ही गंवा देते हैं, परिणामस्वरूप दृष्टिहीन/श्रवण बाधित बालक के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष कुछ सीखने की अपेक्षा इसी संघर्ष में गुजर जाते हैं। यदि माता-पिता शिक्षित हैं व उन्हें समयानुसार विशेष शिक्षा व विशिष्ट विद्यालय की जानकारी मिल जाती है तो बच्चे की शिक्षा उचित समय पर प्रारम्भ हो जाती है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में विशेष शिक्षा की सुविधा में बहुत अन्तर है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावकों को विकलांग बालकों को शिक्षा प्राप्ति के लिए शहरी क्षेत्र में भेजना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि ज्यादातर विशिष्ट विद्यालय शहरी क्षेत्रों में ही स्थित होते हैं। आवासीय विशिष्ट विद्यालय भेजने से पहले यदि गाँव में समें कित बाल विकास योजना (ICDS) के अन्तर्गत बालवाड़ी लगाई जाती हो तो विकलांग बालकों को वहाँ भेजना चाहिए। घर में उसे दैनिक क्रिया-कौशल में प्रशिक्षित करना चाहिए। निकट के आवासीय विशिष्ट विद्यालय से समय-समय पर इस संदर्भ में परामर्श दिया जा सकता है।

बच्चों में अच्छी आदतों का विकास बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। विकलांग बालकों को अन्य सामान्य बच्चों के समान ही इन आदतों से परिचित कराकर उनका पालन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए ताकि उनमें अच्छी आदतों का विकास हो सके। विशिष्ट विद्यालय चूँकि प्रायः आवासीय होते हैं, अतः विकलांग बालकों को प्रवेश से पूर्व दैनिक क्रिया-कौशल में निपुण होना आवश्यक होता है।

4.9 सक्षम/सकलांग सहपाठियों की भूमिका:

विद्यालय में सक्षम/सकलांग सहपाठियों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे केवल कक्षा व विद्यालय में स्वस्थ प्रोत्साहन प्रदान करने वाले वातावरण का निर्माण करते हैं, बल्कि समकक्ष होने के कारण उनके स्वप्रत्यय विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। विद्यालय का वातावरण सौहार्दपूर्ण होने दृष्टिहीन बच्चे का प्रत्येक अनुभव सुखद हो जाता है। आज के समय में शोध द्वारा सिद्ध हो गया है कि बच्चे प्रौढ़ अध्यापक की तुलना में अपने समकक्ष विद्यार्थियों से ज्यादा सफलता से सीखते हैं। विशेष रूप से कमजोर अथवा पिछड़े बालकों पर अध्यापक व्यक्तिगत रूप से अधिक ध्यान दे सकते हैं, यदि सामान्य स्तर की समस्या उनके सहपाठियों की सहायता से हल हो सके।

4.10 नियमित अध्यापकों की भूमिका एवं उत्तरदायित्व:

एकीकृत व समावेशी शिक्षा में नियमित अध्यापकों की सक्रिय भूमिका होती है। उन्हें विशेष विद्यार्थी के संदर्भ में विशेष अध्यापक के सम्पर्क में रहना होता है, ताकि विद्यार्थी पढ़ाए जाने वाले

विषय को आत्मसात कर सके न कि उसमें आने वाली समस्याओं से अकेला जूझता रहे। दृष्टिहीन विद्यार्थी को कक्षा में अन्य सामान्य विद्यार्थियों की भांति समान रूप से सम्मिलित होना चाहिए। सर्वप्रथम कक्षा का वातावरण सौहार्दपूर्ण हो, जहाँ किसी भी विद्यार्थी के साथ विकलांगता के कारण भेद न किया जाए। जहाँ तक सम्भव हो सके नियमित अध्यापक द्वारा कक्षा में चलने वाली प्रत्येक क्रिया में विकलांग विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। उसके बैठने का स्थान इस प्रकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसे आने-जाने की असुविधा न हो व बाहर का शोर भी उसे प्रभावित न करता हो। नियमित अध्यापक को कक्षा में पढ़ने वाले विकलांग विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं से परिचित होना चाहिए। उसके प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की भी जानकारी उसे होनी चाहिए। उसकी उपलब्धि का आकलन कैसा होगा? उसकी मूलभूत समस्याएँ अथवा कठिनाइयाँ क्या हो सकती हैं? ये अनेक प्रश्न नियमित अध्यापक को परेशान कर सकते हैं। उसे विशेष अध्यापक से इन पर चर्चा कर लेनी चाहिए अथवा इन बच्चों से सम्बन्धित साहित्य अथवा सामग्री विशेष-अध्यापक से प्राप्त कर पढ़ लेनी चाहिए, जिससे उसके पूर्वाग्रह समाप्त हो जाए।

नियमित अध्यापक को विकलांग विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की जानकारी के साथ-साथ इन बच्चों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली द्वि-आयामी और त्रि-आयामी स्पर्शीय सामग्री व स्पर्शीय मॉडल आवश्यकतानुसार कक्षा में उपलब्ध कराने चाहिए, जिनके माध्यम से विकलांग के साथ-साथ दृष्टिवान विद्यार्थी भी लाभान्वित हो सकेंगे।

विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेते समय विकलांग विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए नियमित अध्यापक को विशिष्ट अध्यापक से परामर्श लेना चाहिए, ताकि विकलांग विद्यार्थी अर्थपूर्ण क्रिया कर अपने अधिगम को स्थायी बना सके व साथ-साथ सामूहिक क्रिया में अपनी बराबर की भागीदारी सुनिश्चित कर सके। ये अनुभव उसमें आत्मविश्वास की वृद्धि करेंगे व परिणामस्वरूप उसमें स्वस्थ स्वप्रत्यय का विकास भी होगा।

इस प्रकार इक्कीसवीं शताब्दी समावेशित शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध कराकर दृष्टिवान व दृष्टिहीन की दूरी पाटने की दिशा में कृतसंकल्प है। विश्व भर में समावेशी शिक्षा के लिए प्रयास जारी हैं। आदर्श समाज में सभी की भागीदारी होनी आवश्यक है। विकलांगता के आधार पर विभेद करना मानव अधिकारों का हनन है, अतः आवश्यकता है कि विद्यालय की समावेशी शिक्षा के आधार पर समावेशित समाज का निर्माण किया जाए, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने मानव अधिकारों का लाभ उठाकर समाज, देश व विश्व निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. वैसे बालक जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 70 से कम होती है, बालक कहलाते हैं।

2. जैसे बालक जिनकी दृष्टि क्षमता (Visual Acuity) 20/200 या 6/60 या इससे कम हो, उसे हम कहते हैं।
3.वे मानसिक मंद बालक कहलाते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 75 से 50 के बीच होती है।
4.शिक्षा से तात्पर्य समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थियों के कमजोरियों, उसके मजबूत पक्षों एवं उसकी क्षमताओं को एक ही कक्षा में विकास करना।
5.एक प्रकार की लिपि है, जो विशेष कर दृष्टिबाधितों के लिए है। इसी लिपि के माध्यम से दृष्टिबाधित बालक पढ़ एवं लिख सकते हैं।
6. के माध्यम से दृष्टिबाधित बालकों को गणितीय ज्ञान दिया जाता है।
7. अर्थ होता है, वातावरण में अपने स्थिति का पता लगाना।
8.बालक जो 25db से अधिक तीव्रता की ध्वनि सुनते हैं, उन्हें श्रवण बाधित बालक कहा जाता है।
9.शिक्षा के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है। इसका विद्यालय, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ अलग होती हैं।

4.11 शब्दावली:

समावेशी शिक्षा : समावेशी शिक्षा से तात्पर्य समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थियों के कमजोरियों, उसके मजबूत पक्षों एवं उसकी क्षमताओं को एक ही कक्षा में विकास करना।

विशेष शिक्षा: इस शिक्षा के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है। इसका विद्यालय, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ अलग होती हैं।

एकीकृत शिक्षा: इसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पहले विशेष उपकरणों के माध्यम से आधारभूत प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान की जाती है, ताकि अक्षम बालक अपने आपको सामान्य बालकों के साथ समायोजित कर सकें।

मंद बुद्धि बालक: मंद बुद्धि बालक से तात्पर्य जैसे बालक से हैं जिनकी मानसिक योग्यता सामान्य बालकों से कम होती है, अर्थात् जैसे बालक जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 70 से कम होती है, मंद बुद्धि बालक कहलाते हैं।

शिक्षणीय मानसिक मंद: शिक्षणीय मानसिक मंद वे मानसिक मंद बालक कहलाते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 75 से 50 के बीच होती है।

प्रशिक्षणीय मानसिक मंद: प्रशिक्षणीय मानसिक मंद बालक वे बालक होते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 50 से 25 के बीच होती है।

अभिरक्षणीय मानसिक मंद: इसके अन्तर्गत जैसे बालक आते हैं, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 50 से 25 के बीच होती है।

दृष्टिबाधित बालक: जैसे बालक जिनकी दृष्टि क्षमता (Visual Acuity) 20/200 या 6/60 या इससे कम हो, उसे हम दृष्टिबाधित कहते हैं।

ब्रेल: ब्रेल एक प्रकार की लिपि है, जो विशेष कर दृष्टिबाधितों के लिए है। इसी लिपि के माध्यम से दृष्टिबाधित बालक पढ़ एवं लिख सकते हैं।

अबेकस एवं टेलर फ्रेम: इन उपकरणों के माध्यम से दृष्टिबाधित बालकों को गणितीय ज्ञान दिया जाता है। अबेकस एक प्रकार का मोतियाँ लगी हुई उपकरण होते हैं।

अनुस्थितिज्ञान: इसका अर्थ होता है, वातावरण में अपने स्थिति का पता लगाना।

चलिष्णुता: इसका अर्थ होता है- चलना एक दृष्टिबाधित बालक को चलने के लिए कई नियमों का पालन करना होता है।

श्रवण बाधित बालक: जैसे बालक जो 25db से अधिक तीव्रता की ध्वनि सुनते हैं, उन्हें श्रवण बाधित बालक कहा जाता है।

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. मंद बुद्धि 2. दृष्टिबाधित 3. शिक्षणीय मानसिक मंद 4. समावेशी 5. ब्रेल 6. अबेकस एवं टेलर फ्रेम 7. अनुस्थितिज्ञान 8. श्रवण बाधित बालक 9. विशेष शिक्षा

4.13 सारांश:

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थियों की कमजोरियों, उसके मजबूत पक्षों एवं उसकी क्षमताओं को एक ही में विकास करना है। यह विस्तृत व्यूह रचना का एक भाग है। पाठ्यक्रम के द्वारा समाज का उत्थान किया जा सकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। इसमें किसी भी प्रकार के बालकों को रोका नहीं जाता है।

इस इकाई में विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा के संप्रत्यय पर विशेष प्रकाश डाला गया है। विशेष के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है, इनके विद्यालय पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ अलग-अलग होती है। एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पहले विशेष उपकरणों के माध्यम से आधारभूत प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान की जाती है, ताकि अक्षम बालक अपने आपको सामान्य बालकों के साथ समायोजित कर सकें।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा में मंद बुद्धि बालकों की पहचान एवं शिक्षा, दृष्टिबाधित बालकों की पहचान एवं शिक्षा तथा श्रवणवाधित बालकों की पहचान एवं शिक्षा की चर्चा हुई है।

समावेशी शिक्षा की सफलता के लिए आवश्यक हैं कि कुछ प्रशासनिक उपाय किए जाए। इसकी सफलता के लिए

1. प्रशासनिक अधिकारियों के लिए परिचयात्मक कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए।
2. दृष्य-श्रव्य सामग्री द्वारा विद्यालय के कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों हेतु संवेदीकरण कार्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए।
3. विकलांग बालकों की खोज के लिए संवेदीकरण शिविर का उपयोग किया जाना चाहिए।
4. संसाधन कक्ष एवं संसाधन सामग्री विद्यालय के लिए उपलब्ध कराना चाहिए।
5. विकलांग बच्चों हेतु आकलन दल का नियोजन एवं
6. विकलांग विद्यार्थियों हेतु सह-अभिभावकों, सहपाठियों एवं नियमित शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

4.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Das.M.(2007). *Education of Exceptional Children*. Atlantic Publishers, New Delhi.
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986). *मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार*. नई दिल्ली.

4.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. संजीव के.(2008). *विशिष्ट शिक्षा*. जानकी प्रकाशन, पटना.
2. भार्गव एम.(2009). *विशिष्ट बालक शिक्षा एवं पुनर्वास*. एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा.
3. Das.M.(2007). *Education of Exceptional Children*. Atlantic Publishers, New Delhi.

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. समावेशी शिक्षा को परिभाषित करें।

2. समावेशी शिक्षा, एकीकृत शिक्षा से किस प्रकार भिन्न है, चर्चा करें।
3. मानसिक मंद बालक की पहचान एवं उनकी शिक्षा की चर्चा करें।
4. समावेशी शिक्षा के प्रमुख प्रशासनिक उपायों पर प्रकाश डालें।
5. समावेशी शिक्षा में माता-पिता, सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका का वर्णन करें।
6. दृष्टि बाधित बालक की पहचान एवं उनकी शिक्षा पर प्रकाश डालें।

इकाई 5: समावेशित शिक्षा के लाभ, समावेशित शिक्षा में मुद्दे (Advantages of Inclusive Education, Issues in Inclusive Education)

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 समावेशित शिक्षा: एक विवरण
 - 5.3.1 समावेशित शिक्षा का प्रारम्भ
 - 5.3.2 समावेशित शिक्षा का अर्थ
- 5.4 एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा
 - 5.4.1 एकीकृत शिक्षा का अर्थ
 - 5.4.2 एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा में अन्तर
- 5.5 समावेशित शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व
 - 5.5.1 समावेशित शिक्षा क्यों?
 - 5.5.2 समावेशित शिक्षा का महत्त्व
- 5.6 समावेशित शिक्षा का दर्शन एवं सिद्धान्त
 - 5.6.1 समावेशित शिक्षा का दर्शन
 - 5.6.2 समावेशित शिक्षा का सिद्धान्त
- 5.7 समावेशित शिक्षा के लाभ
 - 5.7.1 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए लाभ
 - 5.7.2 सामान्य बच्चों के लिए लाभ
 - 5.7.3 सामान्य शिक्षक के लिए लाभ
 - 5.7.4 माता-पिता के लिए लाभ

-
- 5.8 समावेशित शिक्षा से सम्बंधित मुद्दे
- 5.8.1 समाज से संबंधित मुद्दे
- 5.8.2 वित्तीय संबंधित मुद्दे
- 5.8.3 शिक्षा नीति संबंधी मुद्दे
- 5.8.4 उपलब्धता एवं सुगमता संबंधी मुद्दे
- 5.8.5 अध्यापक शिक्षा से संबंधित मुद्दे
- 5.8.6 शोध से संबंधित मुद्दे
- 5.9 सारांश
- 5.10 शब्दावली
- 5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 5.14 निबंधात्मक प्रश्न
-

5.1 प्रस्तावना

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा का इतिहास विशेष विद्यालय से एकीकृत शिक्षा होते हुए अब समावेशित शिक्षा तक आ पहुँचा है।

समावेशित शिक्षा के बारे में आपने इससे पहले की इकाई में अध्ययन किया है। इस इकाई में हम समावेशित शिक्षा के प्रारम्भ, अर्थ, आवश्यकता एवं महत्त्व को संक्षेप में समझते हुए, इससे होने वाले लाभों एवं मुद्दों की विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- समावेशित शिक्षा का प्रारम्भ व अर्थ बता सकेंगे;
 - एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा में अन्तर कर पायेंगे;
 - समावेशित शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व जान सकेंगे;
 - समावेशित शिक्षा के दर्शन एवं सिद्धान्तों को समझ सकेंगे;
 - समावेशित शिक्षा के लाभ एवं मुद्दों की व्याख्या कर सकेंगे।
-

5.3 समवेशित शिक्षा: एक विवरण

समावेशित शिक्षा एक नया प्रत्यय है, इस प्रत्यय की शुरुवात इस

आधार पर हुआ कि शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मूल अधिकार है और प्रत्येक बच्चे की अलग विशेषताएँ, रुचि, योग्यता और आवश्यकता होती है जिसका हमें सम्मान करना चाहिए।

5.3.1 समावेशित शिक्षा का प्रारम्भ:

समावेशी शब्द का प्रचलन 1990 के दशक के मध्य से बढ़ा, जब जून, 1994 में सलमानका (स्पेन) में यूनेस्को द्वारा विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं पर विशेष विश्व सम्मेलन सुलभता और समता का आयोजन हुआ।

इस सम्मेलन में 92 देशों और 25 अंतराष्ट्रीय संगठनों ने हिस्सा लिया। सम्मेलन का समापन इस उद्घोषणा के साथ हुआ कि “प्रत्येक बच्चे की चरित्रगत विशिष्टताएँ, रुचियाँ, योग्यता एवं सीखने की आवश्यकताएँ अनोखी होती हैं, अतः शिक्षा प्रणाली में इन विशिष्टताओं और आवश्यकताओं की व्यापक विविधता का ध्यान रखना चाहिए।

इस सम्मेलन के बाद ही विभिन्न देशों ने बच्चों की आवश्यकताओं, रुचियों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन लाया, शिक्षा में यही परिवर्तन समावेशित शिक्षा के रूप में प्रचलित हुआ।

5.3.2 समावेशित शिक्षा का अर्थ:

सलमानका सम्मेलन के अनुसार समावेशित शिक्षा से तात्पर्य है:-

“..... बच्चों के उनके शारीरिक, बुद्धिमता, सामाजिक, भावनात्मकता, भाषायी या कोई अन्य परिस्थितियों पर ध्यान दिये बिना विद्यालय को सभी बच्चों को दाखिला देना चाहिए। यह सम्मिलित करता है विकलांग और प्रतिभावान बच्चे, गली के और कार्य करने वाले बच्चे, गाँव या बंजारे से बच्चे, भाषीय प्रजातीय या सांस्कृतिक अल्पसंख्यक से बच्चे तथा दूसरे अलाभां वित या अधिकारहीन क्षेत्र या समूह से बच्चे।” (सलमानका कथन, 1994, पैराग्राफ 3)

मानव विकास संसाधन मंत्रालय के समावेशित शिक्षा स्कीम (2003) के अनुसार,

“समावेशित शिक्षा से तात्पर्य सभी सीखने वाले, बिना विकलांग एवं विकलांग नवयुवक पूर्व-विद्यालय प्रावधानों, विद्यालय और सामुदायिक शैक्षिक स्थानों पर उपयुक्त तंत्र एवं सहायक सुविधाओं के साथ एक साथ सीख (पढ़) सकें।”

एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि समावेशित शिक्षा से तात्पर्य केवल विकलांग बच्चों को ही कक्षा में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा देना ही नहीं है, बल्कि सभी बच्चे जो विभिन्न वर्ग एवं योग्यता के हैं को एक साथ एक ही कक्षा में शिक्षा देना समावेशित शिक्षा कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न 1:

रिक्त स्थान भरिए:

1. सलमानका सम्मेलन सन् में हुआ था।
2. सलमानका सम्मेलन.....द्वारा आयोजित किया गया था।

5.4 एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा

पिछले खण्ड में हमने समावेशित शिक्षा के बारे में जाना कि इसकी शुरुआत कब हुई तथा इसका अर्थ क्या है। इस खण्ड में हम समझेंगे कि एकीकृत शिक्षा क्या है? तथा यह समावेशित शिक्षा से कैसे अलग है?

5.4.1 एकीकृत शिक्षा का अर्थ:

अक्सर विद्यार्थी एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा को एक ही समझते हैं, मगर सच्चाई यह है कि इन दोनों में बहुत अन्तर है।

एकीकृत अथवा 'इनटिग्रेट' का अर्थ है, पृथक किये हुए लोगों को पुनः मिश्रित करना अथवा जोड़ना। अर्थात् विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में शैक्षिक सुविधाएं व शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना ही 'एकीकृत शिक्षा' है।

अब प्रश्न उठता है कि अगर एकीकृत शिक्षा का भी तात्पर्य विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालय में शैक्षिक अवसर

उपलब्ध कराना है तो फिर यह समावेशित शिक्षा से भिन्न किस प्रकार है?

5.4.2 एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा में अन्तर:

एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा के अन्तर को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है:-

एकीकृत एवं समावेशित शिक्षा में प्रमुख अन्तर यह है कि एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को सामान्य विद्यालय में शैक्षिक अवसर प्रदान किया जाता है, जबकि समावेशित शिक्षा

में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को सामान्य विद्यालय की सभी शैक्षिक गति-विधियों में सम्मिलित करते हुए शैक्षिक अवसर प्रदान किया जाता है।

एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाला विद्यार्थी एक समस्या के रूप में होता है, जबकि समावेशित शिक्षा में शैक्षिक संस्था एक समस्या के रूप में होती है।

एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को विद्यालय की आवश्यकतानुसार अपेक्षित सुधार कर साम्जस्य स्थापित करे, जबकि समावेशित शिक्षा में विद्यालय का उत्तरदायित्व है कि वह विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी के अनुरूप विद्यालय के भवन, पाठ्यक्रम व अन्य सुविधाओं को उसे उपलब्ध कराने हेतु अपेक्षित सुधार करे।

समावेशित शिक्षा एक लम्बी अवधि की प्रक्रिया है, जबकि एकीकृत शिक्षा एक न्यूनतम अवधि का उद्देश्य है। चूँकि एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी को सामान्य विद्यालय में शिक्षा के अवसर प्रदान किये जाते हैं, अतः इसे न्यूनतम अवधि का उद्देश्य कहा जाता है, क्योंकि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को सामान्य विद्यालय में भर्ती कराना कोई कठिन कार्य नहीं है। कठिन कार्य तथा लम्बी अवधि की प्रक्रिया यह है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को सामान्य विद्यालय के सभी कार्यों में पूर्णरूप से भागीदारी हो रही है कि नहीं, इसलिए समावेशित शिक्षा को लम्बी अवधि की प्रक्रिया कहते हैं।

समावेशित शिक्षा सामाजिक प्रारूप पर आधारित है, जबकि एकीकृत शिक्षा व्यक्तिगत प्रारूप पर आधारित है।

अभ्यास प्रश्न 2:

सत्य/असत्य बताइए:-

1. एकीकृत शिक्षा एवं समावेशित शिक्षा में कोई अन्तर नहीं है।
2. एकीकृत शिक्षा सामाजिक प्रारूप पर आधारित है।

5.5 समावेशित शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व

आजकल प्रत्येक जगह समावेशित शिक्षा की ही चर्चा होती है, अतः यह जानने कि जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आखिर क्यों समावेशित शिक्षा जरूरी है? तथा इसका महत्त्व क्या है?

5.5.1 समावेशित शिक्षा क्यों?

अगर हम इस प्रश्न का उत्तर सोचें तो यही कहेंगे कि आज के बदलते परिवेश में कुछ लोगों को ज्यादा महत्त्व देना तथा कुछ लोगों को बिल्कुल ही ना पुछना अनैतिक है। अर्थात् कुछ बच्चों को घर के पास ही अच्छे स्कूल में पढ़ाना तथा कुछ बच्चे जिनकी आवश्यकतायें थोड़ी भिन्न हैं उनको दूर किसी विशेष स्कूल में पढ़ाना एक अनैतिक कार्य है। इसके अलावा हम कह सकते हैं कि समावेशित शिक्षा इसलिए आवश्यक है:-

क्योंकि सभी बच्चे चाहे वो कैसी भी आवश्यकता वाले हों, एक ही समाज में रहना है। अतः शुरु से ही एक साथ रखने में उनको समाज में रहने में आसानी होगी।

क्योंकि सामान्य विद्यालय सभी जगह हैं, जबकि विशेष विद्यालय दूर शहरों में होते हैं, अतः एक विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को विद्यालय जाने के लिए दूर तक सफर करना पड़ता है, जो कि उस बच्चे के मूल अधिकार का हनन है।

5.5.2 समावेशित शिक्षा का महत्त्व:

प्रत्येक राष्ट्र अपने यहाँ के सभी लोगों को साक्षर बनाने का प्रयास करता है, ताकि राष्ट्र की उन्नति हो सके। यह बात तो सिद्ध है कि जिस राष्ट्र के ज्यादातर लोग पढ़े-लिखें हैं, वह राष्ट्र ज्यादा उन्नति कर रहा है, तथा जिस राष्ट्र के कम लोग शिक्षित हैं, वह राष्ट्र गरीब है।

अतः समावेशित शिक्षा होने से सभी प्रकार के बच्चे अपने पास के स्कूल में जाकर पढ़ सकते हैं। जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चे पहले विशेष स्कूल दूर होने के शिक्षा पाने से वंचित रह जाते थे वे अब समावेशित शिक्षा के आने से पास के स्कूल में ही दूसरे बच्चों के साथ अपनी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

सभी प्रकार के बच्चों के शिक्षा ग्रहण करने पर उस राष्ट्र की साक्षरता दर बढ़ेगी तथा भविष्य में वह राष्ट्र अवश्य ही विकसित राष्ट्र बनेगा।

अभ्यास प्रश्न 3:

सत्य/असत्य बताइए:

1. विशेष शिक्षा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को हमें शा देनी चाहिए।
2. समावेशित शिक्षा राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है।

5.6 समावेशित शिक्षा का दर्शन एवं सिद्धान्त

समावेशित शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व जानने के बाद हम संक्षेप में चर्चा करेंगे कि समावेशित शिक्षा किस दर्शन पर आधारित है एवं इसके सिद्धान्त क्या हैं?

5.6.1 समावेशित शिक्षा का दर्शन:

समावेशित शिक्षा का मूल दर्शन है कि 'बच्चे जो एक साथ रहकर सीखते हैं, एक साथ रहकर जीना सीखते हैं।'

समावेशित शिक्षा का दर्शन इस विश्वास पर आधारित है कि सभी व्यक्ति समान हैं तथा मानव के मूल अधिकार के मुद्दे पर सम्मान एवं महत्त्व देनी चाहिए। समावेशित शिक्षा मानवाधिकार शिक्षा को दर्शाता है।

समावेशित शिक्षा के दर्शन के अन्तर्गत स्कूल को एक समुदाय के रूप में संगठित किया जाता है जहाँ सभी बच्चे एक साथ रहना सीख जायेंगे तो भविष्य में एक साथ रहकर जीवन निर्वाह करने में कोई परेशानी नहीं होगी।

5.6.2 समावेशित शिक्षा का सिद्धान्त:

समावेशित शिक्षा का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक बच्चे को समान अवसर, अधिकार एवं भागीदारी मिलनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त समावेशित शिक्षा का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है:-

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अतिरिक्त सहायता प्रदान करना।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति उत्तरदायित्व व सहयोग में सभी कार्यकर्ताओं की साझेदारी।

समुदाय की भागीदारी एवं सहायता सुनिश्चित करना।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के परिवार एवं सामाजिक वातावरण के बारे में जानकारी रखना।

प्रत्येक बच्चे को यह अवसर मिलना चाहिए कि वह अर्थपूर्ण चुनौतियों का सामना करे, चयन करे व जिम्मेदारी ले। दूसरों के साथ सहभागिता के साथ अन्तर्क्रिया करे व शैक्षिक प्रक्रिया की सभी विकासशील शैक्षिक व अशैक्षिक, आंतरिक व अंतैयत्त्व गतिविधियों में भाग ले।

अभ्यास प्रश्न 4:

रिक्त स्थान भरिए:

1. बच्चे जो साथ रहकर सीखते हैं, एक साथ रहकर..... सीखते हैं।
2. समावेशित शिक्षा का एक सिद्धान्त यह है कि भागीदारी एवं सहायता सुनिश्चित करना।

5.7 समावेशित शिक्षा के लाभ

समावेशित शिक्षा का अर्थ, महत्त्व, आवश्यकता एवं सिद्धान्त जानने के बाद अब हम इसके लाभों के बारे में अध्ययन करेंगे। समावेशित शिक्षा जो आज इतना प्रचलित शब्द है, इसके क्या लाभ हैं, तथा इससे लाभांवित होने वाले कौन लोग हैं?

समावेशित शिक्षा से मुख्यतः चार लोग प्रभावित होते हैं, वे हैं:-

- विशेष आवश्यकता वाले बच्चे
- सामान्य बच्चे
- सामान्य शिक्षक
- माता-पिता

अतः हम इन्हीं चारों को समावेशित शिक्षा से होने वाले लाभों के बारे में चर्चा करेंगे।

5.7.1 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए लाभ

- a. जब एक विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी को सामान्य विद्यालय के कक्षा में रखा जाता है तो, उस विद्यार्थी को अपने प्रति बहुत सारे साकारात्मक बातें आती हैं। विशिष्ट रूप से यह परम्परागत विशेष शिक्षा के कक्षा के वातावरण की तुलना में ज्यादा प्रेरक वातावरण प्रदान करता है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए यह वातावरण प्रायः सीखने एवं विकास करने में अग्रणी भूमिका निभाता है। (रेशलन फॉर एण्ड बेनफिट्स आफ इन्क्लूशन, 2004)
- ii. शोध बताते हैं कि विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी जिनको समावेशित शिक्षा में रखा गया है। वे अनुदेशात्मक समय में ज्यादा व्यस्त रहते हैं, और शैक्षिक क्रियाओं में ज्यादा प्रदर्शन कर पाते हैं। (सेलेन्ड, 2001)
- iii. विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को नये दोस्त बनाने एवं अपने अनुभवों को बाँटने का मौका मिलता है, जो कि विशेष विद्यालय में नहीं हो पाता है।

- iv. विशेष आवश्यकता वाले बच्चे अपने उम्र के बच्चों के साथ दोस्ती विकसित करते हैं, जो विद्यालय में और विद्यालय के बाहर समुदाय में उनके साथी समूह द्वारा स्वीकृति करने में अग्रसर भूमिका निभाता है।
- v. समावेशित शिक्षा में आकर विशेष आवश्यकता वाले बच्चे अपने आप को व्यक्ति के रूप में ज्यादा अभिज्ञ रखते हैं, तथा लेबलिंग (वर्गीकरण) की चिंता कम हो जाती है।
- vi. समावेशित शिक्षा से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान बढ़ता है। जब वे सामान्य विद्यार्थी एवं शिक्षक से संपर्क स्थापित करना शुरू करते हैं तो वे अपने आप को योग्य महसूस करना शुरू कर देते हैं।
- vii. विशेष आवश्यकता वाले बच्चे अपने आप को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखने लगते हैं, जो अपने अनुभवों को अपने दोस्तों के साथ बाँट कर आनन्द प्राप्त करता है। जबकि यही अनुभव उसे विशेष विद्यालय में अच्छे नहीं लगते थे।
- viii. शोध यह भी दर्शाते हैं कि समावेशित शिक्षा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के मानक टेस्ट स्कोर, पढ़ने की क्षमता और ग्रेड को बढ़ाता है। (सेलेन्ड, 2001)
- ix. समावेशित शिक्षा में रहकर विशेष आवश्यकता वाले बच्चे संप्रेषण कौशल एवं सामाजिक योग्यता सीखते हैं।
- x. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में अवांछित व्यवहार कम होते हैं, तथा सामाजिक वांछनिय व्यवहार विकसित होते हैं।
- xi. विशेष आवश्यकता वाले बच्चे नये अविष्कारों, तकनीकियों और सामान्य ज्ञान से अवगत होते हैं।
- xii. जीवन में आगे क्या करना है, कौन सी नौकरी करनी है, इत्यादि बातें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सामान्य बच्चों से चर्चा करके निश्चित कर सकते हैं।

5.7.2 सामान्य बच्चों के लिए लाभ:

- i. समावेशित शिक्षा के कारण सामान्य बच्चों को विभिन्न प्रकार के बच्चों से मिलने व उनको स्वीकार करने की आदत बचपन से पड़ जाता है। सामान्य बच्चे व्यक्तिगत विभिन्नता, तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकतायें एवं उनसे किस प्रकार व्यवहार किया जाय समझने लगते हैं। (सेलेन्ड, 2001)
- ii. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के सम्पर्क में आने से सामान्य बच्चे यह सीख जाते हैं कि बौद्धिक, शारीरिक एवं भावनात्मक अंतर सभी के जीवन का एक भाग है। जिससे उन्हें भविष्य में ऐसे लोगों से सम्पर्क बनाने में आसानी होगी। (वूड, 1993)
- iii. समावेशित शिक्षा में सामान्य विद्यार्थी समाज की विविधताओं को कक्षा में एक छोटे पैमाने पर देखने लगते हैं, जिससे भविष्य में समाज में ऐसे लोगों की सहन एवं सम्मान करने का अनुभव हो जाता है। (बेनफिट्स ऑफ इन्क्लूसिव क्लासरूम फॉर ऑल, 1999)

- iv. सामान्य बच्चे अपने विशेष आवश्यकता वाले सहपाठी को अच्छी तरह जान-पहचान जाते हैं, जिससे उनके मन में ऐसे बच्चों के प्रति बना डर व भ्रम टूट जाता है तथा वे ऐसे बच्चों का धीरे-धीरे सम्मान करने लगते हैं।
- v. सामान्य बच्चे अपने विशेष आवश्यकता वाले सहपाठी के कमियों की तरफ संवेदना विकसित करना शुरू कर देते हैं, और इनकी तरफ सहानुभूति रखने वाले कौशल विकसित करते हैं। ये दोनों कौशल सामान्य बच्चे के भावी जीवन में हर पग पर काम आते हैं।
- vi. समावेशित शिक्षा में सामान्य विद्यार्थी कुछ महत्वपूर्ण कौशलों को सीखते हैं जो कि उनके व्यवस्क जीवन के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, ये कौशल हैं:-
 - a. नेतृत्व, एक दूसरे की सहायता करना एवं पढ़ाने की योग्यता, परामर्शदाता, सिखाना, अधिकारिता तथा स्वाभीमान को बढ़ाना। (बेनेफिट्स ऑफ इन्क्लूसिव क्लासरूम फॉर आल, 1999)
- vii. समावेशित शिक्षा में सामान्य बच्चों को अक्सर शिक्षक की भूमिका अदा करने का अवसर मिलता है, ताकि अपने विशेष आवश्यकता वाले सहपाठी को पढ़ा सके तथा सहायता कर सके। इससे सामान्य बच्चे का आत्मविश्वास बढ़ता है जो उसके खुद के लिए बहुत लाभदायक है।
- viii. सामान्य बच्चे अपने विशेष आवश्यकता वाले सहपाठी के साथ रहने के अनुभव के आधार पर समाज एवं स्कूल के बीच संपर्क स्थापित करने में मदद कर सकते हैं।
- ix. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के उत्तरदायित्व को संभालते हुए सामान्य बच्चे व्यवस्क होकर समाज के उत्तरदायित्वों को संभालने में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं।
- x. समावेशित शिक्षा के सामान्य बच्चों में सकारात्मक सोच, अनुकरणीय व्यवहार, स्वीकृति, धैर्य, सहन एवं मित्रता आदि कौशलों का विकास होता है। (रेशनल फॉर एण्ड बेनिफिट्स ऑफ इन्क्लूसन, 2004)

5.7.3 सामान्य शिक्षक के लिए लाभ:

- i. समावेशित शिक्षा से सामान्य शिक्षक यह स्वीकार करने लगते हैं कि सभी विद्यार्थियों में कुछ ना कुछ गुण होता है और यह गुण मिलकर एक अच्छे कक्षा के निर्माण में सहायक होता है, तथा शिक्षक को कक्षा प्रबन्ध में आसानी होती है। (बेनिफिट्स ऑफ इन्क्लूसिव क्लासरूम फॉर आल, 1999)
- ii. समावेशित शिक्षा से सामान्य शिक्षकों में यह जानकारी उत्पन्न होती है कि व्यक्तिगत विभिन्नता क्या है, तथा कैसे अलग-अलग लोगों से अलग-अलग व्यवहार, करके एक अच्छा कक्षीय वातावरण बनाये।

- iii. समावेशित शिक्षा के कारण सामान्य शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए नये शैक्षिक तकनीक सीखता है, जो उसके कक्षा के सभी विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होता है।
- iv. समावेशित शिक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए परम्परागत शैक्षिक प्रणालियों (जैसे व्याख्यान विधि, नोट लिखना) का प्रयोग उपयुक्त नहीं होता है, अतः सामान्य शिक्षक अपने परम्परागत शैक्षिक प्रणाली को छोड़कर रचनात्मक तथा नये शैक्षिक प्रणाली से अपने कक्षा में पढ़ाता है, जिससे उसके कक्षा के सभी विद्यार्थी रुचिपूर्वक शिक्षा ग्रहण करते हैं।
- v. समावेशित शिक्षा सामान्य शिक्षक को सामूहिक कार्य कौशल विकसित करने का मौका देती है। (बेनेफिट्स ऑफ इन्क्लूसिव क्लासरूम फॉर आल, 1999)
- vi. सामान्य शिक्षक समावेशित शिक्षा के कारण विभिन्न प्रकार के प्रफेशनल (व्यवसायी) जैसे - मनोवैज्ञानिक, विशेष शिक्षक आदि से मिलता है, जिससे उसके ज्ञान में भी वृद्धि होती है।
- vii. सामान्य शिक्षक जो समावेशित शिक्षा अथवा समावेशित स्कूल में कार्य करते हैं उनमें समस्या समाधान कौशल, समस्या को अलग तरह से सोचने की तथा मनोबल बढ़ाने की कौशल का होना पाया जाता है। (बेनेफिट्स ऑफ इन्क्लूसिव क्लासरूम फॉर आल, 1999)
- viii. सामान्य शिक्षक को प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुदेशन का महत्त्व समावेशित शिक्षा में रहकर पता चलता है।
- ix. समोवशित शिक्षा में कार्य करने वाला शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकता को समझकर उसे अपने दूसरे साथियों के साथ बाँटता है जिससे ऐसे बच्चों के प्रति फैली गलत धारणाएं कम हो जाती हैं।
- x. सामान्य शिक्षक विभिन्न प्रकार के विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के सम्पर्क में रहता है, जिसका प्रभाव समाज पर भी पढ़ता है। समाज में भी वह किसी के साथ आसानी पूर्वक रह सकता है।

5.7.4 माता-पिता के लिए लाभ:

- i. माता-पिता अपने विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को घर के पास के स्कूल में दाखिला मिलने से उनसे हमें शा सम्पर्क में रहते हैं: जिससे उन्हें खुशी का अनुभव होता है, जो विशेष शिक्षा के अन्तर्गत नहीं होता था। (फोरेस्ट, एम. एण्ड पेयरप्वांट, जे., 2004)
- ii. सभी माता-पिता की इच्छा होती है कि उसके बच्चे को उसके मित्र समूह द्वारा स्वीकार किया जाय। समावेशित कक्षा में अपने बच्चे को इस प्रकार देखकर उन्हें सपने पूरे होने जैसा लगता है।

-
- iii. जब विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सामान्य जीवन व्यतित करने लगते हैं तो उनके माता-पिता अपना ध्यान दूसरे कामों में भी लगा लेते हैं, तथा समावेशित शिक्षा के कारण उन्हें यह अहसास होने लगता है कि उनका बच्चा भी सामान्य बच्चों जैसा ही है।
 - iv. समावेशित शिक्षा की वजह से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के माता-पिता में अपने बच्चों के अधिकारों को समझने में आसानी होती है।
 - v. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए दिये जा रहे सुविधाओं का भी ज्ञान माता-पिता को समावेशित शिक्षा के द्वारा होता है।
 - vi. समावेशित कक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए विभिन्न उपकरणों को देखकर माता-पिता कुछ उपकरण खरीद कर घर पर भी लाते हैं, जिससे उन्हें अपने बच्चे से अच्छी तरह सम्पर्क स्थापित करने में सहायता मिलती है।
 - vii. समावेशित शिक्षा में अपने बच्चे के उम्र के दूसरे सामान्य बच्चे की शारीरिक, बुद्धिमता इत्यादि देखकर अपने बच्चे में कहाँ कमी है, ये बात माता-पिता आसानी से समझ जाते हैं, तथा उसको दूर करने का प्रयास करते हैं।
 - viii. विद्यालय में जब शिक्षक और माता-पिता के बीच मीटिंग होती है तब उस समय विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के माता-पिता उसी कक्षा के सामान्य बच्चे के माता-पिता से मिलकर उसके द्वारा बच्चे के विकास के लिए किये गये कार्यों को समझकर अपने विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के साथ भी वैसा करने का प्रयास कर सकते हैं ताकि उसमें भी वैसा ही विकास हो जैसे सामान्य बच्चे में है।
-

अभ्यास प्रश्न 5:

बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. समावेशित शिक्षा से लाभांविता नहीं होते हैं:

अ. सामान्य बच्चे	ब. विशेष आवश्यकता वाले बच्चे
स. शिक्षक	द. इनमें से कोई नहीं
2. समावेशित शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सामान्य बच्चों के साथ

अ. लड़ते हैं	ब. मिलते नहीं है
स. मित्र बनाते हैं	द. बात नहीं करते हैं
3. समावेशित शिक्षा में सामान्य शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को

- | | | | |
|----|--------------------|----|---------------------------------------|
| अ. | हमें शा ड़ॉटता है | ब. | अलग रखता है |
| ब. | ध्यान नहीं देता है | द. | सामान्य बच्चों के साथ मिलाकर रखता है। |

5.8 समावेशित शिक्षा में मुद्दे

‘मुद्दे’ एक ऐसा शब्द है, जिससे आप सभी लोग परिचित होंगे। रोजमर्रा के जीवन में भी यह शब्द आता रहता है, जैसे देश के मुद्दे, राज्य के मुद्दे, स्कूल में मुद्दे इत्यादि। अर्थात् अगर हर जगह मुद्दे व्याप्त है तो फिर समावेशित शिक्षा इससे कैसे अछूता रह सकता है।

अतः इस खण्ड में हम समावेशित शिक्षा में कुछ प्रमुख मुद्दों की चर्चा करेंगे, जो है:-

- समाज से संबंधित मुद्दे
- वित्तीय संबंधी मुद्दे
- शिक्षा नीति संबंधी मुद्दे
- उपलब्धता एवं सुगम्यता संबंधी मुद्दे
- अध्यापक शिक्षा से संबंधित मुद्दे
- शोध से संबंधित मुद्दे

5.8.1 समाज से संबंधित मुद्दे

समावेशित शिक्षा में सबसे प्रमुख मुद्दा है समाज के लोगों की नकारात्मक मनोवृत्ति। नकारात्मक मनोवृत्ति जो कि समाज के सांस्कृतिक

धारणा में गहराई तक समाहित है, उसको परिवर्तित करना एक मुश्किल कार्य है।

अभी भी समाज के लोगों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों या विकलांग बच्चों के प्रति गलत धारणा बनी हुई जो समावेशित शिक्षा के लिए बहुत बड़ा अवरोध है। इसको परिवर्तित किये बिना समावेशित शिक्षा सफलतापूर्वक नहीं चल सकता है। मनोवृत्ति विश्वास पर आधारित होता है, इनको बदला तभी जा सकता है जब कोई नयी सूचना समाज के लोगों को बताया जाय; जैसे- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों एवं सामान्य बच्चों के समावेशित शिक्षा में सफलता की कहानी।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के कुछ माता-पिता अपने बच्चों को समावेशित शिक्षा में दाखिला करने से डरते हैं कि वहाँ पर उनके बच्चे का सही ढंग से देखभाल नहीं होगा। उनका मानना है कि विशेष स्कूल ही उनके बच्चों के लिए ठीक है।

समाज में व्याप्त यही सब मुद्दे समावेशित शिक्षा के सफल संचालन में बाधा हैं, अतः इनको दूर करना अति आवश्यक है।

5.8.2 वित्तीय संबंधी मुद्दे

उपलब्ध संसाधनों के अलावा सभी देश विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के लिए वित्तीय मुद्दों को लेकर ज्यादा चिंतित हैं। परन्तु फिर भी इस क्षेत्र में वित्तीय संबंधी समस्या है।

समावेशित स्कूल बनाने में ज्यादा पैसे की जरूरत है, मगर

विकासशील देशों में या गरीब देशों में पैसे की कमी होने के कारण समावेशित शिक्षा लाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

थॉमस (2005) का कहना है कि भारत में समावेशित शिक्षा को कार्यान्वित करने के लिए वास्तव में पर्याप्त संसाधन एवं धन है। उनका कहना है कि यह इस प्रकार हो सकता है कि जो आवश्यक सुविधाएं कुछ विशेष विद्यालय प्रदान कर रहे हैं तथा जो धन इन पर खर्च हो रहे हैं, उनको फैलाया जाय।

समावेशित शिक्षा के सफल संचालन के लिए पर्याप्त मात्रा में धन एवं उसका सही ढंग से उपयोग होना जरूरी है। भारत में प्रत्येक बजट में शिक्षा के लिए धन का प्रावधान होता है, मगर इसका सही ढंग से उपयोग करना अभी भी सरकार के लिए समस्या बनी हुई है, जिससे समावेशित शिक्षा प्रभावित होती है।

5.8.3 शिक्षा नीति संबंधी मुद्दे:

भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए नीतियाँ है मगर इन नीतियों को कार्यान्वित करने में कई समस्याएँ आती हैं, जैसे - प्रशासनिक संरचना, समावेशित शिक्षा नीति आदि। इनका हम संक्षेप में चर्चा करेंगे।

5.8.3.1 प्रशासनिक संरचना:

भारत में सन् 1976 से शिक्षा संयुक्त रूप से केन्द्र और राज्य की जिम्मेदारी है। केन्द्र नीतियों की रूपरेखा एवं वित्तीय सहायता देता है, जबकि राज्य अपने नीतियों को संगठित, संरचित एवं कार्यान्वित करता है। विभिन्न सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण केन्द्र सरकार के नीतियों के लिए यह असम्भव हो जाता है कि वे प्रत्येक राज्य तक पहुँचे क्योंकि प्रत्येक राज्य ऐसी नीतियों को अपने तरह से प्रस्तुत करता है। केन्द्र सरकार यह मानता है कि, “राष्ट्रीय योजनाओं में एक प्रमुख चुनौती है कि राज्य के वरीयता के साथ राष्ट्रीय योजना फ्रेम का सामन्जस्य स्थापित करना।” (जी. ओ. ई. 200)

एक अतिरिक्त नौकरशाही तनाव, जो सामानांतर व्यवस्था उत्पन्न करता है वह है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए विशेष स्कूल खराब प्रदर्शन करने वाले (ळप्व्ए 2005: 146-7) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अंतर्गत आता है, जबकि बाकी सामान्य स्कूल मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय के अन्तर्गत आते हैं।

प्रत्येक विभाग समावेशित शिक्षा घटक के साथ अपने शैक्षिक कार्यक्रमों की देखभाल करता है, अतः बच्चे कई सारे विभागों में फैले होते हैं, तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय मिलकर काम नहीं करते हैं। इसके परिणामस्वरूप कार्यों में समानता की कमी, खराब गुण एवं प्रतिलिपिकरण होता है। (सिंगल, 2005)

5.8.3.2 समावेशित शिक्षा नीति

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अथवा विकलांग बच्चों को समावेशित शिक्षा में भेजने का सुझाव सर्वप्रथम सन् 1944 में सार्जेन्ट रिपोर्ट ने दिया, फिर दुबारा सन् 1964 कोठारी कमीशन द्वारा दिया गया, बावजूद इसके अभी तक इस क्षेत्र में ज्यादा उन्नति नहीं हुई है। (जुलका, 2005)

भारत सरकार द्वारा बीस साल पहले ही विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए एकट पारित किया जा चुका है, परन्तु अभी भी समावेशन में अवरोध बने समाज के लोगों की मनोवृत्ति को परिवर्तित नहीं कर पाये हैं। उदाहरण के तौर पर सन 1993 में सभी के लिए शिक्षा पर दिल्ली घोषणा में वादा किया गया था कि प्रत्येक बच्चे की क्षमता के अनुसार उनको स्कूल में या उपयुक्त शैक्षिक प्रोग्राम में शिक्षा दी जायेगी। (मुखोपाध्याय एण्ड मनी, 2002: 96)

समावेशित शिक्षा को प्रोत्साहित करने के स्थान पर सरकारी दस्तावेज का मुख्य ध्यान विकलांग बच्चों को शिक्षा व्यवस्था में दाखिला दिलाना है..... भले ही पूर्ण रूप से समावेशन हो अथवा नहीं। (सिंगल, 2005)

5.8.4 उपलब्धता एवं सुगमता संबंधी मुद्दे

उपलब्धता एवं सुगमता से तात्पर्य है स्कूल के भवन एवं पाठ्यक्रम। इन्हीं की चर्चा हम इस खण्ड में करेंगे।

5.8.4.1 स्कूल के भवन:

समावेशित शिक्षा के लिए सर्वप्रथम आवश्यक तत्व है स्कूल के भवनों को अवरोध मुक्त करना। परन्तु आज भी स्कूलों के भवनों ना तो रेलिंग है या ना तो रैम्प। अतः एक अस्थि विकलांग

बच्चे को स्कूल में दाखिला देना सम्भव नहीं है। अर्थात् जब तक स्कूलों के भवनों का पुनःसंरचना या परिवर्तन नहीं दस्तावेजों पर ही रहेगा, व्यवहारिक नहीं हो पायेगा।

5.8.4.2 पाठ्यक्रम

समावेशित शिक्षा में पाठ्यक्रम भी एक प्रमुख मुद्दा है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाए बिना समावेशित शिक्षा सफलतापूर्वक संचालित नहीं हो पाएगा।

कुछ विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को सामान्य पाठ्यक्रम में परिवर्तन की जरूरत नहीं पड़ती है। ये बच्चे सामान्य बच्चों की तरह पाठ्यक्रम को समझ सकते हैं, बस प्रस्तुत करने के तरीकों में परिवर्तन करना होता है। जैसे - दृष्टिबाधित बच्चों के लिए ब्रेल में लिखे हुए विषय वस्तु, जो श्यामपट पर लिखे उसको बोलें भी।

परन्तु कुछ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के (जैसे - मानसिक मंद) लिए पाठ्यक्रम अनुकूलन करना पड़ेगा, क्योंकि इसके बिना ऐसे बच्चों का समावेशन मुश्किल कार्य है।

5.8.5 अध्यापक शिक्षा से संबंधित मुद्दे

समावेशित शिक्षा के क्षेत्र में कई शिक्षाशास्त्री इस बात पर बल देते हैं कि कक्षा में समावेशित शिक्षा के कार्यान्वयन में अध्यापक शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है। (एन्सको, 2005, बूथ एट.एफ. 2003)

भारत में सामान्य अध्यापक शिक्षा के लिए डिप्लोमा और डिग्री कोर्सेस देश भर में फैले हैं, उसमें एक ऐच्छिक पेपर 'विशेष आवश्यकता' होता है जिसका उद्देश्य होता है कि विकलांगता को पहचानने एवं निदान करने के लिए अध्यापकों को तैयार करना। फिर भी यह प्रशिक्षण का अनिवार्य भाग नहीं होता, तथा यह अध्यापक को यह प्रशिक्षण नहीं देता है कि विभिन्नताओं के साथ कैसे व्यवहार किया जाय तथा विकलांग के प्रति नाकारात्मक मनोवृत्ति को कैसे समाज से हटाया जाय। (सिंगल, 2005)

अध्यापक शिक्षा के ऐसे तरीके ही विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को सामान्य बच्चे से भिन्न कर देते हैं, तथा यह धारणा बन जाती है कि ऐसे बच्चों को वही अध्यापक पढ़ा सकते हैं जो विशेषतः ऐसे बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षण लिये हैं।

इस बात के प्रमाण हैं कि बहुत सारे शिक्षक यह महसूस करते हैं कि वे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने में सक्षम नहीं हैं, तथा उन्हें इन बच्चों को पढ़ाने के लिए कुछ और समय चाहिए। (मुखोपाध्याय, 2005)

अतः अगर समावेशित शिक्षा का सफलतापूर्वक संचालन करना है, तो सामान्य अध्यापक के प्रशिक्षण के कोर्स में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के बारे में विस्तृत जानकारी देनी होगी, तथा उन्हें ऐसे प्रशिक्षित करना होगा कि उन्हें ही ऐसे बच्चों को पढ़ाना है कोई अलग अध्यापक विशेष प्रशिक्षण लेकर नहीं आयेगा।

5.8.6 शोध से सम्बन्धित मुद्दे

किसी भी क्षेत्र में शोध से ही पता चलता है कि उस क्षेत्र में कितना काम हो चुका है, और कितना बाकी है। परन्तु भारत में समावेशित शिक्षा में प्रयोगाश्रित एवं शैक्षिक शोध की बहुत कमी है। यह अभी प्राथमिक स्टेज पर है (सिंगल, 2005), अतः समावेशित शिक्षा में क्या कार्य करना है, इसकी सही जानकारी नहीं मिल पाता है।

समावेशित शिक्षा के बारे में सूचनाओं का ना होना यह सुझावित करता है कि भारत में समावेशित शिक्षा के प्रभाव एवं कार्यान्वयन के क्षेत्र में शोध की भीषण जरूरत है। (डायर, 2000)

विकलांग, बच्चों की जनसंख्या कितनी है, इसका पता सिर्फ सर्वे एवं जनगणना के आधार पर होता है। इसमें घर के मुखिया से ही पुछा जाता है कि उसके घर में कोई विकलांग बच्चा है अथवा नहीं, हो सकता है कि मुखिया अपने बच्चे की विकलांगता छिपाने के लिए झूठ बोले। अतः विकलांग बच्चों की सही संख्या ही पता नहीं चल पायेगी, तो फिर उनके लिए उपाय या नीतियाँ बनाने का तो सवाल ही नहीं उठता है।

उपर्युक्त बातों से यह निश्चित हो गया है कि अगर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समावेशित शिक्षा में अच्छी शिक्षा देनी है तो शोध के माध्यम से समस्याओं एवं उनके समाधान खोजने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न 6:

सत्य/असत्य बताइए:-

1. समाज से संबंधित मुद्दे समावेशित शिक्षा में कोई मायने नहीं रखते हैं।
2. भारत में समावेशित शिक्षा नहीं आया है।
3. भारत सरकार ने समावेशित शिक्षा के लिए कोई नीति नहीं बनाई है।
4. भारत में शिक्षा संयुक्त रूप से केन्द्र एवं राज्य की जिम्मेदारी है।

5. समावेशित शिक्षा में कुछ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए पाठ्यक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

5.9 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि समावेशित शिक्षा का प्रारम्भ सन् 1994 में सलमानका सम्मेलन के बाद हुआ। समावेशित शिक्षा का अर्थ होता है कि विभिन्न प्रकार के बच्चों की एक साथ शिक्षा अर्थात् सामान्य बच्चे एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चे। फिर हमने समावेशित शिक्षा के आवश्यकता एवं महत्त्व पर चर्चा करते हुए इसके दर्शन एवं सिद्धान्त को समझा। फिर हमने देखा कि समावेशित शिक्षा किस प्रकार विशेष आवश्यकता वाले बच्चों, सामान्य बच्चों, सामान्य शिक्षक एवं माता-पिता के लिए लाभदायक है। अंत हमने समावेशित शिक्षा में आने वाले विभिन्न मुद्दों की चर्चा की।

5.10 शब्दावली

समावेशित शिक्षा: सामान्य बच्चों एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की एक साथ शिक्षा।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे: वे बच्चे जिनकी आवश्यकतायें सामान्य बच्चों से अलग हों जैसे- दृष्टिबाधित बच्चे, श्रवणबाधित बच्चे, मानसिक मंद बच्चे, अस्थि विकलांग बच्चे इत्यादि।

अवांछित व्यवहार: जो व्यवहार सामाजिक रूप से ठीक नहीं अर्थात् जो अच्छा व्यवहार ना हो।

अनुकरणीय व्यवहार: जो व्यवहार इतना अच्छा हो कि उसे दुसरे लोग अनुकरण कर सकें।

मनोवृत्ति: मन में किसी के प्रति विचार रखना यह विचार नकारात्मक भी हो सकता तथा सकारात्मक भी हो सकता है।

विशेष विद्यालय: जहाँ एक प्रकार के विशेष आवश्यकता वाले बच्चे पढ़ते हैं, जैसे - दृष्टिबाधितों के लिए विशेष विद्यालय, मानसिक मंद बच्चों के लिए विशेष विद्यालय इत्यादि।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1:-

1. सन् 1994
2. यूनेस्को

अभ्यास प्रश्न 2:-

1. असत्य
2. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3:-

1. असत्य 2. सत्य

अभ्यास प्रश्न 4:-

1. जीना 2. समुदाय की

अभ्यास प्रश्न 5:-

1. द 2. स 3. द

अभ्यास प्रश्न 6:-

1. असत्य 2. असत्य 3. असत्य
4. सत्य 5. सत्य

5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

हेन्सको, एम. (2005) फ्राम स्पेशल एडुकेशन टू इफेक्टिव स्कूल फॉर आल, कीनोट प्रजेनटेशन एट द इन्क्लूसिव एण्ड सर्पोटिव एडुकेशन कांग्रेस 2005, यूनिवर्सिटी ऑफ स्ट्रेथक्लेड, ग्लासो।

बूथ, टी. के एण्ड स्ट्रामस्टैड, एम. (2003). डेवलपिंग इन्क्लूसिव टीचर एडुकेशन: ड्राइंग द बुक टुगेदर। लंदन: रोटलेज फलेमर।

फोरेस्ट, एम. एण्ड पीयरप्वांट, जे. (2004). “इन्क्लूजन! द बिर पिक्चर” वेबसाइट <http://www.inclusion.com/artbiggerpicture.html> से लिया।

“बेनेफिट्स ऑफ इन्क्लूसिव क्लासरूम फॉर आल” (1999). वेबसाइट <http://www.uni.edu/coe/inclusion/philosophy/benefite.html> से लिया।

डायर, सी (2002), आपरेशन ब्लैक बोर्ड . पॉलिसी इम्प्लीमेंटेशन इन इंडियन एलिमेंट्री एडुकेशन। आक्सफोर्ड: सीमपोजियम बुक्स।

जी. ओ. आई. (2000). इंडिया: एडुकेशन फॉर आल इयर 2000 असेसमेंट, एम. एच. आर. डी. नई दिल्ली: गर्वनमेंट ऑफ इंडिया एण्ड एन. आइ. ई. पी. ए।

जुलका ए (2005). एडुकेशनल प्रोविजनस एण्ड प्रेक्टिसेस फॉर लरनरस विद डीसेबेलटीस इन इंडिया, पेपर प्रजेन्टेड एट द इन्क्लूसिव एण्ड सुपोर्टिव एडुकेशन कांग्रेस 2005, यूनिवर्सिटी ऑफ स्ट्रेथक्लेड, ग्लासो।

मुखोपाध्याय, एस. एण्ड मनी, एम. एन. जी. (2002). एडुकेशन ऑफ चिल्ड्रेन विद स्पेशल नीड्स। नई दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मुखोपाध्याय, एस. (2005). रीथिंकिंग एबाउट इन्क्लूसन: इमर्जिंग एरिया फॉर पॉलिसी रिसर्च, नई दिल्ली: न्यूपा

‘‘रेशलन फॉर एण्ड बेनेफिट्स ऑफ इन्क्लूसन’’ (2004). वेबसाइट <http://www.inclusion.com/artbiggerpicture.html> से लिया।

सेलेन्ड, एस. (2001), क्रीएटिंग इन्क्लूसिव क्लासरूम: इफेक्टिव एण्ड रिफ्लेक्टिव प्रेक्टिसेस। न्यू जर्सी: पिंटिस हाल।

सिंगल, एन. (2005). रेसपांडिंग टू डिफरेन्स: पॉलिसिज टू सपोर्ट इन्क्लूसिव एडुकेशन इन इंडिया, पेपर प्रजेन्टेड एट द इन्क्लूसिव एण्ड सर्वोटिव एडुकेशन कांग्रेस 2005, यूनिवर्सिटी ऑफ स्ट्रेथक्लेड, ग्लासो।

थॉमस पी. (2005). में नस्ट्रीमिंग डीसएबिलिटी इन डेवलपमेंट: इंडिया कंट्री रिपोर्ट। लंदन: डिसएबिलिटी नालेज एण्ड रिसर्च। वेबसाइट http://disabilitykar.net/research/pol_india/html से लिया।

वूड, जे. (1993). में नस्ट्रीमिंग: ए प्रेक्टिकल अप्रोच फॉर टीचर्स। न्यू जर्सी: में रील पब्लिशिंग कम्पनी।

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

पांडा, के. सी. (1997). ‘‘एडुकेशन ऑफ एक्सेपसनल चिल्ड्रेन’’ नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स।

गोविन्द राव, एल. (2007), पर्सपेक्टिव ऑन स्पेशल एडुकेशन: हैदराबाद: नीलकलम पब्लिकेशन।

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. समावेशित शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इसके आवश्यकता एवं महत्त्व की व्याख्या करें।

2. एकीकृत शिक्षा क्या है? यह समावेशित शिक्षा से किस प्रकार भिन्न है?
3. समावेशित शिक्षा के दर्शन एवं सिद्धान्त पर एक लेख लिखें।
4. समावेशित शिक्षा से लाभांविता होने वाले लोगों के लाभों की विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
5. समावेशित शिक्षा के विभिन्न मुद्दों का वर्णन करें।

इकाई 6: मुक्त व दूरवर्ती शिक्षा: अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता, और मुख्य विशेषताएं (Meaning, definition, need and characteristic features, of Open and Distance Education)

इकाई की रूपरेखा

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 दूरवर्ती शिक्षा
- 6.4 दूरवर्ती शिक्षा की परिभाषाएँ
- 6.5 दूरवर्ती शिक्षा के आधारभूत तत्व
- 6.6 दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताएँ
- 6.7 दूरवर्ती शिक्षा की आवश्यकता
- 6.8 सारांश
- 6.9 शब्दावली
- 6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:

जैसा कि आप सभी जानते हैं कि परम्परागत शैक्षिक व्यवस्था में शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य पाठ्यक्रम के सापेक्ष अन्तक्रिया होती है ताकि शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव हो सके। परन्तु वर्तमान में यह अन्तक्रिया ही शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एकमात्र साधन नहीं है। दूरवर्ती शिक्षा के

शिक्षार्थी होने के कारण आप शिक्षा के अन्य गैरपरम्परागत साधनों से परिचित हो गये होंगे तथा आपकी यह धारणा बदल गई होगी कि सीखने-सीखाने के लिए शिक्षक तथा शिक्षार्थी का प्रत्यक्ष सम्पर्क तथा अन्तःक्रिया होना आवश्यक है। वर्तमान में दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली एक स्वतंत्र एवं आवश्यक शिक्षा प्रणाली बन चुकी है। दूरवर्ती शिक्षा एक ऐसा नवाचार है जिसके द्वारा समाज की निरन्तर बढ़ती हुई शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। प्रस्तुत इकाई में हम दूरवर्ती शिक्षा के अर्थ, परिभाषा तथा अन्य संबंधित पक्षों की चर्चा करेंगे।

6.2 उद्देश्य:

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि

- दूरवर्ती शिक्षा का अर्थ समझ सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा को परिभाषित कर सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा के विभिन्न तत्वों की व्याख्या कर सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

6.3 दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती शिक्षा, एक गैरप्रचलित एवं अपरम्परागत नवाचारी उपागम है क्योंकि इसके मापदण्ड, उपागम तथा प्रविधियाँ परम्परागत प्रणाली से भिन्न हैं। यह शिक्षा की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें शिक्षक तथा शिक्षार्थी एक दूसरे से भौगोलिक दृष्टि से दूर रहकर विभिन्न संचार माध्यमों एवं मुद्रित सामग्रियों के प्रभावशाली सम्प्रेषण द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस शिक्षा व्यवस्था में विद्यालय अथवा किसी औपचारिक शिक्षा संस्थानों में कक्षा कक्षों में आमने सामने बैठकर शिक्षा देने के स्थान पर मुद्रित सामग्रियों के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। इस व्यवस्था में अध्यापक की भूमिका औपचारिक शिक्षा संस्थानों अथवा विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों से भिन्न होती है। इस शिक्षा प्रणाली में शिक्षा भाषण अथवा व्याख्यान के माध्यम से नहीं दी जाती है बल्कि शिक्षकों द्वारा विशेष प्रकार के संवाद की नितांत अनौपचारिक भाषा में तैयार की गई मुद्रित सामग्रियों के द्वारा शिक्षार्थी को स्वतः अध्ययन में सहायता प्रदान की जाती है। इस शिक्षा प्रणाली में शिक्षण के स्थान पर विद्यार्थी के सीखने पर अधिक बल दिया जाता है। यह शिक्षा व्यवस्था शिक्षार्थियों को किसी भी प्रकार के कठोर नियमों, समय की सीमाओं में नहीं बांधती है, बल्कि उन्हें अवसर देती है कि वे अपनी क्षमता, सुविधा एवं परिस्थिति के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर सकें।

6.4 दूरवर्ती शिक्षा: परिभाषाएँ

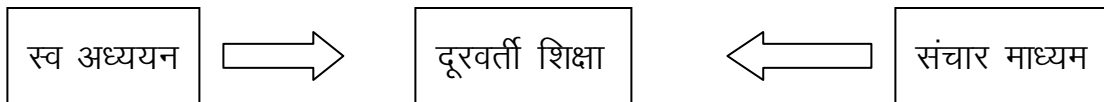
दूरवर्ती शिक्षा को परिभाषित करने के अनेक प्रयास किये गये हैं तथा निरन्तर किये जा रहे हैं। विभिन्न विचारकों ने अपने ज्ञान, समझ तथा दृष्टिकोण से दूरवर्ती शिक्षा को परिभाषित किया है। परन्तु अभी

भी ऐसी परिभाषा जो कि सर्वमान्य हो तथा दूर शिक्षा के समस्त गुणों से युक्त हो नहीं दी गई है। विभिन्न विचारकों द्वारा दी गई परिभाषाओं में अन्तर का प्रमुख कारण उनके द्वारा दूरवर्ती शिक्षा के किसी एक पहलू अथवा गुण पर ही अत्याधिक बल देना है। आगे दूरवर्ती शिक्षा की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं जो दूरवर्ती शिक्षा का व्यापक प्रस्तुत करती है।

बोर्जी होमबर्ग (1981) ने दूरवर्ती शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह इस प्रकार की शिक्षा है जिसमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अध्ययन के विभिन्न प्रकार, उन विद्यार्थियों के लिए जो शिक्षकों के निरन्तर एवं तुरन्त निरीक्षण में कक्षाओं में नहीं होते हैं, परन्तु किसी भी प्रकार से सामान्य शैक्षणिक संस्थाओं के नियोजन, निर्देशन एवं शिक्षण के समान ही लाभांविता होते हैं।

होमबर्ग की परिभाषा की एक प्रमुख विशेषता दूरस्थ शिक्षा को एक संगठित शैक्षिक कार्यक्रम के रूप में प्रकट करना है।

डोहमें न (1977) ने दूरस्थ शिक्षा को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया है कि दूरवर्ती शिक्षा स्व अध्ययन का एक विधिवत् संगठित रूप है जिसमें छात्र परामर्श, अधिगम सामग्री का प्रस्तुतीकरण तथा छात्रों की सफलता का सुनिश्चितीकरण एवं निरीक्षण अध्यापकों के एक समूह द्वारा किया जाता है तथा जिसमें प्रत्येक अध्यापक का अपना उत्तरदायित्व होता है। संचार माध्यमों के द्वारा बहुत दूर रहने वाले विद्यार्थियों के लिए इसे सम्भव बनाया जाता है। डोहमें न की यह परिभाषा “स्व अध्ययन” के महत्व पर बल देती है। साथ ही डोहमें न ने दूरवर्ती शिक्षा में संचार माध्यमों के प्रयोग द्वारा दूर-दूर स्थित विद्यार्थियों तक इस शिक्षा की पहुँच को महत्व प्रदान किया है।



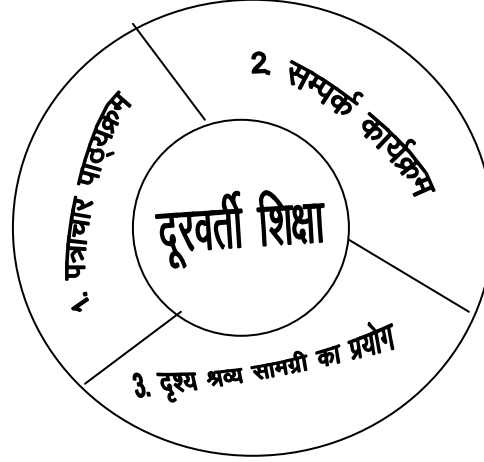
दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताओं के प्रति मूरे बहुत स्पष्ट हैं, इन्होंने दूरवर्ती शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि “दूरवर्ती शिक्षा को अनुदेशन विधियों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें शिक्षण व्यवहार, अधिगम व्यवहार से अलग संपादित किये जाते हैं। इसमें अधिगमकर्ता की उपस्थिति में सम्पन्न होने वाली क्रियायें भी सम्मिलित होती हैं। साथ ही शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य सम्प्रेषण को मुद्रित सामग्री, इलैक्टॉनिक्स, यांत्रिक एवं अन्य साधनों से सुगम बनाया जाता है।

मूरे की उपरोक्त परिभाषा में दूरवर्ती शिक्षा की तीन विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।

1- शिक्षण व्यवहार, अधिगम व्यवहार से पृथक होता है अर्थात् पत्राचार पाठ्यक्रम।

2- अधिगमकर्ता की उपस्थिति में सम्पन्न होने वाली क्रियाएँ भी सम्मिलित होती हैं- अर्थात् सम्पर्क कार्यक्रम।

3- शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य सम्प्रेषण को मुद्रित सामग्री, इलैक्ट्रॉनिक्स, यांत्रिक एवं अन्य साधनों से सुगम बनाया जाता है- अर्थात् दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है।



मुरे के अनुसार दूरवर्ती शिक्षा

वेडमें यर ने दूरवर्ती शिक्षा सम्बन्धी अपने कार्यों में मुक्त अधिगम, दूरवर्ती शिक्षा तथा स्वतंत्र अध्ययन जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु उसने “स्वतंत्र अध्ययन” शब्द को ही अधिक महत्व दिया है।

वेडमें यर ने स्वतंत्र अध्ययन को परिभाषित करते हुये कहा है कि “स्वतंत्र अध्ययन” के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की शिक्षण अधिगम व्यवस्थाओं का समावेश होता है जिसमें शिक्षक एवं शिक्षार्थी, अपने-अपने अनिवार्य कार्यों तथा उत्तरदायित्वों का निर्वहन एक-दूसरे से अलग रहकर पूर्ण करते हैं तथा सम्प्रेषण के विविध साधनों का प्रयोग करते हैं। इसका उद्देश्य शिक्षार्थियों को स्कूली परिसर के अनुपयुक्त स्थानों अथवा प्रारूपों से मुक्त रखना, विद्यालय के बाहर के शिक्षार्थियों को अपने वातावरण में अध्ययन करने के अवसर प्रदान करना और सभी शिक्षार्थियों में स्वतः निर्देशित अधिगम के द्वारा आगे बढ़ने की क्षमता का विकास करना है जैसे कि शिक्षित व्यक्ति से परिपक्वता की अपेक्षा की जाती है।

वेडमें यर की उपरोक्त परिभाषा में दो प्रकार के स्वतंत्र अध्ययन का उल्लेख किया गया है। प्रथम वे शिक्षार्थी जो नियमित रूप से कक्षाओं में नहीं जाना चाहते तथा द्वितीय वे शिक्षार्थी जो विद्यालय में नहीं हैं तथा किसी तरह स्वयं अध्ययन करते हैं।

कीगन (1986) ने दूरवर्ती शिक्षा को व्यापक रूप से परिभाषित करते हुए कहा है कि यह शिक्षा का वह रूप है जिसमें अधिगम प्रक्रिया में पूरे समय शिक्षक एवं शिक्षार्थी का पृथक्करण होता है, नियोजन तथा अधिगम सामग्री को तैयार करने तथा छात्रों की सहायता सेवा पर शैक्षिक संगठन का प्रभाव होता है। तकनीकी माध्यमों, छपी हुई सामग्री, दृश्य-श्रव्य माध्यम शिक्षक तथा शिक्षार्थी में सम्पर्क बनाते हैं और पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाते हैं।

अभ्यास प्रश्न:

क) अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान में लिखिए।

ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ मिलाइए।

1. किस विचारक ने दूरवर्ती शिक्षा को स्व अध्ययन तथा संचार माध्यमों का सम्मिश्रण कहा है?

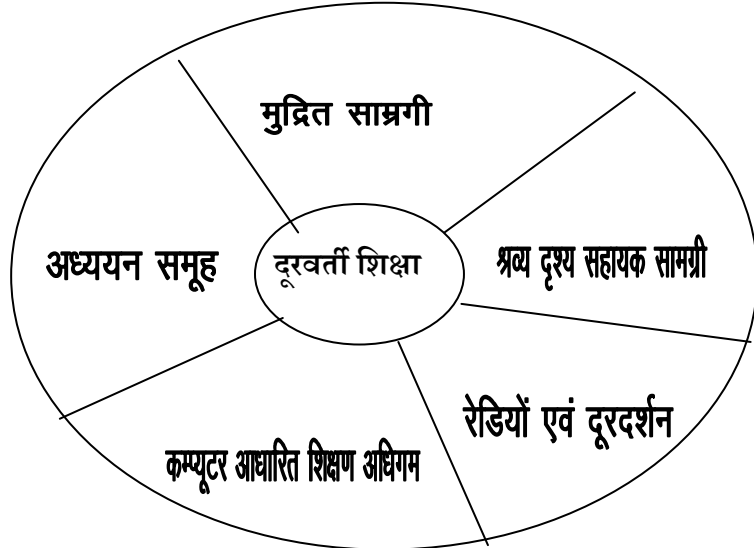
2. किस विचारक ने दूरवर्ती शिक्षा को एक संगठित शैक्षिक कार्यक्रम के रूप में परिभाषित किया है।

3. वेडमें यर के अनुसार स्वतंत्र अध्ययन के कौन-कौन से प्रकार हैं?

6.5 दूरवर्ती शिक्षा के आधारभूत तत्व:

दूरवर्ती शिक्षा संरचना एवं संगठन की दृष्टि से एक विस्तृत एवं व्यापक शिक्षा प्रणाली है। इसकी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों के आधार पर इसकी संरचना को जाना जा सकता है। दूरवर्ती शिक्षा के प्रमुख आधारभूत तत्व निम्नलिखित हैं -

- 1- मुद्रित सामग्री - मुद्रित सामग्री के अन्तर्गत पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ तथा स्व- अनुदेशात्मक अधिगम सामग्री आदि सम्मिलित किए जाते हैं। यह मुद्रित सामग्री दूरवर्ती शिक्षा की अधिगम व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। सामान्यतया दूरवर्ती शिक्षा की समस्त शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मुद्रित सामग्री पर आधारित होती है। मुद्रित सामग्री का निर्माण प्रायः विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। वस्तुतः अब आपको स्पष्ट हो ही गया होगा कि आप जो अध्ययन सामग्री पढ़ रहे हैं उसे मुद्रित सामग्री के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है।
- 2- श्रव्य - दृश्य सामग्री - इसमें फिल्म, स्लाइड, चलचित्र तथा श्रव्य-दृश्य कैसेट आदि सम्मिलित किये जाते हैं। ये सामग्री अप्रत्यक्ष शिक्षण का माध्यम है।
- 3- रेडियो एवं दूरदर्शन - दूरवर्ती शिक्षा में जनसंचार के प्रमुख माध्यम रेडियो तथा दूरदर्शन का उपयोग अधिगम सामग्री संबंधी, सहायता तथा छात्र सहायक सेवा के माध्यम के रूप में किया जाता है, जिनकी सहायता से शिक्षार्थी घर बैठे हुए ही विषय से सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इन माध्यमों में समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रमों जैसे टेली कान्फ्रेंसिंग तथा अन्तःक्रियात्मक मार्गदर्शन के माध्यम से शिक्षार्थी अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकता है।



4- कम्प्यूटर आधारित शिक्षण अधिगम - दूरवर्ती शिक्षा में कम्प्यूटर अधिगम का एक प्रभावी माध्यम है। कम्प्यूटर शिक्षार्थी को अपने अध्ययन से संबंधी समस्त सूचनाओं की प्राप्ति का एक प्रबल माध्यम है। जिसकी सहायता से शिक्षार्थी अपने अध्ययन कार्यक्रम में प्रवेश से लेकर परिणाम तक की समस्त सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर ईमें ल के माध्यम से अपनी जिज्ञासा संबंधी प्रश्न पूछ सकता है।

5- अध्ययन समूह - सम्पर्क कार्यक्रमों तथा काउन्सलिंग के समय, अध्ययन केन्द्रों पर शिक्षार्थी अपने विषय तथा संबंधी विषयों के अन्य शिक्षार्थियों से अनौपचारिक रूप से आमने सामने अपनी कठिनाइयों के संबंध में विचार विमर्श करते हैं तथा समान आधार पर निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। दूरवर्ती शिक्षा में इस प्रकार के अध्ययन समूह, शिक्षार्थियों के अभिप्रेरणा स्रोत के रूप में कार्य करते हैं तथा समस्याओं के वास्तविक समाधान में सहायता करते हैं।

उपरोक्त समस्त तत्व मिलकर दूरवर्ती शिक्षा की संरचना का खाका तैयार करते हैं जिसे सामान्यतया दूरवर्ती शिक्षण अधिगम प्रणाली कहा जाता है तथा इस कार्यप्रणाली का व्यावहारिक रूप मुक्त विश्वविद्यालयों के नाम से जाना जाता है। भारत में दूरवर्ती शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना 1985 में की गई है। जो अपने 67 क्षेत्रीय केन्द्रों तथा सैकड़ों अध्ययन केन्द्रों के विशाल नेटवर्क के माध्यम से सम्पूर्ण देश में दूरवर्ती शिक्षा का प्रसार कर रहा है। इसके साथ ही समय समय पर विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा राज्य मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई है। कुछ प्रमुख राज्य मुक्त विश्वविद्यालय इस प्रकार से हैं -

1. राजर्षि टन्डन मुक्त विश्वविद्यालय, उत्तरप्रदेश।
2. मध्यप्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश।
3. नालन्दा मुक्त विश्वविद्यालय, बिहार।
4. के.के. हाडिंक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, आसाम।
5. वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, राजस्थान।
6. कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, कर्नाटक।
7. तमिलनाडु राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, तामिलनाडु।
8. यशवंत राव चव्हाण महाराष्ट्र राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र।
9. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, आन्ध्रप्रदेश।
10. डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, गुजरात।

11. ग्लोबल मुक्त विश्वविद्यालय, नागालैण्ड।
12. नेताजी सुभाष मुक्त विश्वविद्यालय, पश्चिमी बंगाल

अभ्यास प्रश्न

3. दूरवर्ती शिक्षा के आधारभूत तत्व कौन-कौन से हैं ?

4. अध्ययन समूहों की प्रकृति कैसी होती है ?

6.6 दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताएँ

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई दूरवर्ती शिक्षा की परिभाषा का विश्लेषण करने पर दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। दूरवर्ती शिक्षा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं -

- 1- दूरवर्ती शिक्षा की प्रमुख विशेषता शिक्षक तथा छात्र के मध्य की दूरी है। यह विशेषता इसे शिक्षण की आमने-सामने की परम्परागत तथा मौखिक शब्द संचार प्रक्रिया से अलग करती है।
- 2- दूरवर्ती शिक्षा एक सुनियोजित एवं सुसंगठित शैक्षिक व्यवस्था है, जिसमें अधिगम सामग्री जिसे स्व अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में जाना जाता है, के नियोजन एवं निर्माण पर शैक्षिक संगठन का व्यापक प्रभाव होता है। फलस्वरूप सामग्री की गुणवत्ता उच्च स्तर की होती है।
- 3- दूरवर्ती शिक्षा, शिक्षार्थी केन्द्रित शैक्षिक प्रक्रिया है। जिसमें शिक्षार्थी की आवश्यकता तथा सुविधाओं का ध्यान रखा जाता है। शिक्षार्थी को अपनी सुविधा, गति तथा स्थान पर सीखने के अवसर प्रदान किये जाते हैं।
- 4- दूरवर्ती शिक्षा में शिक्षार्थी को अपनी पसन्द के विषय चुनने की स्वतंत्रता रहती है।
- 5- दूरवर्ती शिक्षा में विभिन्न तकनीकी माध्यमों यथा रेडियो, टेलीविजन, मुद्रित सामग्री, टेलीफोन, कम्प्यूटर आदि का प्रयोग शिक्षार्थियों तक अधिगम सामग्री पहुँचाने तथा छात्र सहायक सेवाओं के एक प्रबल माध्यम के रूप में किया जाता है।
- 6- दूरवर्ती शिक्षा उन व्यक्तियों के लिए एक वरदान है जो किन्ही कारणोंवश परम्परागत शैक्षिक माध्यमों से शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं अथवा ऐसे व्यक्ति जो अपने पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति के लिए किन्ही व्यवसायों से जुड़ गये हैं परन्तु अपने व्यवसायिक विकास अथवा योग्यता विकास के लिए शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं।
- 7- दूरवर्ती शिक्षा की एक विशेषता इसके लचीलेपन में निहित है। इसमें शिक्षार्थी को प्रवेश लेने, अध्ययन करने तथा अपने पाठ्यक्रम को पूरा करने के कठोर नियमों में बांधकर नहीं रखा जाता है। दूरवर्ती शिक्षा में प्रवेश लेने के लिये सामान्यतया कोई आयु सीमा नहीं होती (न्यूनतम आयु सीमा को छोड़कर), शिक्षार्थी अपनी सुविधानुसार पाठ्यक्रम पूरा कर सकता है, पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए शिक्षार्थी को 1 वर्ष में दो बार परीक्षा में बैठने का अवसर दिया जाता है।
- 8- दूरवर्ती शिक्षा उस विशिष्ट जनसंख्या वर्ग को भी शैक्षिक सुविधा प्रदान करती है जो कि भौगोलिक कारणों, अपर्याप्त शैक्षिक सुविधाओं एवं व्यावसायिक शर्तों के कारण पहले शिक्षा से वंचित रह गये हैं।
- 9- दूरवर्ती शिक्षा परम्परागत शिक्षण में लगने वाली प्रति विद्यार्थी धनराशि तथा विद्यार्थी की स्वयं अपने अध्ययन पर लगने वाली धनराशि में कमी लाती है। अतएव कहा जा सकता है कि दूरवर्ती शिक्षा द्वारा कम व्यय में शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है।

10- दूरवर्ती शिक्षा में द्विमागी सम्प्रेषण की व्यवस्था रहती है। इसके अन्तर्गत शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य की दूरी को सम्प्रेषण के विभिन्न परम्परागत तथा आधुनिक माध्यमों के उपयोग से कम किया जाता है। शिक्षार्थी विभिन्न माध्यमों का उपयोग कर अपने प्रश्न तथा जिज्ञासाएं, पाठ्यक्रम समन्वयक एवं अकादमिक परामर्शदाताओं के सम्मुख रखते हैं तथा उचित पृष्ठपोषण प्राप्त करते हैं।

11- दूरवर्ती शिक्षा, एक प्रकार का विशिष्ट औद्योगिक विकास है जिसके फलस्वरूप शिक्षा की प्रक्रिया में खुलापन आया है तथा शिक्षा विशिष्ट समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सफल हुई है।

12- दूरवर्ती शिक्षा का सम्प्रत्यय लोकतांत्रिक विचार से युक्त होता है अर्थात् परम्परागत शिक्षा में अन्तर्गत शिक्षक कक्षा कक्ष में जो भी मौखिक रूप से कहता है, वह बहुत कुछ उसके व्यक्तिगत विचार होते हैं तथा केवल छात्रों तक ही सीमित रहते हैं। उसके विचारों की समीक्षा तथा संशोधन का प्रावधान नहीं होता है। दूसरी तरफ दूरवर्ती शिक्षा में स्वअनुदेशनात्मक सामग्री श्रव्य-दृश्य सहायक सामग्री एवं छात्र सहायक सेवाओं के माध्यम से जो भी सूचनाएं सम्प्रेषित की जाती हैं उनकी प्रकृति खुली होती है, जिसकी समीक्षा तथा समालोचना की जा सकती है एवं आवश्यकता पड़ने पर उसमें संशोधन भी किया जा सकता है कि दूरवर्ती शिक्षा, शैक्षिक प्रक्रिया के लोकतांत्रिक में काफी हद तक सफल रही है।

अभ्यास प्रश्न

5. दूरवर्ती शिक्षा की कोई एक प्रमुख विशेषता लिखिए ?

6. दूरवर्ती शिक्षा, किस प्रकार से शिक्षा के लोकतंत्रीकरण में सहायक सिद्ध हुई है?

6.7 दूरवर्ती शिक्षा की आवश्यकता

किसी राष्ट्र की प्रगति एवं विकास उसकी शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षित व्यक्तियों पर निर्भर करता है। वर्तमान में शिक्षा की अवधारणा बहुत व्यापक हो गई है, अब यह व्यक्ति एवं समाज के विकास की

एक अनिवार्यता बन गई है। इसी कारण से अब शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अनुरूप बनाने पर बल दिया जा रहा है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बढ़ती हुई आवश्यकता के फलस्वरूप वर्तमान में विभिन्न नवाचारी माध्यमों से शिक्षा प्रदान करने एवं प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। दूरवर्ती शिक्षा एक ऐसा ही नवाचारी एवं बहुउपयोगी प्रकार है जो वर्तमान युग की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सशक्त माध्यम बन गया है। दूरवर्ती शिक्षा को आवश्यकता को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है:-

- 1- दूरवर्ती शिक्षा ज्ञान व अधिगम के विभिन्न उपायों को बढ़ाती है।
- 2- दूरवर्ती शिक्षा, ऐसे व्यक्तियों को अध्ययन का द्वितीय अवसर प्रदान करती है जो किन्हीं कारणों से प्रथम अवसर में शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये हैं।
- 3- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के सशक्त माध्यम के रूप में दूरवर्ती शिक्षा की आवश्यकता स्पष्ट होती है।
- 4- उच्च शिक्षा संस्थानों पर बढ़ते हुए छात्रों को दबाव को कम करने के लिए तथा कम खर्च व साधनों में सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करने के लिए दूरवर्ती शिक्षा की आवश्यकता है।
- 5- शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए, उनको अपनी गति तथा क्षमता के अनुसार शैक्षिक अवसर प्रदान करने के लिए दूरवर्ती शिक्षा आवश्यक है।
- 6- प्रौढ़ व्यक्तियों, सेवारत व्यक्तियों, समाज सेवियों, महिलाओं तथा देश के दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की शैक्षिक आवश्यकता की पूर्ति दूरवर्ती शिक्षा करती है।

अभ्यास प्रश्न

7. दूरवर्ती शिक्षा की कोई दो आवश्यकताएं बताइये ?

6.8 सारांश

इस इकाई में हमने दूरवर्ती शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता, विभिन्न तत्व तथा विशेषताओं का अध्ययन किया है। आशा है आप दूरवर्ती शिक्षा से भली भांति परिचित हो गये होंगे। इस शिक्षा

व्यवस्था में विद्यालय अथवा किसी औपचारिक शिक्षा संस्थानों में कक्षा कक्षाओं में आमने सामने बैठकर शिक्षा देने के स्थान पर मुद्रित सामग्रियों के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। इस व्यवस्था में अध्यापक की भूमिका औपचारिक शिक्षा संस्थानों अथवा विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों से भिन्न होती है। इस शिक्षा प्रणाली में शिक्षा भाषण अथवा व्याख्यान के माध्यम से नहीं दी जाती है बल्कि शिक्षकों द्वारा विशेष प्रकार के संवाद की नितांत अनौपचारिक भाषा में तैयार की गई मुद्रित सामग्रियों के द्वारा शिक्षार्थी को स्वतः अध्ययन में सहायता प्रदान की जाती है।

6.9 शब्दावली

दूरवर्ती शिक्षा : दूरवर्ती शिक्षा स्व अध्ययन का एक विधिवत् संगठित रूप है जिसमें छात्र परामर्श, अधिगम सामग्री का प्रस्तुतीकरण तथा छात्रों की सफलता का सुनिश्चितीकरण एवं निरीक्षण अध्यापकों के एक समूह द्वारा किया जाता है तथा जिसमें प्रत्येक अध्यापक का अपना उत्तरदायित्व होता है।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. डोहमें न
2. होमबर्ग
3. मुद्रित सामग्री, श्रुत्य - दृश्य सामग्री तथा रेडियो एवं दूरदर्शन
4. अध्ययन समूह, शिक्षार्थियों के अभिप्रेरणा स्रोत के रूप में कार्य करते हैं तथा समस्याओं के वास्तविक समाधान में सहायता करते हैं।
5. दूरवर्ती शिक्षा, शिक्षार्थी केन्द्रित शैक्षिक प्रक्रिया है। जिसमें शिक्षार्थी की आवश्यकता तथा सुविधाओं का ध्यान रखा जाता है। शिक्षार्थी को अपनी सुविधा, गति तथा स्थान पर सीखने के अवसर प्रदान किये जाते हैं।
6. दूरवर्ती शिक्षा में स्वअनुदेशनात्मक सामग्री श्रुत्य-दृश्य सहायक सामग्री एवं छात्र सहायक सेवाओं के माध्यम से जो भी सूचनाएं सम्प्रेषित की जाती हैं उनकी प्रकृति खुली होती हैं, जिसकी समीक्षा तथा समालोचना की जा सकती है एवं आवश्यकता पड़ने पर उसमें संशोधन भी किया जा सकता है।
7. दूरवर्ती शिक्षा, ऐसे व्यक्तियों को अध्ययन का द्वितीय अवसर प्रदान करती है जो किन्हीं कारणों से प्रथम अवसर में शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये हैं तथा उच्च शिक्षा संस्थानों पर बढ़ते हुए छात्रों को दबाव को कम करने के लिए तथा कम खर्च व साधनों में सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करने के लिए दूरवर्ती शिक्षा की आवश्यकता है।

6.11संदर्भ ग्रंथ सूची व सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. डॉ. सीयाराम यादव (2008): दूरवर्ती शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन,आगरा -2
2. आर.ए. शर्मा (1995): दूरवर्ती शिक्षा, आर.लाल बुकडिपो, में रठ
3. डॉ. कल्पलता पान्डेय (1991): शिक्षा के नये आयाम दूरवर्ती शिक्षा, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी
4. दूरवर्ती शिक्षा (2007): ई. एस. 364 खण्ड एक (दूरवर्ती शिक्षा) तथा खण्ड तीन (दूरवर्ती अधिगम) इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की बी.एड स्व अध्ययन सामग्री

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. दूरवर्ती शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसे परिभाषित कीजिए ।
2. दूरवर्ती शिक्षा के विभिन्न तत्वों की व्याख्या कीजिए ।
3. दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए ।

इकाई 7: दूरवर्ती शिक्षार्थी: प्रकृति, विशेषतायें तथा प्रकार (Distance Learners: Nature and Characteristics and Types of Learners)

इकाई की रूपरेखा

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 दूरवर्ती शिक्षार्थी की प्रकृति
- 7.4 दूरवर्ती शिक्षार्थी की विशेषताएँ
- 7.5 दूरवर्ती शिक्षार्थियों के प्रकार
- 7.6 सारांश
- 7.7 शब्दावली
- 7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इकाई 6 में हमने दूरवर्ती शिक्षा तथा इसके विभिन्न तत्वों का अध्ययन किया है। आपको स्पष्ट हो गया होगा कि दूरवर्ती शिक्षा एक सुनियोजित एवं सुसंगठित शैक्षिक व्यवस्था है जिसमें परम्परागत शैक्षिक व्यवस्था के विपरीत शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य दूरी विद्यमान रहती है। जिसमें शिक्षार्थी स्वअनुदेशनात्मक अधिगम सामग्री के माध्यम से अपनी आवश्यकता, सुविधा एवं गति से स्वअध्ययन करता है। शिक्षार्थी के इस स्वअध्ययन में विभिन्न तकनीकी माध्यमों जैसे रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन एवं कम्प्यूटर आदि का प्रयोग सहायता प्रदान करने के लिए किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में दूरवर्ती शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग शिक्षार्थी का अध्ययन करेंगे तथा दूरवर्ती शिक्षार्थी की प्रकृति, विशेषताओं तथा प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि -

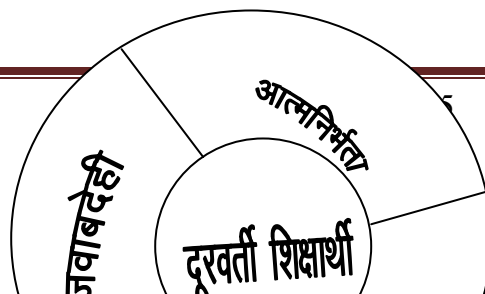
- दूरवर्ती शिक्षार्थी की प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे।

- दूरवर्ती शिक्षार्थी की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के दूरवर्ती शिक्षार्थियों में विभेद कर सकेंगे।

7.3 दूरवर्ती शिक्षार्थी की प्रकृति

दूरवर्ती शिक्षार्थी की प्रकृति को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:

- 1- दूरवर्ती शिक्षार्थी अपनी शैक्षिक क्रियाओं को प्रारम्भ करने, उन्हें गति देने तथा समाप्त करने के लिए स्वतंत्र होता है तथा वह अपनी प्रगति एवं असफलता के लिए स्वयं उत्तरदायी भी होता है।
- 2- दूरवर्ती शिक्षार्थी, अपने भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परिवेश में रहते हुए सीखने के वास्तविक अवसर प्राप्त करता है।
- 3- दूरवर्ती शिक्षार्थी को परम्परागत शैक्षिक परिस्थितियों की अपेक्षा अधिक उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही का निर्वाहन करना होता है।
- 4- दूरवर्ती शिक्षार्थी को अपनी पाठ्यवस्तु एवं अध्ययन विधियों के चयन में पर्याप्त सुविधा प्राप्त होती है।
- 5- दूरवर्ती शिक्षार्थी की उपलब्धि का मूल्यांकन स्वतंत्र रूप से किया जाता है। मूल्यांकन करते समय दूरवर्ती शिक्षार्थी द्वारा पाठ्यवस्तु को पढ़ने में अपनाई गई विधियों, अध्ययन गति की दर अर्थात् अध्ययन करने में लिए गए समय एवं स्थान आदि का ध्यान नहीं रखा जाता है।
- 6- दूरवर्ती शिक्षार्थी को प्रभावशाली अधिगम की परिस्थिति प्रदान करने के लिए निम्नलिखित व्यवस्थाएं दूरवर्ती शिक्षण प्रणाली में होती हैं:-
 - a. पाठ्यवस्तु संगठन पूर्व अनुभवों के आधार पर किया जाता है।
 - b. पाठ्यवस्तु के निर्माण के समय छात्रों के भावनात्मक पक्ष को विशेष महत्व दिया जाता है।
 - c. मुद्रित पाठ्यसामग्री में चित्रों, मानचित्रों, चार्ट, ग्राफ आदि का प्रयोग अधिगम को प्रभावशाली बनाने में सहायता प्रदान करता है।
 - d. शिक्षार्थी को अपनी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अनुसार सम्प्रेषण माध्यमों के चयन की स्वतंत्रता रहती है।
 - e. दूरवर्ती शिक्षार्थी की अध्ययन प्रक्रिया सामाजिक नियंत्रण एवं पाठ्यक्रम की प्रक्रियाओं की अपेक्षा व्यक्तिगत अध्ययन की स्वतंत्रता तथा सहायक व्यवस्था प्रणाली पर अधिक निर्भर होती है।



अभ्यास प्रश्न:

1.
 - (i) दूरवर्ती शिक्षार्थी सम्प्रेषण माध्यमों के चयन करने में ----- रहता है।
 - (ii) दूरवर्ती शिक्षार्थी अपने अधिगम करने का समय का निर्धारण ---- करता है।
 - (iii) दूरवर्ती अध्ययन में अधिगमकर्ता अधिगम के लिए अधिगम विधि का चयन ----- करता है।

7.4 दूरवर्ती शिक्षार्थी की विशेषताएँ

दूरवर्ती शिक्षार्थी स्वयं के निर्णय के आधार यह जानता है कि उसने यह पाठ्यक्रम क्यों चुना है? उसके द्वारा पाठ्यक्रम के चयन में कई कारण सम्मिलित होते हैं जैसे कि उसके परिवार की आकांक्षाएं तथा अपेक्षाएं। इसके अतिरिक्त दूरवर्ती शिक्षार्थी की अन्य कई विशेषताएं होती हैं जिनका वर्णन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

आयु: दूर अध्येयता की महत्वपूर्ण विशेषता उसका प्रौढ़ होना है। प्रौढ़ की सीमाएं 18 वर्ष से 80 वर्ष तक या इससे भी अधिक हो सकती है। 30 से 40 वर्ष की आयु के प्रौढ़ों की ग्रहणशीलता बच्चों की अपेक्षा अधिक रहती है। वे भावनात्मक रूप से अधिक समयावधि की परीक्षा (3 घण्टे) में उत्तर लिखने में अपने आपको असहज महसूस करते हैं। अतः दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

लिंग: दूरवर्ती शिक्षा में दूरवर्ती शिक्षार्थी को समझने के लिए लिंग दूसरा प्रमुख कारक है। आमतौर पर आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक रूप से पिछड़ी महिलाएं किसी पाठ्यक्रम को समझने में असुविधा

महसूस करती हैं क्योंकि प्रायः इस प्रकार की महिलाओं को अनेक असुविधाओं तथा भेदभाव से ग्रस्त रहता पड़ता है। यदि पाठ्यक्रम में सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक पूर्वाग्रहों से बचना चाहिए जिससे उनमें अविधायक अभिवृत्ति (नकारात्मक दृष्टिकोण) का विकास न हो पाये।

सामाजिक स्तर: शिक्षा के सार्वजनिकरण, लोकतांत्रिकरण, वैज्ञानिक अभिवृत्ति के निर्माण, पंथ निरपेक्षता, समता आदि के विकास में जातियता तथा सामाजिक स्तरीकरण ने बहुत अवरोध पैदा किए हैं। साथ ही अपने व्यवसाय के उन्नयन में जाति प्रथा एक अवरोध का कार्य भी करती है। सामाजिक विभेद समाप्त करने के लिए हमें प्रौढ़ शिक्षा के पाठ्यक्रमों में सामाजिक सुविधाओं से वंचित वर्गों जैसे कि - महिलाओं, पिछड़ी जातियों, अनुसूचित तथा जनजातियों के सदस्यों, धार्मिक अल्प संख्यकों, अपंगों को शैक्षिक अभिरूचियों तथा अधिगम क्षमताओं के विकास का कार्य भी करना चाहिए।

आर्थिक स्तर: आमतौर पर प्रबंधन पाठ्यक्रमों, कम्प्यूटर विज्ञान जैसे पाठ्यक्रमों में अधिक फीस की माँग की जाती है। जो कि निर्धन अधिगमकर्ताओं की सामर्थ्य से बाहर होते हैं। अतः दूरवर्ती शिक्षा के माध्यम से इस प्रकार के व्यवसायों के पाठ्यक्रमों में दूरवर्ती शिक्षार्थियों को आवश्यक रूप से छात्रवृत्ति का प्रबंध किया जाना आवश्यक है।

भौगोलिक अवस्थिति: भौगोलिक अवस्थिति भी दूरवर्ती शिक्षार्थी के शिक्षण में बाधक है। दूरस्थ स्थानों जहां यातायात के साधन समयानुकूल नहीं हैं पहाड़ी क्षेत्रों, रेगिस्तानों, वनवासियों के लिए दूरशिक्षा इतनी सरल और सस्ती नहीं होती जितनी कि शहरी क्षेत्रों में रहने वालों के लिए होती है। क्योंकि जब वे अध्ययन केन्द्र की सहायता प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें यात्रा करने में धन तथा समय आदि में कठिनाई आती है अथवा उन्हें अस्थायी रूप से अध्ययन केन्द्रों पर (जो कि प्रायः शहरी क्षेत्रों में होते हैं) रहना पड़ता है। आज भी गाँवों में डाक व्यवस्था की कमी है। दूरदर्शन तथा टेलीफोन यद्यपि गाँवों तक पहुँच गए हैं परन्तु वहां पर विद्युत का संचार प्रायः नहीं होता जो कि नियत समय पर आने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों को देखने में सहायक हो सके। वनवासियों पर्वतवासियों के लिए तो यह ओर भी अधिक समस्या पैदा कर देते हैं। अतः दूर शिक्षा के शिक्षार्थियों के लिये विशिष्ट प्रबंध किये जाने आवश्यक हैं।

भाषा: भारत में उच्च स्तर के सभी पाठ्यक्रम अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पढ़ाये जाते हैं। इन पाठ्यक्रमों में उपलब्धि प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी में कुशल होना आवश्यक हो जाता है। परन्तु अंग्रेजी अधिकांश भारतीयों की मातृभाषा नहीं है। जहां तक अध्ययन सामग्रियों का प्रश्न है वह अधिकांश रूप से अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराये जाते हैं। या फिर कुछ पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी से अनुवाद की गई पाठ्यक्रम सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। अनुवाद आमतौर पर स्तरीय नहीं हो

पाता। जिससे दूरवर्ती शिक्षार्थी को जूझना पड़ता है। अतः दूरवर्ती पाठ्यवस्तु मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है।

गुरु शिष्य परम्परा: भारत में गुरु शिष्य परम्परा आज भी अपना विशेष महत्व रखती है। आज भी नृत्य, संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला आदि के ज्ञानार्जन में गुरु शिष्य परम्परा अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। प्रायोगिक विषयों के शिक्षण में यह समस्या और अधिक प्रभावी तब हो जाती है जब बिना पूर्व परीक्षण के प्रौद्योगिक आधारित पाठ्यवस्तु प्रस्तुत कर दी जाती है। इस प्रकार के विषयों के लिये पाठ्यवस्तु तैयार करने के लिए वैज्ञानिक विधियों पर आधारित पाठ्यक्रम सामग्री प्रस्तुत की जाये।

अपंग शिक्षार्थी: अपंगता अभिशाप नहीं बल्कि एक असुविधा है। हमारे देश में यद्यपि इमू द्वारा अध्ययन शुल्क में छूट, विशेष अध्ययन केन्द्र, सक्षमता प्रदाता प्रौद्योगिकी, यथोचित माध्यमों द्वारा पाठन सामग्री और आवश्यकता आधारित पाठ्यक्रमों एवं कार्यक्रमों द्वारा अपंग शिक्षार्थियों को आवश्यकता पूर्ति हेतु विशेष प्रयास किये जा रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न:

2. दूरवर्ती शिक्षार्थियों की विशेषताओं को बिन्दुओं के रूप में लिखें।

7.5 दूरवर्ती शिक्षार्थियों के प्रकार:

दूरवर्ती शिक्षार्थियों को कई प्रकारों से विभाजित किया जा सकता है, प्रमुख प्रकार इस प्रकार है।

1. आयु के आधार पर - आयु के आधार पर दूरवर्ती छात्र युवा प्रौढ़ और वृद्ध हो सकते हैं। इसमें आयु की कोई सीमा नहीं है। 4 वर्ष तक की आयु के बच्चे सर्वशिक्षा अभियान के अंतरगत आते हैं। इसके बाद माध्यमिक विद्यालयों के प्रमाण पत्र वाले छात्र, इसके पश्चात ग्रेजुएट तथा पोस्ट ग्रेजुएट के छात्रों की आयु प्रायः अधिक रही है मुक्त विद्यालयी शिक्षा के कोई आयु सीमा नहीं होती है परंतु माध्यमिक पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिये 15 वर्ष की आयु होनी चाहिये। कई बार 80 वर्ष से अधिक आयु के शिक्षार्थी भी दूरवर्ती शिक्षा में आते हैं।

2. पाठ्यक्रम के आधार पर - दूरवर्ती शिक्षा के शिक्षार्थी शैक्षिक पाठ्यक्रम तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रम के होते हैं। शैक्षिक पाठ्यक्रमों में माध्यमिक शिक्षा प्रमाण पत्र से लेकर स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों होते हैं। अनुसंधान के लिये पी.एच.डी और डी.लिट के शिक्षार्थी भी होते हैं। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की एक लंबी सूची होती है, जिसमें अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार छात्र पाठ्यक्रम का चयन करते हैं।

3. समयावधि के अनुसार - मुक्त विधालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम, एक वर्षीय पैकेज पाठ्यक्रम, छैमाही प्रमाण पत्र होते हैं। जबकि मुक्त विश्वविद्यालयी शिक्षा में पाठ्यक्रमों की समयावधि 4 वर्ष, 3 वर्ष, 2 वर्ष 1 वर्ष 9 मास, 6 मास के पाठ्यक्रम होते हैं जो कि शिक्षार्थी के स्तर तथा पाठ्यक्रम के प्रकार पर आधारित होते हैं।

4. शैक्षिक स्तर के आधार - शिक्षार्थियों की स्थिति अलग - अलग होती है। इसमें व्यावसायिक उन्नयन के लिये पाठ्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। उदाहरण के लिये जो अध्येयता पहले से ही उच्च प्रोग्राम या पाठ्यक्रम सीख चुके हैं। उनकी अधिगम सामग्री उच्च स्तर की होनी चाहिये। लेकिन कम शिक्षित अध्येयताओं की सामग्री का स्तर निम्न होना आवश्यक है।

5. भौगोलिक अवस्थिति के आधार पर - भारत का भौगोलिक क्षेत्र विशाल है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी परम्परायें, उपज, खाने - पीने की व्यवस्थायें अलग - अलग होती हैं। उनके अपनी अपनी पसंदगियों तथा नापसंदिया अलग अलग रहती हैं। उदाहरण के लिये खाद्य परिरक्षण (फूड प्रिजरवेशन) के पाठ्यक्रम में विभिन्न खाद्य सामग्रियों के परिरक्षण में उनके परिवेश की खाद्य सामग्रियों को स्थान देना आवश्यक होता है अन्यथा होने पर उन्हें उतना लाभ नहीं हो पाता। इसी प्रकार कृषि शिक्षा में उनके स्थानीय उपज, कृषि उपकरण, वर्षण की स्थिति, सिंचाई के साधन, तापमान के आधार पर कृषि करने के व्यावहारिक ज्ञान को महत्व देना आवश्यक हो जाता है। भौगोलिक अवस्थिति के कारण फसलों की बुआई का समय, कर्षण क्रियायें तथा फसलों का चयन के आधार पर अध्येयताओं को अधिगम सामग्री प्रस्तुत किया जाना आवश्यक हो जाता है। कई बार ऐसा न होने पर प्रस्तुत सामग्री अध्येयता के लिये उपयोगी होने के स्थान पर खतरनाक सिद्ध हो सकती है। भौगोलिक अवस्थिति का प्रयुक्त भाषा से भी गहरा संबंध है। क्योंकि भाषा भौगोलिक आधार पर परिवर्तित होती रहती है तथा प्रत्येक भाषा में अपनी आंचलिक बोलियां होती हैं। क्योंकि अध्येयता अपनी भाषा में सरलता पूर्वक सीखता है तथा आंचलिक बोली में और अधिक सरलतापूर्वक सीख जाता है।

6. लिंग के आधार पर - अध्येयता की अपनी आवश्यकतायें अलग - अलग होती हैं उनकी रूचियां तथा वरीयता क्रम भी अलग - अलग होते हैं। शिशुपालन, मातृ तथा शिशु स्वास्थ्य ग्रामीण महिला स्वास्थ्य रक्षक पाठ्यक्रम कढ़ाई, सिंलाई, फैशन प्रौद्योगिकी की पाठ्यक्रमों में महिला अध्येयता आसानी से सीख जाती है जबकि पुरुष उतने ग्रहणशील नहीं हो पाते। लिंग में भी पारस्परिक विभेद

है। शहर की उच्च स्थिति की महिलाओं को जो पाठ्यक्रम आयोजित किये जाते हैं वे पाठ्यक्रम ग्रामीण, शहरी की झोपड पट्टियों, आदिवासी क्षेत्र की महिलाओं के लिये उपयुक्त नहीं हो सकते। उपेक्षित वर्गों की महिलायें अनेक असुविधाओं और भेदभाव से ग्रस्त रहती हैं। इस प्रकार की महिलायें आमतौर पर सांस्कृतिक एवं धार्मिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त रहती हैं, जिससे वे अपने प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का निर्माण कर लेती हैं। अंधविश्वास जिनकी संख्या सैकड़ों में होती है, उन्हें मिटाने के लिये वैज्ञानिक तथा प्रभावी सरल भाषा और विधियों के द्वारा उचित प्रयासों की आवश्यकता रहती है।

7. आर्थिक आधार पर - आर्थिक स्तर का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षार्थी अपनी आर्थिक स्थिति के आधार पर पाठ्यक्रम का चयन करते हैं। निम्न आर्थिक स्तर के शिक्षार्थियों को दूरवर्ती पाठ्यक्रमों में पूर्ण अथवा अर्द्ध शुल्क मुक्ति का प्रावधान किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

3. दूरवर्ती अध्येता के प्रकार लिखिये।

7.6 सारांश

इस इकाई में हमने दूरवर्ती शिक्षार्थी की प्रकृति को समझा, उनकी विशेषताओं को जाना तथा विभिन्न अध्येताओं के प्रकारों में विभेद कर सकने की क्षमता का विकास किया। यह ज्ञान हमें दूरवर्ती अध्येताओं को समझने में तथा उनके लिये पाठ्यवस्तु का निर्माण करने में लाभ पहुंचायेगा।

7.7 शब्दावली

दूरवर्ती शिक्षार्थी: मुक्त एवं दूरस्थ प्रणाली के अन्तर्गत नामांकित विद्यार्थी

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.

(i) स्वतंत्र

(ii) स्वयं

(iii) स्वयं

3. अध्येयता के प्रकार

- आयु के आधार पर
- पाठ्यक्रम के आधार पर
- पाठ्यक्रम की समयावधि के आधार पर
- शैक्षिक योग्यताओं के आधार पर
- भौगोलिक स्थिति के आधार पर
- लिंग के आधार पर

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. डॉ. सीयाराम यादव (2008): दूरवर्ती शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा -2
2. आर.ए. शर्मा (1995): दूरवर्ती शिक्षा, आर.लाल बुकडिपो, में रठ
3. डॉ. कल्पलता पान्डेय (1991): शिक्षा के नये आयाम दूरवर्ती शिक्षा, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी
4. दूरवर्ती शिक्षा (2007): ई. एस. 364 खण्ड एक (दूरवर्ती शिक्षा) तथा खण्ड तीन (दूरवर्ती अधिगम) इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की बी.एड स्व अध्ययन सामग्री

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. दूरवर्ती अध्येयताओं की प्रकृति की व्याख्या करें।
2. दूरवर्ती अध्येयताओं की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
3. दूरवर्ती अध्येयताओं के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

**इकाई 08: दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री- अर्थ, प्रकार व महत्त्व
(Study Materials in Distance Education- Meaning, Types, and
Their Importance)**

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 अध्ययन सामग्री का अर्थ

-
- 8.4 पाठ सामग्री का नियोजन एवं विकास
 - 8.5 पाठ सामग्री का सम्पादन
 - 8.6 सम्पादन की प्रक्रिया
 - 8.7 नवीन संस्था/ नवीन पाठ्यक्रम को प्रारम्भ करने हेतु सम्पादक के कार्य
 - 8.8 दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री का महत्व
 - 8.9 दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री की सामाएँ
 - 8.10 सारांश
 - 8.11 शब्दावली
 - 8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 8.13 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
 - 8.14 निबंधात्मक प्रश्न
-

8.1 प्रस्तावना:

दूरस्थ शिक्षा, शिक्षा का एक व्यापक एवं सघन रूप है, जिसकी सफलता शिक्षण सामग्री के गुणवत्ता पर आधारित होती है। दूरस्थ शिक्षा के अध्ययन सामग्री को व्यापक रूप से स्वअनुदेशन सामग्री (Self Instructional Material, SIM) **एस0 आई0 एम0** के नाम से पुकारा जाता है। स्वअनुदेशन सामग्री का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी द्वारा स्वतंत्र अधिगम को अभिप्रेरित करना तथा सुगम बनाना है। इस प्रकार दूरशिक्षा में स्वअनुदेशन सामग्री की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है, हम इस इकाई में आप शिक्षण सामग्री का अर्थ, प्रकार तथा योजना का प्रभावशाली अध्ययन कर सकेंगे साथ ही शिक्षण प्रक्रिया में स्वअनुदेशन सामग्री के महत्व की समीक्षा भी कर सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- अध्ययन सामग्री का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- अध्ययन सामग्री के उद्देश्यों से परिचित हो सकेंगे।
- अध्ययन सामग्री के प्रकारों का विवेचन कर सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री की सीमाओं का उल्लेख कर सकेंगे।

8.3 अध्ययन सामग्री का अर्थ:

अध्ययन सामग्री पाठ्यक्रम का घटक होता है जो छात्रों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सहयोगी आधार के रूप में उपयोगी होता है। दूरशिक्षा में अध्ययन सामग्रियाँ पाठ्यपुस्तक अथवा विषय पत्रिकाओं से भिन्न होती हैं। प्रभावी स्वअध्ययन सामग्रियाँ शिक्षार्थी में अधिगम जागृत रखती है तथा अभिरूचि बनाये रखती है। किसी पुस्तक के विपरीत स्वअध्ययन सामग्री का उद्देश्य विवेकपूर्ण प्रस्तुतीकरण नहीं होता इस प्रकार स्वअध्ययन सामग्री पहचाने गये लक्ष्य, वर्गों को ज्ञान, अभिवृत्तियों के कौशलों के अर्जन के योग्य बनाने के प्रयोजन से शिक्षण प्रदान करने के लिए विशेष रूप से अभिकल्पित की जाती है। अतः अध्ययन सामग्री इस प्रकार अभिकल्पित की जाती है कि उसी में एक प्रभावी अध्यापक के प्रकार्यों का निर्माण हो जाए।

8.3.1 अनुदेशनात्मक अध्ययन सामग्री:

अनुदेशनात्मक सामग्री से अभिप्राय उस विधि व विधि में प्रयुक्त विभिन्न साधनों से होता है जिनकी सहायता से विषय सामग्री को शिक्षार्थी तक पहुँचाया जाता है। दूरवर्ती शिक्षा में शिक्षक व शिक्षार्थी आमने सामने नहीं होते तथा प्रत्यक्ष शिक्षण संभव नहीं होता है अतः इसमें विभिन्न वैकल्पिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिन्हें अनुदेशनात्मक माध्यम कहते हैं। दूरवर्ती शिक्षा में शिक्षण का प्रमुख साधन स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री होती है। यह शिक्षण दूसरे प्रकार के औपचारिक शिक्षण से भिन्न होता है। स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री का लेखन भी अध्ययन लेखन तथा पत्र पत्रिकाओं हेतु लेख लेखन से भिन्न होता है। इस प्रकार की सामग्री का समावेश भी निर्माण में शिक्षार्थी को निरन्तर ध्यान रखना आवश्यक है। अतः स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार की होनी चाहिए-

- आत्म व्याख्यायित,
- आत्म समाहित,
- आत्म निर्देशित,
- आत्म अभिप्ररित, व
- आत्म मूल्यांकन,

इनके अतिरिक्त अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इसकी अन्तर्वस्तु को बार बार दुहराने से शिक्षार्थी को विषय सामग्री को समझने तथा आगे बढ़ने का तरीका स्वयं प्राप्त होते जाना चाहिए।

2. इसमें इस बात के निर्देश दिये होने चाहिए कि शिक्षार्थी को विषय सामग्री को किस प्रकार अध्ययन करना है।
3. इसमें उद्देश्यों का स्पष्टीकरण होना चाहिए अर्थात् शिक्षार्थी को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि सामग्री को अध्ययन करने के पश्चात् वह किन किन कार्यों को करने में सक्षम हो सकेगा।
4. इसकी अन्तर्वस्तु को इस प्रकार से व्याख्यायित एवं व्यवस्थित किया जाना चाहिए जिससे शिक्षार्थी उसे अपने पूर्व ज्ञान से जोड़ सके।
5. इसमें सामग्री के अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों को सम्पादित करने (जैसे इकाई के विभिन्न भागों पर दिया जाने वाला समय, गृहकार्य की तैयारी आदि) के बारे में उपयुक्त निर्देश दिये होने चाहिए।
6. शिक्षार्थी की विषय सामग्री में रूचि विकसित करने तथा उसे बरकरार रखने हेतु विशेष प्रयास के प्रावधान होने चाहिए।
7. सामग्री को पढ़ने के साथ साथ अभ्यास कार्यों एवं सम्बन्धित क्रियाओं के निष्पादन पर भी बल दिया जाना चाहिए।
8. अभ्यास कार्यों की स्वयं जाँच हेतु उत्तर संकेतों का प्रावधान होना चाहिए जिससे शिक्षार्थी को पृष्ठपोषण प्राप्त होता रहे।
9. इकाई के अन्त में सारांश भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे शिक्षार्थी को सामग्री को पुनः स्मरण करने में सहायता मिल सके तथा वह स्वयं भी अध्ययन सामग्री निकाल सके।
10. इकाई के अन्त में अध्ययन से सम्बन्धित अन्य सन्दर्भ सामग्री का भी उल्लेख किया जाना चाहिए जिससे शिक्षार्थी अधिक जानकारी हेतु उनके प्रयोग का प्रयास कर सके।

पाठ्यपुस्तक एवं अनुदेशनात्मक सामग्री में अन्तर:-

सामान्यतः जो शिक्षण सामग्री परमपरागत शिक्षा में प्रयोग की जाती है वे पाठ्यवस्तु कहलाती हैं। पाठ्य वस्तु एवं स्वअनुदेशनात्मक सामग्री में काफी अन्तर पाया जाता है, परन्तु लॉकवुड ने परमपरागत पाठ्यवस्तु एवं स्वअनुदेशनात्मक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा उन्होंने अपने उस अध्ययन में निम्न प्रकार के अन्तर पाये-

पाठ्यवस्तु-	स्वअनुदेशनात्मक सामग्री-
-------------	--------------------------

<p>पूर्व निर्धारित रूचि। अध्यापकों के प्रयोग के लिए लिखी जाती है। पढाई के लिए कोई निश्चित समय नहीं । विस्तृत क्षेत्र के लिए निर्मित की जाती है। लक्ष्य व उद्देश्य बिरले होते हैं। एक मार्ग के द्वारा किया जाता है। विशेषज्ञ के लिए संरचित। अव्यक्तिगत प्रारूप। निष्क्रियता में बल।</p>	<p>अनुक्रमित रूचि। अधिगमकर्ता के लिए लिखा जाता है। अध्ययन के लिए निश्चित समय। व्यक्तिगत शिक्षार्थी हेतु प्रारूप तैयार किया जाता है। लक्ष्य व उद्देश्य पर हमेशा बल दिया जाता है। शिक्षार्थी की आवश्यकता के अनुसार संरचित। व्यक्ति प्रारूप। सक्रिय अनुक्रिया की आवश्यकता।</p>
--	--

स्वअनुदेशनात्मक सामग्री के प्रमुख गुण-

- व्यक्तिगत अधिगम
- स्वगति अध्ययन
- निजी अधिगम
- किसी समय, किसी स्थान तथा किसी संख्या पर उपलब्ध होना।
- प्रमाणीकृत विषय वस्तु।
- विशेषज्ञ विषय वस्तु।
- संरचित शिक्षण।

- सक्रिय अधिगम।
- प्रवाही पृष्ठपोषण।
- सुस्पष्ट उद्देश्य।

8.3.1.2.1 मुद्रित अध्ययन सामग्री:-

मुद्रित अनुदेशनात्मक माध्यम से अभिप्राय उस माध्यम से है जिसमें शिक्षार्थी को अनुदेशन मुद्रित सामग्री से दिया जाता है। दूरस्थ शिक्षण बहु माध्यम वाली प्रक्रिया है, अधिकांश दूर शिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रमुख रूप से मुद्रित सामग्री द्वारा अनुदेशन को ही माध्यम के रूप में अपनाया जाता है इसका प्रमुख कारण यह है कि मानवीय ज्ञान को संरक्षित एवं प्रसारित करने का प्रमुख साधन हस्त लिखित एवं मुद्रित पुस्तकें ही हैं। इसलिए शिक्षण के क्षेत्र में पुस्तकों को अधिक महत्व दिया जाता है।

8.3.1.2.2 अमुद्रित अध्ययन सामग्री:-

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सम्प्रेषण माध्यम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सम्प्रेषण माध्यम से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिनके सहायता से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रूचिकर बनाया जाता है। अमुद्रित अनुदेशनात्मक माध्यम से तात्पर्य इन्हीं सम्प्रेषण माध्यम (दूरदर्शन, रेडियो, कम्प्यूटर, ऑडियो विडियो कैसेट, फिल्म प्रोजेक्टर एवं उपग्रह) से है, जिनकी सहायता से दूरवर्ती शिक्षा को उसके उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

8.4 पाठ सामग्री का नियोजन एवं विकास:

दूरवर्ती शिक्षार्थी की बात अनुदेशनात्मक सामग्री के अध्ययन से स्वतः अधिगम प्राप्त करना होता है। अतः इसके निर्माण में व्यवस्थित नियोजन की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम नियोजन के अनेक उपागम हो सकते हैं। किन्तु दूरवर्ती शिक्षण की सफलता हेतु जिस उपागम को अपनाया जाता है, उसमें निम्नलिखित पदों का अनुसरण किया जाना आवश्यक होता है।

किसी भी संस्थान द्वारा नवीन पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ करने से पूर्व उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर उसका नियोजन करना होता है। इन बिन्दुओं पर पूर्व अभ्यास में हम प्रकाश डाल चुके हैं। इस अध्याय में हमारा उद्देश्य पाठ सामग्री के निर्माण पर विशेष रूप से चर्चा करना है। अतः हम पाठ सामग्री के उत्पादन सम्बन्धी पक्षों तक ही अपने को सीमित रखने का प्रयास करेंगे।

मुक्त विश्वविद्यालयों/पत्राचार संस्थानों द्वारा प्रायः मुद्रित शिक्षण सामग्री का निर्माण एवं उत्पादन किया जाता है। कुछ विश्वविद्यालयों में सामग्री निर्माण एवं उत्पादन ही अपनी स्वयं व्यवस्था होती है।

तथा इन कार्यों के लिए उनका स्टाफ होता है। जबकि कुछ संस्थानों/विश्वविद्यालयों द्वारा अधिकांश कार्य बाहर से करवाये जाते हैं। ये सभी प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं।

पाठ्यक्रम प्रारम्भ के बारे में अन्तिम निर्णय हो जाने के पश्चात् उसके लिए पाठ सामग्री/अन्तर्वस्तु का नियोजन एवं चयन करना होता है। सामान्यतया यह कार्य पाठ्यक्रम सलाहकार समिति द्वारा किया जाता है। इस समिति में शैक्षणिक स्टाफ, लेखक, सम्पादक, विषय विशेषज्ञ, प्रशासक, तकनीकी विशेषज्ञ आदि को सम्मिलित किया जाता है। दूरवर्ती शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास में विभिन्न विकास योजनाओं से सम्बन्धित अभिकरणों, उद्योगों एवं सरकारी मंत्रालयों आदि से भी सहयोग प्राप्त किया जाता है। विभिन्न सर्वक्षणों एवं शोध निष्कर्षों तथा प्रोजेक्ट कार्यों से भी पाठ्यक्रम नियोजन में सहायता प्राप्त की जाती है।

पाठ्यक्रम एवं पाठ सामग्री के निर्धारण के पश्चात् पाठ सामग्री के वास्तविक निर्माण का कार्य प्रारम्भ होता है। इसके अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण कार्य पाठ लेखन का होता है।

8.4.1 पाठ लेखन

पाठ लेखन का कार्य पाठ लेखक का होता है। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है।

1. एक ही लेखक द्वारा, या
2. लेखकों की एक टीम द्वारा।

एक ही लेखक द्वारा लेखन अथवा एकल लेखन

एकल लेखन भी दो प्रकार के लेखकों द्वारा किया जा सकता है। पहला- पूर्णकालिक लेखकों द्वारा तथा दूसरा- अल्पकालिक लेखकों द्वारा। पूर्णकालिक लेखक लेखन कार्य हेतु ही स्थायी, रूप से नियुक्त किये जाते हैं। तथा पूरी तरह से पाठ लेखन के लिए ही समर्पित समझे जाते हैं। इस प्रकार के लेखकों को नियुक्ति करने से लेखन कार्य अबाध गति एवं संस्थान की आवश्यकतानुसार चलता रहता है किन्तु इस प्रकार के लेखकों की सबसे बड़ी कमी यह होती है कि इनसे अपने विषय के अतिरिक्त कोई अन्य लेखन कार्य नहीं कराया जा सकता है। अतः इनके स्थान पर अल्पकालिक लेखकों की नियुक्ति का प्रचलन अधिक उपयोगी माना जाता है।

अल्पकालिक लेखक प्रायः कालेजों / विश्वविद्यालयों के पूर्णकालिक शिक्षक होते हैं वे अपने विषयों से सीधे जुड़े जाते हैं। तथा विषय सामग्री पर उनका स्वामित्व होता है। अतः सामान्य प्रशिक्षण अथवा समुचित निर्देशन के उपरांत वे दूरवर्ती शिक्षा हेतु पाठों को लिखने में पूर्णता सक्षम होते हैं। किन्तु अच्छे शिक्षक प्रायः पाठ लेखन कार्य को स्वीकार करने की इच्छा नहीं रखते हैं।

इसका कारण इस कार्य हेतु बहुत कम पारिश्रमिक दर होती है। अतः अच्छे एवं प्रभावशाली शिक्षकों को पाठ लेखन हेतु आकर्षित करने के लिए इसकी पारिश्रमिक दरों में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए।

3.4.2 टीम द्वारा लेखन

दूरवर्ती शिक्षा में पाठ इकाई यद्यपि एक ही विषय से सम्बन्धित होती है किन्तु एक ही लेखक के स्थान पर यदि उसे उसी विषय के विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा एक साथ मिलकर तैयार किया जाता है तब वह अधिक प्रभावी हो सकती है। इसी दृष्टि से मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा प्रायः पाठ लेखन हेतु एक लेखक मण्डल की नियुक्ति की जाती है। जिसमें विषय विशेषज्ञों के अतिरिक्त मुद्रण एवं सम्पादन से सम्बन्धित विशेषज्ञ भी सम्मिलित किये जाते हैं। इस टीम में निम्नलिखित व्यक्तियों को सम्मिलित किया जा सकता है।

1. संयोजक या अध्यक्ष: संयोजकसामग्री निर्माण के सभी पक्षों के लिए उत्तरदायी होता है।
2. पाठ लेखक: वे विषय विशेषज्ञ होते हैं तथा पाठ सामग्री नियोजन, चयन, लेखन, व्यावहारिक विधियों के प्रावधान, मूल्यांकन सामग्री निमाण आदि के लिए उत्तरदायी होते हैं।
3. सम्प्रेषण माध्यम निर्माता: श्रव्य- दृश्य सामग्री के निर्माण हेतु उत्तरदायी होते हैं।
4. शैक्षिक तकनीकी विशेषज्ञ: स्वतः अनुदेशानात्मक सामग्री को प्रभावी बनाने (जैसे-उद्देश्यों की परिभाषित करने, शिक्षण अधिगम विधियों को चुनने तथा उन्हें सही ढंग से प्रयुक्त करने आदि के लिए उत्तरदायी होते हैं।
5. सम्पादक: लेखकों को अन्तर्वस्तु को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने, उसमें निखार लाने तथा उसकी निरन्तरता एवं तारतम्यता को सुनिश्चित करने में सहायता प्रदान करता है वह सम्पूर्ण सामग्री पर नियंत्रण भी रखता है।
6. ग्राफिक प्रारूप निर्माता: पाठ सामग्री को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने, चित्रों, ग्राफों आंकड़ों को व्यवस्थित एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में लेखकों की सहायता करता है। मुद्रण की टाइप शैली को सुनिश्चित करने में भी मानव प्रमुख भूमिका निभाता है।

8.5 पाठ सामग्री का सम्पादन

पाठ लेखन के पश्चात् उसकी पाण्डूलिपि मुद्रण हेतु भेजी जानी होती है। किन्तु मुद्रण से पूर्व उसे सम्पादित करने की आवश्यकता होती है। सम्पादक को पाठ्यक्रम सामग्री निर्माण के तीन स्तरों पर काय्य करना होता है।

- वह अधिगम उपलब्धियों के सन्दर्भ में पाठ सामग्री की शैक्षिक प्रभावशीलता को सुनिश्चित करता है।
- अन्तर्वस्तु की उपयुक्तता के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सहायकी की सहायता करता है तथा
- भाषा एवं शैली की शुद्धता एवं उपयुक्तता की जाँच करता है।

इस प्रकार एक अच्छा सम्पादक पाठ सामग्री में पर्याप्त सुधार ला सकता है। उसका कार्य शैक्षिक एवं प्रशासनिक दोनों तरह का होता है। दूरवर्ती शिक्षा से सम्बन्धित सम्पादक का कार्य अन्य सम्पादकों (पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि) से भिन्न होता है। क्योंकि यहाँ पर पाठ सामग्री के द्वारा शिक्षार्थी को प्रभावी अधिगम प्रदान करना होता है तथा निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति भी करनी होती है। इन्टरनेशनल एकस्टेंशन कॉलेज मैनुअल में दूरवर्ती शिक्षण सामग्री के सम्पादक के कार्यों की जो अनुसूची प्रस्तुत की गई है, उसके अनुसार सम्पादक के कार्य निम्नलिखित हैं-

- पाठ्यक्रम लेखन हेतु लेखकों की नियुक्ति करना/अल्पकालिक सेवार्यें प्राप्त करना।
- लेखकों को लेखन हेतु तैयार करना।
- लेखकों की सुविधा हेतु पाठ्यक्रम विकास की रूपरेखा तैयार करना।
- इकाई की संरचना के सम्बन्ध में निर्णय लेना।
- लेखक को विषय सामग्री एवं छात्र क्रियाओं के प्रावधान को प्रस्तुत करने हेतु सामान्य निर्देश प्रदान करना।
- दूरवर्ती शिक्षार्थियों को अध्ययन हेतु सुझाव प्रदान करना।
- शिक्षार्थियों के अध्ययन स्तर के सम्बन्ध में निर्णय लेना।
- पाण्डुलिपि की भाषा को ठीक करना।
- मुद्रण से पूर्व सामग्री की विधिवत् जाँच करना (मुख्य रूप से शीर्षकों, उपशीर्षकों, वर्तनी, विराम चिन्हों आदि की जाँच।
- कापी सम्पादन
- मुद्रण एवं उत्पादन
- पाठ्यक्रम रखरखाव एवं पुनरीक्षण
- समन्वय, लेखन एवं उत्पादन
- सम्प्रेषण माध्यम का चयन (विशेष रूप से श्रव्य दृश्य कार्यक्रम हेतु)।

8.6 सम्पादन की प्रक्रिया

सम्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत सामान्यतया निम्नलिखित पदों का अनुसरण किया जाता है।

8.6.1. लिखित सामग्री को व्यवस्थित एवं संशोधित करना

यदि इकाई/पाठ किसी टीम द्वारा लिखा गया होता है तथा उस टीम में सम्पादक भी सम्मिलित होता है तब उस सामग्री का सम्पादन सरल होता है। किन्तु यदि लेखन कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा किया गया होता है। तब सम्पादक को कई प्रकार के दायित्वों को निर्वहन करना होता है। फिर भी दोनों स्थितियों में लिखित सामग्री कच्चे माल की तरह की होती है। इस सामग्री को उसी रूप में दूरवर्ती शिक्षण हेतु प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। इस कच्ची सामग्री को विषय विशेषज्ञों एवं शैक्षिक तकनीकी विशेषज्ञों के द्वारा अथवा उनकी सलाह के अनुसार संशोधित, परिवर्धित एवं व्यवस्थित करना होता है। जिससे वह दूरवर्ती शिक्षार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। इस प्रक्रिया में अन्तर्वस्तु को ब्लाक, इकाइयों, पाठों के रूप में शिक्षार्थी को भेजने हेतु व्यवस्थित भी किया जाता है। किन्तु इस प्रक्रिया से पूर्व सम्पादक को अन्तर्वस्तु, प्रस्तुतीकरण, भाषा शैली आदि की उपयुक्तता को सुनिश्चित करना आवश्यक होता है अतः इस प्रक्रिया में निम्नलिखित बिन्दुओं पर सम्पादक को ध्यान देना होता है।

अन्तर्वस्तु : इसकी उपयुक्तता, कठिनाई, विस्तार, शिक्षण अधिगम प्रभावशीलता आदि के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

पाठ्य वस्तु की संरचना : अन्तर्वस्तु को प्रस्तुत करने के ढंग की जाँच करना अर्थात् इस बात का निर्णय लेना कि क्या पाठ्य पुस्तक स्वतः अनुदेशात्मक सामग्री का यप ले सकी है? इसके लिए सम्पादक को यह देखना होता है कि सामग्री प्रस्तुत करने के साथ साथ पाठ की भूमिका, उसके उद्देश्यों, भागों एवं अनुभागों, अन्तर्वस्तु के अनुक्रम, पृष्ठपोषण आदि की व्यवस्था किनते अच्छे ढंग से की गई है। इसके लिए वह तकनीकी विशेषज्ञों की सहायता भी प्राप्त कर सकता है। पाठ्य पुस्तक की संरचना के प्रमुख बिन्दुओं का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

भूमिका : किसी भी इकाई/पाठ/पुस्तक में भूमिका का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। भूमिका शिक्षार्थी को पाठ अथवा इकाई को पढ़ने के लिए तैयार एवं प्रोत्साहित करने में सहायता करती है। इससे शिक्षार्थी को यह जानने का अवसर मिलता है कि इकाई किस या किन विचार बिन्दुओं से सम्बन्धित है। भूमिका में वर्तमान इकाई से पूर्व एवं बाद की इकाई का सम्बन्ध भी स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इससे शिक्षार्थी को नवीन ज्ञान से अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों को जोड़ने का अवसर प्राप्त होता है।

उद्देश्य एवं प्राप्य उद्देश्य: उद्देश्यों के स्पष्टीकरण अर्थात् उन्हें व्यावहारिक रूप में लिखकर प्रस्तुत करने से शिक्षार्थी को इस बात का पूर्व आभास हो जाता है कि इकाई को पढ़ने के पश्चात् उसकी योग्यता एवं क्षमता में किस प्रकार के और कितने परिवर्तन हो सकेंगे। इससे उसे यह भी पता लग जाता है कि लेखक द्वारा यह सामग्री क्यों प्रस्तुत की गई है। दूरवर्ती शिक्षार्थी के लिए उद्देश्यों का स्पष्टीकरण और भी अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे उसे सामग्री की उपयोगिता के बारे में सही जानकारी मिलती है। जिससे वह उसके अध्ययन के प्रति अभिप्रेरित होता है।

प्रस्तुतीकरण: स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री को प्रभावी बनाने में उसके प्रस्तुत करने के ढंग का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि सामग्री की सरल भाषा, उपयुक्त शीर्षकों, छोटे छोटे पैराग्राफों, छोटे छोटे भागों, पर्याप्त एवं उपयुक्त उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो शिक्षार्थी की उसके अध्ययन में रूचि बनी रहती है तथा वह सामग्री उसे बोझिल नहीं लगती है। अतः सम्पादक का यह भी दायित्व होता है कि वह सामग्री को शिक्षार्थी की उपयोगिता की दृष्टि से व्यवस्थित करे अथवा इसके लिए लेखक को पहले से ही उपयुक्त निर्देश दे। अन्तर्वस्तु को प्रभावी बनाने वाले प्रमुख संरचनात्मक तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं।

- अन्तर्वस्तु को विचार बिन्दुओं के आधार पर उपयुक्त भागों एवं उपभागों में विभक्त करना।
- सरल एवं स्पष्ट भाषा का प्रयोग।
- छोटे वाक्यों एवं छोटे पैराग्राफों का प्रयोग।
- वार्तालाप शैली का अधिक से अधिक प्रयोग।
- चित्रों, रेखाचित्रों, ग्राफों आंकड़ों का आवश्यकतानुसार प्रयोग।
- अन्तर्वस्तु का तार्किक क्रम में प्रस्तुतीकरण।
- स्वयं जाँच प्रश्नों का प्रावधान।
- पुनर्बलन एवं पृष्ठपोषण का प्रावधान।
- रूचिकर सामग्री।
- सारांश का प्रस्तुतीकरण।
- गृहकार्य की पर्याप्त संख्या एवं उसकी उपयुक्तता

8.6.2. मुद्रण से पूर्व पाण्डुलिपि का पुनरीक्षण

लिखित सामग्री की अन्तर्वस्तु एवं संरचना से सन्तुष्ट होने के पश्चात् भी सम्पादक को एक बार छोटी-छोटी गलतियों जैसे शीर्षकों एवं उप शीर्षकों के प्रारम्भिक अक्षरों, पैराग्राफ के आरम्भ हेतु छोड़े गये स्थान, विराम चिन्हों आदि को सुधारा जा सकता है। इस स्तर पर विषय विशेषज्ञों एवं भाषा विशेषज्ञों

से भी पाण्डुलिपि का पुनरीक्षण कराया जा सकता है। विशेषज्ञों के सुझावों के आधार पर सम्पादक पाण्डुलिपि में स्वयं भी आवश्यक संशोधन कर सकता है किन्तु अन्तर्वस्तु में अधिक संशोधन हेतु लेखक से सहमति लेनी आवश्यक होती है तथा इसके लिए उसे विश्वास में भी लिया जाना चाहिए।

8.6.3. मुद्रण हेतु पाण्डुलिपि की टाइप कॉपी तैयार करना

लेखक द्वारा हस्तलिखित पाण्डुलिपि को मुद्रण स्टाफ विशेष रूप से कम्पोजीटर को पढ़ने में कभी कभी कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि विभिन्न लेखकों की लिखावट अलग अलग होती है तथा कुछ की लिखावट तो अपठनीय ही होती है। अतः मुद्रण से पूर्व पाण्डुलिपि की टाइप कॉपी तैयार करना ही इसका एकमात्र विकल्प होता है। पाण्डुलिपि की टाइप कॉपी तैयार करना, करवाना सम्पादक का ही कार्य होता है तथा इसे सम्पादन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। इसे कॉपी सम्पादन के नाम से भी जाना जाता है।

कॉप सम्पादन हेतु टाइपिस्ट को आवश्यक निर्देश देने होते हैं तथा थोड़े थोड़े अन्तराल पर उसके द्वारा टंकित सामग्री का निरीक्षण भी करते रहना आवश्यक होता है। पाण्डुलिपि की तैयारी के समय छूटे हुए अनेक आवश्यक संशोधनों को टाइप के समय पूरा किया जा सकता है। सामान्यतया टाइप कॉपी की दो प्रतियाँ तैयार करवायी जाती हैं। एक कॉपी सम्पादक के अपने लिए होती है तथा दूसरी कॉपी मुद्रक के लिए। किन्तु मुद्रक के पास भेजने से पूर्व टाइप कॉपी की सावधानीपूर्वक जाँच आवश्यक होती है। यह जाँच मुख्य रूप से शीर्षकों, इकाई के विभिन्न भागों एवं उपभागों को समुचित ढंग से टाइप द्वारा प्रस्तुत करने, वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने, विराम चिन्हों को शुद्ध करने, पैरोग्राफों के बीच समान दूरी छोड़ने, आकड़ों एवं रेखाचित्रों को सही टाइप करने, तकनीकी शब्दों को सही ढंग से प्रस्तुत करने, अभ्यास कार्यों को सही स्थान पर प्रस्तुत करने आदि के बारे में की जानी होती है। अतः सम्पादक को इस कार्य को सावधानीपूर्वक करना चाहिए तथा टाइप कॉपी में आवश्यक संशोधन करने के उपरान्त एक कॉपी मुद्रक सौंपनी चाहिए तथा दूसरी प्रति अपने पास सुरक्षित रखनी चाहिए।

8.6.4. मुद्रण के प्रकार के सम्बन्ध में निर्णय लेना

मुद्रण तकनीकी के विकास ने मुद्रण के अनेक साधन भी विकसित किये हैं। सम्पादक शैक्षणिक के साथ साथ प्रशासनिक अधिकारी भी होता है। अतः अपन आवश्यकताओं एवं संसाधनों के अनुसार उसे मुद्रण के प्रशासनिक तरीके का भी चयन करना होता है। कभी कभी यह निर्णय संस्था प्रधान/प्रबन्धक सम्पादक मण्डल द्वारा भी किया जाता है किन्तु सभी स्थितियों में सम्पादक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अतः मुद्रण के तरीके बारे में उसे ही निर्णय ही लेना होता है। मुद्रण के विभिन्न तरीकों के अपने लाभ एवं कमियाँ होती हैं। अतः उनकी सक्षिप्त चर्चा यहाँ पर समीचीन प्रतीत होती है।

8.6.5 स्वतः अनुदेशानात्मक सामग्री के मुद्रण हेतु सामान्यतया चार साधनों का प्रयोग किया जाता है।

1. फोटोस्टट कॉपी मशीन
2. स्टेंलिस डुप्लीकेट मशीन
3. परम्परागत मुद्रण तकनीक
4. आफसेट लिथो मुद्रण तकनीक

फोटोकॉपी मशीन से टाइप की गई सामग्री की हूबहू प्रतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। किन्तु इस मशीन से फोटो प्रतियाँ तभी निकाली जानी चाहिए जब टाइप की गई सामग्री सुस्पष्ट एवं बहुत ही कम त्रुटियाँ वाली हो तथा इन त्रुटियों को इस प्रकार संशोधित किया गया हो तथा उससे टाइप की स्पष्टता पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ा हो। यह प्रणाली तभी उपयोगी होती है जब शिक्षार्थियों की संख्या कम हो तथा सामग्री की बहुत प्रतियाँ तैयार करनी हो क्योंकि अधिक संख्या में प्रतियाँ निकालने पर यह बहुत खर्चीली बैठती है।

स्टेंलिस डुप्लीकेटिंग मशीन का प्रयोग भी कम संख्या में प्रतियों की आवश्यकता होने पर किया जाना चाहिए। यह विधि फोटो कापियर के प्रयोग की अपेक्षा कम खर्चीली होती है। इसमें विषय सामग्री को स्टेंसिल कागज पर टाइप अथवा स्टेंसिल पेन के प्रयोग से चित्रित किये जा सकते हैं। टाइप किये हुए अर्थात् कटे हुए स्टेंसिल पेपर को डुप्लीकेट मशीन पर चढ़ाकर उपयुक्त रंग की स्याही का प्रयोग करके डुप्लीकेट प्रतियाँ निकाली जाती हैं। यह मशीन हस्तचालित भी होती है तथा बिजली द्वारा चलने वाली भी। विद्युत चालित मशीनों से प्रतियाँ निकालना बहुत कम खर्चीला होता है तथा इसकी गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

परम्परागत मुद्रण तकनीक के अन्तर्गत धातु के उभरे हुए अक्षरों के माध्यम से पाठ सामग्री को मुद्रित किया जाता है। ये अक्षर अलग अलग होते हैं तथा प्रत्येक अक्षर का एक रखने का खाना या बॉक्स होता है। कुशल तकनीशियन जिसे कम्पोज़िटर कहा जाता है, के द्वारा इन धातु के अक्षरों से पाठ सामग्री की शब्द, वाक्य पैराग्राफ एवं पृष्ठवार कम्पोज़िंग की जाती है। पृष्ठों के आकार के अनुसार एक या अधिक पृष्ठों के आकार के अनुसार एक या अधिक पृष्ठों का एक फर्मा कई पृष्ठों को एक साथ मुद्रित करने वाला ब्लाक तैयार किया जाता है। इस फार्मा के अक्षरों के ऊपर छपाई स्याही लगाकर प्रेस मशीन द्वारा एक फर्मा से हजारों स्पष्ट प्रतियाँ बिना किसी दोष के बनाई जा सकती हैं। इस विधि से ग्राफ, रेखाचित्रों, चित्रों आदि के लिए अलग से कलाकारों द्वारा मुद्रण हेतु ब्लाक तैयार किये जाते हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार फर्मा में स्थान निश्चित करके समायोजित किया जाता है। कुछ समय पहले तक इसी विधि का सर्वाधिक प्रयोग प्रचलित था।

आफसेट लिथो मुद्रण, मुद्रण की नवीन तकनीक है। इसके अन्तर्गत पाठ सामग्री को फोटोग्राफिक्स माध्यम से कागज, प्लास्टिक अथवा धातु प्लेट पर परिवर्तित स्थानान्तरित कर लिया जाता है तथा इससे आफसेट लिथो सिद्धान्त के आधार पर हजारों प्रतियाँ सरलता से बनाई जाती हैं। आफसेट लिथो सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि तेल और पानी आपस में नहीं मिल पाते हैं। अतः इसमें मुद्रण हेतु प्रयुक्त की जाने वाली प्लेट तैलीय होती है। जिस पर लगाई जाने वाली स्याही उससे मिलकर चिपकती नहीं है। इस प्रकार हजारों प्रतियाँ बहुत कम खर्च में बहुत अधिक सफाई के साथ तैयार की जा सकती हैं। बड़ी संख्या में पुस्तकों की छपाई हेतु वर्तमान समय में इसी विधि का प्रयोग किया जा रहा है।

8.6.6 मुद्रक को आवश्यक निर्देश प्रदान करना

स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री को प्रस्तुत करने का ढंग अर्थात् सामग्री की साज सज्जा (आवरण पृष्ठ, इकाई का शीर्षक, छपाई की कलात्मकता, पृष्ठ का आकार तथा कागज की गुणवत्ता आदि) शिक्षार्थी को इकाई का शीर्षक आकर्षित करता है। अतः सम्पादक को इन बिन्दुओं पर ध्यान देना होता है। इसके लिए उसे मुद्रक को आवश्यक निर्देश देने होते हैं। मुद्रक को उसके द्वारा मुख्य रूप से पृष्ठों के आकार प्रकार, मुद्रण हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले अक्षरों के आकार, मोटाई एवं शैली तथा आवरण पृष्ठ के शीर्षक एवं परिचयात्मक चित्र आदि के बारे में उपयुक्त निर्देश दिये जाने चाहिए।

अक्षरों के आकार को तकनीकी भाषा में पिच कहा जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि एक इंच की लम्बाई में कितने अक्षर समायोजित किये जाने हैं। उदाहरणार्थ- एक इंच में 10 अक्षर के समायोजन को 10 पिच वाले अक्षर कहा जाता है। इसी प्रकार अक्षरों की मोटाई को तकनीकी भाषा में प्वाइंट के नाम से जाना जाता है। जितने अधिक प्वाइंट का अक्षर होगा, उसकी मोटाई उतनी ही अधिक होगी। शीर्षकों के लिए अधिक प्वाइंट वाले (15 से लेकर 20 प्वाइंट तक) तथा सामान्य पाठ सामग्री के लिए प्रायः 10 प्वाइंट के अक्षर प्रयुक्त किये जाते हैं। मुद्रण की शैली हेतु प्रयुक्त अक्षरों को टाइप-फेस के नाम जाना जाता है। मुद्रण की शैली सामान्य, मोटी एवं इटेलिक्स हो सकती है। पाठ की अधिकांश छपाई सामान्य शैली में की जानी चाहिए किन्तु कुछ आवश्यक बिन्दुओं जिन पर ध्यान आकृष्ट करने की अधिक आवश्यकता होती है की छपाई मोटी अथवा इटेलिक्स शैली में की जा सकती है।

आवरण पृष्ठ को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने हेतु डिजाइनर की सेवायें ली जानी चाहिए। आवरण पृष्ठ के बाद शीर्षक पृष्ठ की एक ओर (सीधी तरफ) पुस्तक अथवा इकाई का शीर्षक, संस्थान का नाम, लेखक या लेखक मण्डल का नाम एवं प्रकाशक का नाम दिया जा सकता है। तथा दूसरी ओर (पीछे की तरफ) प्रकाशन सम्बन्धी संकेत जैसे- श्रृंखला की संख्या, कॉपीराइट, छपाई का वर्ष, संस्करण आदि के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए। विषय सूची पृष्ठ पर पूरी इकाई/पुस्तक के सभी

अध्यायों एवं अध्यायों के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख बिन्दुओं/शीर्षकों की जानकारी दी जानी चाहिए।

8.6.7 कम्पोजिंग की शुद्धता की कच्चे मुद्रण द्वारा जाँच

मुद्रण-स्टाफ अपने कार्य में, तो कुशल हो सकता है किन्तु वे विषय अथवा विषय सामग्री के विशेषज्ञ नहीं होते हैं। कम्पोजिटर द्वारा पाठ सामग्री की कम्पोजिंग यद्यपि सावधानी पूर्वक की जाती है किन्तु कभी कभी जल्दबाजी में अथवा थकान आदि के कारण कुछ गलतियाँ हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त विषय सामग्री की कम समझ होने के कारण भी कुछ त्रुटियों का होना स्वाभाविक होता है। अतः कम्पोजिंग के पश्चात् एक पृष्ठ अथवा पूरे ब्लोक की कच्ची छपाई की जाती है। इस कच्ची मुद्रित सामग्री की पुनः जाँच की जाती है। तथा वास्तविक टाइप कॉपी से इसको अक्षर अक्षर एवं विराम चिन्हों आदि को मिलाया जाता है। यह कार्य प्रुफ रीडिंग कहलाता है।

अच्छे मुद्रकों के स्टाफ में प्रुफ रीडर भी होते हैं किन्तु फिर भी इस कार्य का अन्तिम दायित्व सम्पादक का ही होता है। कहीं-कहीं पर यह कार्य लेखक को ही करना होता है इनमें से किसी के भी द्वारा प्रुफ रीडिंग की जा सकती है। किन्तु यह कार्य बहुत ही सावधानी एवं धैर्यपूर्वक किया जाना चाहिए क्योंकि रीडिंग के बाद भी कोई त्रुटि रह जाती है तब त्रुटि मुद्रित सामग्री में सदैव बनी रहेगी तथा उसको दूसरे संस्करण में ही दूर किया जा सकेगा। अतः सम्पादक को प्रुफ रीडिंग का कार्य स्वयं अथवा अपनी देख-रेख में किसी कुशल स्टाफ से करवाना चाहिए।

कम्पोजिंग की सामान्य त्रुटियाँ निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं-

- वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ
- किसी अक्षर का छूट जाना
- किसी लाइन अथवा पैराग्राफ का छूट जाना
- विराम चिन्हों की गलतियाँ
- अन्तर्वस्तु का गलत व्यवस्था
- शब्दों अथवा पंक्तियों अथवा पैराग्राफों के बीच असमान दूरी या रिक्त स्थान का छोड़ा जाना
- चित्रों, अभ्यास कार्यों आदि के स्थान एवं प्रस्तुतीकरण क्रम में त्रुटि
- बड़े एवं छोटे अक्षरों का गलत प्रयोग

प्रुफ रीडिंग के स्तर: प्रुफ रीडिंग तीन स्तरों पर की जाती है।

1. **प्रारम्भिक स्तर:** कम्पोजिटर/मुद्रक द्वारा मुद्रा अक्षरो को ट्रे में बैठाते समय ही कुछ गलतियों का आभास हो जाता है जिसे वह स्वयं दूर कर लेता है।
2. **सामान्य जाँच स्तर:** मुद्रक द्वारा पृष्ठों को चिन्हांकित करने के पश्चात कच्ची छपाई की सामान्य जाँच की जाती है। यह जाँच बहुत ही सामान्य तथा मात्र दिखावटी होती है। इसे आभासी प्रुफ रीडिंग कहा जाता है।
3. **अन्तिम जाँच स्तर:** इस स्तर पर सम्पादक अथवा लेखक द्वारा टाइप कॉपी से एक एक अक्षर/शब्द मिलाते हुए प्रत्येक पक्ष की जाँच की जाती है।

8.7 नवीन संस्था/ नवीन पाठ्यक्रम को प्रारम्भ करने हेतु सम्पादक के कार्य:

दूरवर्ती शिक्षण सामग्री निर्माण का पर्याप्त अनुभव होने पर सम्पादक को कोई नया पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने हेतु पाठ सामग्री का निर्माण करने अथवा नई दूरवर्ती संस्था के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती है। किन्तु यदि संस्था भी नई हो, नया पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ करना हो तथा सम्पादक को दूरवर्ती शिक्षण सामग्री के निर्माण का पूर्व अनुभव भी न हो तब सम्पादकीय कार्य कठिन होता है तथा सम्पादक को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस स्थिति में सम्पादक को स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री के निर्माण हेतु निम्नलिखित स्तरों से गुजरना होता है।

1. विषय विशेषज्ञों से सम्पर्क करना तथा उनके माध्यम से अच्छे लेखकों के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
2. लेखकों से सम्पर्क करना, उन्हें पाठ लेखन के लिए तैयार करना, दूरवर्ती शिक्षा हेतु पाठ लेखन की विशेषताओं से उन्हें अवगत कराना तथा लेखन हेतु सहमति पत्र तैयार करवाना।
3. यदि पाठ्यक्रम की जटिलता को देखते हुए एक से अधिक लेखकों की आवश्यकता हो तो लेखक मण्डल की व्यवस्था करना।
4. लेखक/लेखकों से लिखित सामग्री प्राप्त करना।
5. लिखित सामग्री पर विषय विशेषज्ञों की राय लेना तथा उसमें सुधार हेतु उपयुक्त टिप्पणियों को अंकित करवाना।
6. विषय विशेषज्ञों के सुझावों के अनुसार विषय सामग्री का पुनरीक्षण करवाना अथवा आवश्यकता होने पर दुबारा लिखवाना।
7. भाषायी विशेषज्ञों द्वारा भाषा सम्बन्धी त्रुटियों का निराकरण करवाना।

8. शैक्षिक तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा विषय सामग्री को दूरवर्ती शिक्षार्थियों के उपयोग की दृष्टि से प्रारूपित करवाना।
9. विषय सामग्री के प्रारूप को अन्तिम रूप देने में दूसरे दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं में पहले से उपलब्ध सामग्री की सहायता प्राप्त करना।
10. विषय सामग्री तथा उसके प्रारूप के बारे में दूरवर्ती शिक्षा विशेषज्ञों की राय लेना एवं मतानुसार उसमें संशोधन करना।
11. पाण्डुलिपि की टाइप कॉपी तैयार करवाना।
12. टाइप कॉप की जाँच करना।
13. टाइप कॉपी को अन्तिम रूप देना तथा उसकी दो प्रतियाँ (मास्टर कॉपी) तैयार करवाना।
14. टाइप कॉपी को मुद्रक को सौंपना तथा छपाई हेतु उसे उपयुक्त निर्देश प्रदान करना।
15. प्रुफ रीडिंग करना अथवा उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था करना।
16. आवश्यक संख्या में सामग्री की मुद्रित प्रतियाँ तैयार करवाना।
17. सामग्री के आवरण पृष्ठ को विषयानुकूल एवं आकर्षक बनाने हेतु कलाकारों/डिजाइनरों की सहायता प्राप्त करना।
18. पाठ इकाई की पुस्तिका तैयार करवाना।

इन उपर्युक्त कार्यों के निष्पादन में सम्पादक को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सबसे प्रमुख समस्या उपयुक्त लेखकों की सेवायें प्राप्त करने की होती है। विषय के अच्छे ज्ञाता लेखक तो मिल जाते हैं किन्तु वे प्रायः दूरवर्ती शिक्षण सामग्री को प्रस्तुत करने के ढंग से अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे लेखकों को सही प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अतः सम्पादक का यह भी दायित्व होता है कि वह दूरवर्ती शिक्षण सामग्री के लेखन हेतु लेखकों के समुचित प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करें। दूरवर्ती शिक्षकों एवं लेखकों के प्रशिक्षण के बारे में सम्यक जानकारी अलग से एक अध्याय में दी गई है।

8.8 दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री का महत्व:

दूरवर्ती शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा के ऐसे गैर प्रचलित एवं अपरंपरागत उपागम से है जो परंपरागत शिक्षा के मानकों पर प्रश्न चिन्ह लगाता हुआ उससे इतर मानकों को प्राथमिकता प्रदान करता है। दूरवर्ती शिक्षा का महत्व पीटर्स के निम्न परिभाषा द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है- “दूरवर्ती शिक्षा

ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति प्रदान करने की एक विधि है जिसे तकनीकी संचार माध्यमों के व्यापक प्रयोग के साथ साथ श्रम विभाजन एवं संगठनात्मक सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा तर्क संगत बनाया जा सकता है। इसमें विशेष रूप से उच्च स्तरीय शिक्षण सामग्री के पुनरनिर्माण का उद्देश्य निहित होता है जिससे छात्रों की बहुल संख्या को एक ही समय में जहाँ पर भी वह रह रहा हो अनुदेशन प्राप्त करना सम्भव होता है। यहाँ शिक्षण अधिगम का एक औद्योगिक रूप है। अध्ययन सामग्री किसी भी छात्र का सूचना का मूल स्रोत होता है, अध्ययन सामग्री विशेष रूप से दूरवर्ती शिक्षा में स्वअनुदेशनात्मक सामग्री के नाम से जाना जाता है। वास्तव में स्वअनुदेशनात्मक सामग्री का महत्व दूरवर्ती शिक्षा में इतना ही है जितना कि परम्परागत शिक्षा में पाठ्य सामग्री का। मुख्य रूप से अध्ययन सामग्री का महत्व निम्न बिन्दुओं पर अध्ययन किया गया है-

1. सूचना के स्रोत के रूप में,
2. शिक्षार्थी के लक्ष्य निर्धारण करने में,
3. आत्मविश्वास में ,
4. आत्म आकलन में,
5. अभिप्रेरित करने में,
6. सामाजिकता लाने में,
7. मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास करने में,
8. क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने में,
9. विशेष रूप से दूरस्थ विद्यार्थियों के लिए लाभदायक,

इसके अतिरिक्त निम्न महत्व हैं-

1. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री छात्र के लिए लचीली एवं आसानी से प्राप्त होने वाली सामग्री है।
2. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री छात्र के पाठ्यक्रम संबंधी कठिनाई का निवारण करती है।
3. दूरस्थ शिक्षा में अध्ययन सामग्री छात्र को वास्तविक व कृत्रिम परिस्थियों में विभिन्न प्रकार के कौशलों का अभ्यास कराती है।
4. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री शिक्षक के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण का कार्य करती है।

5. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री शिक्षक को अतिरिक्त बोझ से मुक्त कराती है।

8.9 दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री की सामाएँ

अध्ययन सामग्री की महत्ता तो दूरवर्ती शिक्षा में पायी जाती है परन्तु इस सामग्री का अध्ययन गहनता के साथ होना चाहिए वो नहीं हो पाता कारण अध्ययन सामग्री के प्रति जागरूगता का अभाव। इन अच्छाइयों के साथ अध्ययन सामग्रियों में कुछ कमियां भी पायी जाती हैं जो निम्न हैं-

- विषय विशेषज्ञ का अभाव,
- भावनात्मक शिक्षा का अभाव,
- पारस्परिक अन्तः क्रिया का अभाव,
- सैद्धान्तिक पक्ष की बहुलता,
- नवीनीकरण सूचनाओं का अभाव,
- आत्मगत स्वरूपों पर अधिक बल देना,
- उदासीन मुद्रित सामग्री,
- समस्या का पर्याप्त समाधान नहीं हो पाता,

अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी:

1. प्रश्नों के उत्तर देने के लिए निम्न रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।
2. अपने उत्तर की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

प्रश्न 1. अध्ययन सामग्री का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर:-

.....

.....

.....

.....

उत्तर:-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्रश्न 6. दूरवर्ती शिक्षा में स्वअध्ययन सामग्री का महत्व समझाइये।

उत्तर:-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्रश्न 7. दूरवर्ती शिक्षा में स्वअध्ययन सामग्री की सीमाओं को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर:-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.10 सारांश:

इस इकाई में अध्ययन सामग्री का अर्थ, प्रकार तथा अधिगम कर्ता के लिए किस प्रकार उपयोगी है आदि का प्रभावी ढंग से वर्णन किया गया है। अध्ययन सामग्री शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच

आधार होता है यह आधार जितना स्वच्छ, सरल, गुणात्मक होगा उतना ही अधिगम कर्ता लाभ प्राप्त करेगा। अध्ययन सामग्री को मुद्रित एवं अमुद्रित दो रूपों में विभाजित किया गया है तथा साथ ही साथ व्याख्या की गयी है कि यह अध्ययन सामग्री किस तरह हमारे जीवन में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में अध्ययन सामग्री के विकास में निहित प्रमुख अंगों को सुचारू रूप से वर्णन किया गया है।

8.11 शब्दावली:

अल्पकालिक: अत्यधिक कम समय के लिए,

संप्रेषण : संचार का एक स्थान से दूसरे स्थान तक हस्तान्तरण,

बोझिल: अत्यधिक भार या दबाव,

पाण्डुलिपि: वह प्राचीन लिपि जो तत्कालिक भाषा का प्रतिनिधित्व करती है,

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

उत्तर 1. अध्ययन सामग्री पाठ्यक्रम का घटक होता है जो छात्रों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सहयोगी आधार के रूप में उपयोगी होता है।

उत्तर 2. अनुदेशनात्मक सामग्री से अभिप्राय उस विधि व विधि में प्रयुक्त विभिन्न साधनों से होता है जिनकी सहायता से विषय सामग्री को शिक्षार्थी तक पहुँचाया जाता है।

उत्तर 3. 1. इसकी अन्तर्वस्तु को बार बार दुहराने से शिक्षार्थी को विषय सामग्री को समझने तथा आगे बढ़ने का तरीका स्वयं प्राप्त होते जाना चाहिए।

2. इसमें इस बात के निर्देश दिये होने चाहिए कि शिक्षार्थी को विषय सामग्री को किस प्रकार अध्ययन करना है।

3. इसमें सामग्री के अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों को सम्पादित करने (जैसे इकाई के विभिन्न भागों पर दिया जाने वाला समय, गृहकार्य की तैयारी आदि) के बारे में उपयुक्त निर्देश दिये होने चाहिए।

4. शिक्षार्थी की विषय सामग्री में रूचि विकसित करने तथा उसे बरकरार रखने हेतु विशेष प्रयास के प्रावधान होने चाहिए।

उत्तर 4. पाठ्यवस्तु तथा स्वअनुदेशनात्मक सामग्री में अन्तर-

पाठ्यवस्तु:- 1. अध्यापकों के प्रयोग के लिए लिखी जाती हैं।

2. विस्तृत क्षेत्र के लिए निर्मित की जाती है।

3. एक मार्ग के द्वारा किया जाता है।

स्वअनुदेशनात्मक सामग्री- 1. अधिगमकर्ता के लिए लिखा जाता है।

2. युक्तिगत शिक्षार्थी हेतु प्रारूप तैयार किया जाता है।

3. शिक्षार्थी की आवश्यकता के अनुसार संरचित।

उत्तर 5. स्वअनुदेशनात्मक सामग्री के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

व्यक्तिगत अधिगम, स्वगति अध्ययन, निजी अधिगम, किसी समय, किसी स्थान तथा किसी संख्या पर उपलब्ध होना, प्रमाणीकृत विषय वस्तु, विशेषज्ञ विषय वस्तु।

उत्तर 6. अध्ययन सामग्री का महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया गया है-

1. सूचना के स्रोत के रूप में,

2. शिक्षार्थी के लक्ष्य निर्धारण करने में,

3. अभिप्रेरित करने में,

4. मनावैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास करने में,

5. विशेष रूप से दूरस्थ विद्यार्थियों के लिए लाभदायक,

उत्तर 7. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री की सामाएँ निम्नवत् हैं-

विषय विशेषज्ञ का अभाव, भावनात्मक शिक्षा का अभाव, पारस्परिक अन्तः क्रिया का अभाव, सैद्धान्तिक पक्ष की बहुलता, नवीनीकरण सूचनाओं का अभाव।

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

दूरवर्ती शिक्षा: डॉ० सिया राम यादव,

शैक्षिक एवं व्यावसयिक निर्देशन: वर्मा एवं उपाध्याय,

दूरवर्ती शिक्षा: इग्नू पाठ्यसामग्री,

8.14 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री-

शिक्षा मनोविज्ञान: डॉ० एस० के० मंगल,

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ: डॉ० एस० पी० गुप्ता

8.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. अध्ययन सामग्री का अर्थ स्पष्ट कर इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2. अध्ययन सामग्री के प्रकारों का विवेचन कीजिए।
3. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. दूरवर्ती शिक्षा में अध्ययन सामग्री की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई 9: दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन तकनीकी (Evaluation Techniques in Distance Education)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मूल्यांकन का अर्थ

9.3.1 मापन तथा मूल्यांकन में अन्तर

-
- 9.3.2 मूल्यांकन की प्रविधियाँ
 - 9.4 दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन प्रणाली
 - 9.5 दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन प्रणाली के स्वरूप
 - 9.6 दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन की सीमाएँ
 - 9.7 सारांश
 - 9.8 शब्दावली
 - 9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
 - 9.11 सहायक /पाठ्यसामग्री
 - 9.12 निबन्धात्मक प्रश्न
-

9.1 प्रस्तावना:

शैक्षिक क्षेत्र में दूरस्थ शिक्षा एक नवाचार तथा नयी प्रवृत्ति के रूप में विगत कुछ दशकों से वैश्विक स्तर पर प्रचलित है। परम्परागत शिक्षण प्रणाली के अंतर्गत अध्यापक शिक्षा में सभी छात्र किसी एक स्थान पर एकत्रित होकर अपने अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करते हैं। परन्तु अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा तकनीकी कारणों से शिक्षा प्रदान करने की इस परम्परागत प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुई जिसके परिणाम स्वरूप दूरस्थ शिक्षा का गैर परम्परागत उपागम सामने आया।

जनसंख्या विस्फोट, संसाधनों की सीमितता तथा शिक्षा की आवश्यकता ने दूरस्थ शिक्षा को लोकप्रिय बना दिया। दूरस्थ शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने में औपचारिक शिक्षा संस्थानों में अध्ययन नहीं कर सकती है। यह उन छात्रों के लिए वरदान है, जो परम्परागत प्रकृति की औपचारिक शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन नहीं कर सकते। निर्धनों तथा निर्जन क्षेत्रों तथा सुदूर प्रदेशों में रहने वालों तक दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा का प्रकाश पहुंचाया जा सकता है। वर्तमान समय में दूरस्थ शिक्षा को जन शिक्षा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शैक्षिक उपागम के रूप में स्वीकार किया जाता है जो व्यावहारिक रूप से अत्यन्त उपयोगी है।

दूरवर्ती शिक्षा, की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है। अतः दूसरी प्रणालियों की ही भांति दूरवर्ती शिक्षा में भी मूल्यांकन का अपना महत्व है। यही नहीं, मूल्यांकन दूरवर्ती शिक्षण का प्रमुख मूल तत्व भी है। इसलिए दूरवर्ती शिक्षा में इसका और अधिक महत्व है। अतः दूरवर्ती शिक्षक के लिए मूल्यांकन का सम्प्रत्यय, इसके ऊपर विधियों एवं प्रयोगों का ज्ञान होना दूसरे शिक्षकों की तुलना में कहीं अधिक आवश्यक होता है। चूँकि दूरवर्ती शिक्षक प्रणाली अनुशासनों, विधाओं एवं विशिष्ट क्षेत्रों से आते हैं। अतः उन्हें शैक्षिक मूल्यांकन की अवधारणा एवं शिक्षा क्षेत्रों में इसकी भूमिका ज्ञान होना भी

आवश्यक है। इस इकाई में दूरवर्ती शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन के विभिन्न तकनीकियों का आप अध्ययन करेंगे, तथा दूरस्थ शिक्षा में आवश्यक मूल्यांकन के स्वरूपों का भी प्रभावी ढंग से अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने में उपरांत आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- मूल्यांकन एवं उद्देश्य को परिभाषित कर सकेंगे।
- मूल्यांकन एवं मापन में अन्तर कर सकेंगे।
- मूल्यांकन की विविध विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- मूल्यांकन के प्रमुख प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा के मूल्यांकन तकनीकियों का वर्णन कर सकेंगे।

9.3 मूल्यांकन का अर्थ

प्राचीनकाल में शैक्षिक मूल्यांकन छात्र निष्पत्तियों की जाँच तक ही सीमित था। किन्तु अब शिक्षा में मूल्यांकन एक नवीन अवधारणा है। मूल्यांकन की यह नवीन अवधारणा परम्परागत परीक्षा की धारणा से भिन्न है। इस नवीन धारणा के अनुसार शिक्षा के अन्तर्गत केवल छात्र निष्पत्तियों का मापन करना ही पर्याप्त नहीं होता है अपितु शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षण विधियों, प्रविधियों, पाठ्यवस्तु सहायक-सामग्री, शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति एवं शिक्षक प्रभावशीलता आदि सभी तत्वों की उपयुक्तता एवं सार्थकता को मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार शैक्षिक मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिगम परिस्थितियों तथा सीखने के अनुभवों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली सभी विधियों की उत्पादिकता की जाँच की जाती है। तथा छात्र निष्पत्तियों के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो सकी है।

जिम्स एम. ली. के अनुसार “मूल्यांकन, विद्यालय कक्षा तथा स्वयं द्वारा निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में छात्रों की प्रगति की जाँच है। मूल्यांकन का प्रमुख छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को अग्रसर एवं निर्देशित करना है। इस प्रकार मूल्यांकन नकारात्मक नहीं अपितु एक सकारात्मक प्रक्रिया है।”

इस प्रकार मूल्यांकन एक शैक्षिक प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत शिक्षक यह निश्चित करता है। किसी शिक्षण व्यवस्था तथा शिक्षण अधिगम आगे बढ़ाने की क्रियाएँ सफल रही है। यह सफलता शिक्षण की प्राप्ति में पृष्ठपोषण का कार्य करती है यदि उद्देश्यों की प्राप्ति में कमी है। इस प्रकार शैक्षिक मूल्यांकन के तीन प्रमुख कार्य होते हैं -

1. शैक्षिक कार्यक्रम का अधिगम प्रणाली का मूल्यांकन।
2. अधिगम या निष्पत्ति का मापन करना।
3. अधिगम उद्देश्यों के द्वारा व्यवस्था करना।

इन कार्यों के माध्यम से शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावशाली बना सकते हैं। तथा अपनी असफलताओं को सफलताओं में परिवर्तित कर सकते हैं। इनकी विस्तृत चर्चा से पूर्व परीक्षण को भी स्पष्ट करना उचित समझते हैं। जिससे इन तीन शब्दों को समझाने एवं प्रयुक्त करने में कोई भ्रम उत्पन्न ना हो।

9.3.1 मूल्यांकन एवं मापन में अन्तर

मापन	मूल्यांकन
.1 ब्रेडफील्ड एवं मॉरडक के अनुसार, मापन की प्रक्रिया में किसी घटना या तथ्यों के विभिन्न परिणामों के लिए प्रतीक निश्चित किये जाते हैं।	.1 ब्रेडफील्ड एवं मॉरडक के अनुसार मूल्यांकन में उस घटना या तथ्य का मूल्यांकन ज्ञात किया जाता है।
.2 मापन में किसी परीक्षण को लागू करने के पश्चात् उत्तर के आधार पर अंक प्रदान किये जाते हैं। जैसे अंक प्रदान करना 70 में 100	.2 अंक प्रदान करने पश्चात् प्राप्तांक का मूल्य निर्धारण मूल्यांकन कहलाता है। जैसे 70 प्रतिशत के लिए यह कहना कि यह प्रथम श्रेणी या बहुत अच्छे श्रेणी का छात्र है।
.3 मापन का क्षेत्र सीमित होता है इसमें किसी एक गुण या चर का परिणाम ज्ञात किया जाता है। जैसे रूचि का मापन।	.3 मूल्यांकन व्यापक होता है। इसमें कई परीक्षणों का समावेश हो सकता है। जैसे व्यक्तित्व मूल्यांकन करने के लिए अभिरूचि, अभियोग्यता या अभिवृत्ति आदि का परीक्षण किया जाता है।
.4 एक गुण का माप करने से बालक के शैक्षिक स्तर के बारे में निश्चित नहीं बनाई जा सकती। जैसे यदि बालक गणित में अधिक अंक प्राप्त करता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह सभी विषयों में कुशल है।	.4 मूल्यांकन में कई परीक्षणों को लागू कर बालक के शैक्षिक स्तर का ठीक ठाक निर्धारण किया जा सकता है।
.5 मापन में समय, धन तथा श्रम कम लगता है। क्योंकि यह एक ही परीक्षा होती है। जैसे गणित का प्रश्न पत्र बनाकर बालक की परीक्षा लेना तथा अंक प्रदान करना।	.5 मूल्यांकन में श्रम, धन तथा समय अधिक लगता है, क्योंकि मूल्यांकन के लिए कई परीक्षण बनाना, लागू करना, अंक देना तथा अनेक कार्य

<p>.6 मापन के आधार पर सार्थक रूप में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।</p> <p>.7 मापन का ज्ञान अपूर्ण होता है। जैसे 70 प्राप्तांक से क्या समझा जाय यह निश्चित नहीं है। मापन मूल्यांकन का एक अंग है।</p> <p>.8 मापन मूल्यांकन से पूर्व होता है।</p> <p>.9 मापन के लिए उद्देश्य जानना आवश्यक नहीं है।</p>	<p>करने पड़ते हैं।</p> <p>.6 मूल्यांकन में सार्थक रूप से भविष्यवाणी की जा सकती है। इसके लिए सभी पहलुओं का ज्ञान प्राप्त प्राप्त कर लिया जाता है।</p> <p>.7 मूल्यांकन का ज्ञान पूर्ण होता है। जैसे से 70 क्या समझा जाये यह निर्धारित कर लिया जाता है कि इसे बहुत अच्छा औसत या निम्न समझा जाए।</p> <p>.8 मूल्यांकन मापन के पश्चात होता है।</p>
---	--

9.3.2 मूल्यांकन की प्रविधियाँ:

सत्रांत परीक्षाओं के द्वारा सामान्यतया ज्ञानात्मक उद्देश्यों का ही मापन किया जाता है। किन्तु मूल्यांकन प्रक्रिया का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। यह ज्ञानात्मक, मनोगत्यात्मक, व भावात्मक तीनों प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रदत्तों का संकलन करती है। अतः इस कार्य हेतु विभिन्न प्रविधियों को प्रस्तुत किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त की जाने वाली प्रविधियों को दो प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है-

(1) परिमाणात्मक प्रविधि

(2) गुणात्मक प्रविधि

9.3.2.1 परिमाणात्मक प्रविधि:-

मूल्यांकन की परिमाणात्मक प्रविधियाँ अधिक विश्वसनीय, वैध एवं उपयोगी होती है। इन परीक्षणों के तीन रूप हो सकते हैं -मौखिक, लिखित एवं प्रायोगिक। मौखिक परीक्षणों के अन्तर्गत मौखिक प्रश्न, वाद-विवाद प्रतियोगिता, नाटक आदि को प्रयुक्त किया जाता है। लिखित परीक्षाएँ निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ, दो प्रकार की होती है। प्रायोगिक परीक्षाओं के अन्तर्गत कोई निर्धारित कार्य पूरा करना होता है।

9.3.2.2 गुणात्मक प्रविधि:-

मूल्यांकन प्रक्रिया की व्यापकता की दृष्टि से गुणात्मक प्रविधियाँ अधिक उपयोगी होती हैं। जहाँ पर परिमाणात्मक प्रविधियाँ सफल नहीं हो पाती हैं वहीं गुणात्मक विधियों की ही सहायता लेनी पड़ती है। ये प्रविधियाँ समान्यतया पाँच प्रकार की होती हैं-

1. संचयी आलेख
2. घटनाक्रम आलेख
3. निरीक्षण एवं साक्षात्कार
4. जाँच सूची
5. रेटिंग पैमाना

संचयी आलेख के अन्तर्गत छात्रों की आयु, अभिभावकों की स्थिति, शैक्षिक प्रगति, परीक्षाफल, उपस्थिति पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भागीदारी, विशिष्ट योग्यताओं एवं कमजोरियों आदि का उल्लेख होता है।

घटनाक्रम आलेख में छात्रों के व्यवहार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं एवं कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इसमें छात्र की रुचियों, अभियोग्यताओं आदि का भी उल्लेख होता है। संचयी आलेख एवं घटनाक्रम आलेख के आधार पर विद्यार्थी के सम्बन्ध में सामान्यीकरण किया जा सकता है।

जिन बालकों के लिए हम दूसरे परीक्षणों का प्रयोग नहीं कर पाते हैं, उनके मूल्यांकन हेतु निरीक्षण प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। यह प्रविधि छोटे बालकों के मूल्यांकन में उपयोगी होता है। उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी इस प्रविधि को स्वतः मूल्यांकन में प्रयुक्त कर सकते हैं। बड़े बालकों के लिए साक्षात्कार विधि उपयोगी होती है।

रेटिंग स्केल में भी कुछ कथन दिये जाते हैं जिनके उत्तर कुछ निर्धारित बिन्दुओं (तीन, पाँच, सात) पर देने होते हैं। उदाहरण के लिए, पाँच बिन्दुओं की मापनी के निर्णय स्तर पर पाँच प्रकार के हो सकते हैं-पूर्ण सहमत, कुछ नहीं, असहमत एवं पूर्ण असहमता। क्योंकि इन कथनों पर निर्णय हेतु उच्च निर्णय शक्ति की आवश्यकता होती है, अतः प्रविधि उच्च कक्षा के छात्रों के लिए उपयुक्त होती है।

अभ्यास प्रश्न -1

टिप्पणी - नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

प्रश्न 1. मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. मापन एवं मूल्यांकन में अन्तर कीजिए।

प्रश्न 3. मूल्यांकन की प्रविधियां बताइये।

9.3.3 मूल्यांकन उपागम:

मूल्यांकन पर विचार करने के तरीकों में से एक महत्वपूर्ण तरीका है, मूल्यांकन के प्रयोजन पर ध्यान केन्द्रित करना। इस दृष्टि से हम मूल्यांकन के कार्य को दो श्रेणियों में-निर्माणात्मक (फार्मेटिव) तथा संकलनात्मक (समें टिव) उपागमों में विभाजित कर सकते हैं।

9.3.3.1 संरचनात्मक मूल्यांकन

निर्माणात्मक मूल्यांकन कार्यक्रम को इसके विकास व क्रियान्वयन के विभिन्न स्तरों पर सुधारने के उद्देश्य से समय-समय पर किया जाता है। इसका उद्देश्य कार्यक्रम के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर कार्यक्रम का सम्पूर्ण सुधार एवं प्रभावशीलता हो सकता है, यद्यपि इस मूल्यांकन का कार्य कार्यक्रम के विभिन्न तत्वों के सुधार हेतु किया जाता है। शिक्षण सामग्री का परीक्षण, छात्र, आँकड़े तथा प्रवेश

सम्बन्धी आकड़ों के मिलान व प्रतिवेदन की कार्यप्रणाली का सुधार, परामर्श सत्रों की प्रभावशीलता का सुधार करना आदि दूर शिक्षा में निर्माणात्मक मूल्यांकन के कुछ उदाहरण हैं।

9.3.3.2 संकलनात्मक मूल्यांकन

संकलनात्मक मूल्यांकन का सम्बन्ध कार्यक्रम की व्यापक दृष्टि से, कार्यक्रम के ध्येय एवं उद्देश्यों की दृष्टि से सम्पूर्ण प्रभावशीलता से है। विद्यार्थी अधिगम के मूल्यांकन के लिए सामान्य प्रणाली सत्रान्त परीक्षा है जो सतत् मूल्यांकन के परिणामों के साथ समग्र श्रेणी या अंक तथा उपाधि एवं प्रमाणपत्र प्रदान करती है। इस प्रकार के मूल्यांकन का मंतव्य उसी उद्देश्य की प्राप्ति के विभिन्न उपागमों या साधनों की जांच करना होता है तथा यह व्यापक रूप से कार्यक्रम की प्रभावशीलता तथा कुशलता से सम्बंधित होता है। किसी भी प्रकार के कार्यक्रम एवं परियोजना हेतु लागत (व्यय), उत्पाद या उपलब्धियां, समय, भविष्य के लिए सावधानी तथा कार्यक्रम या परियोजना से उदित प्रतिमान या कार्य प्रणाली से सम्बंधित प्रश्नों से इसका सम्बन्ध होता है।

थोरपे (1988) ने सुझाव दिया है कि निर्माणात्मक मूल्यांकन कार्यक्रम के मध्य उसकी प्रगति का मूल्यांकन करने तथा 'हम कैसे कर रहे हैं', तथा 'हम आगे क्या करेंगे?' जैसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कार्यरत रहे हैं। संकलित मूल्यांकन का सम्बन्ध कार्यक्रम की प्रभावशीलता से सम्बंधित है तथा 'क्या उद्देश्यों की उपलब्धि हुई?' तथा 'क्या ऐसा करने योग्य था?' एवं 'क्या जारी रखने योग्य है?' आदि प्रश्नों का उत्तर देता है। थोरपे (1988) ने निर्माणात्मक एवं संकलित मूल्यांकन में निम्नलिखित अंतर किया है:

संरचनात्मक मूल्यांकन	संकलनात्मक मूल्यांकन
यह कार्यक्रम के दौरान सम्पन्न होता है।	यह कार्यक्रम के अंत में सम्पन्न होता है।
सह कार्यकर्ताओं के द्वारा किया जाता है। यह एक प्रकार स्वमूल्यांकन है।-	यह कार्यक्रम या प्रणाली के बाहर के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है।
यह कम खर्चीला होता है।	यह खर्चीला है, अतः इसे अतिरिक्त संसाधनों या स्रोतों की जरूरत होती है।
यह प्रायः एक छोटे स्तर का कार्य है। यद्यपि यह वर्णनात्मक है तथा सांख्यिकी पर आधारित होता है और प्रायः प्रयोग में लाया जाता है।	यह एक बड़ा कार्य है। यह सर्वेक्षण करता है तथा सांख्यिकी आधारित विधियों का प्रतिदर्श का चयन करने एवं विश्लेषण करने के लिए प्रयोग

	करता है।
इसके परिणाम स्थानीय रूप से घोषित किए जाते हैं।	इसके परिणाम राष्ट्रीय स्तर पर घोषित किए जाते हैं।
मूल्यांकन के कार्य का संचालन संगठन की निर्णयन प्रक्रिया द्वारा तथा क्रियात्मक सीमाओं का अंतर्गत होता है।	मूल्यांकन के कार्य का संचालन चुनी हुई विधियों एवं प्रारूप की समय सम्बन्धी सीमाओं से होता है।
आंकड़ों का स्रोत प्रायः परिवीक्षण संबंधी कार्य तथा निष्पत्ति संकेत होते हैं	इसके आंकड़ों के स्रोत विविध होते हैं जिनका लक्ष्य आंकड़ों का संकलन होता है जिससे दीर्घकालीन कार्यक्रम के प्रभावों को प्रकट करना होता है।

अधिकांशतः निर्माणात्मक मूल्यांकन की प्रकृति विकासात्मक होती है अर्थात् यह प्रक्रिया व उत्पादन दोनों को सुधारने का मंतव्य रखता है। प्रायः हमारी यह गलत धारणा है कि निर्माणात्मक मूल्यांकन कार्यक्रम के विकास के विभिन्न स्तरों पर किया जाता है तथा संकलनात्मक मूल्यांकन अंत में किया जाता है। इस गलत अवधारणा के विपरीत, संकलनात्मक मूल्यांकन (विपणन परीक्षण की तरह) विकास की अवस्था पर भी किया जा सकता है जिसे निर्माणात्मक मूल्यांकन के लिए विकासात्मक जांच या परीक्षण भी कहा जाता है।

निर्माणात्मक-संकलनात्मक उपागम का सम्बन्ध मूल्यांकन के प्रयोजन से है, जबकि निवेश निर्गम उपागम मूल्यांकन करने के लिए अपनाई गई विधियों/प्रतिमानों पर आधारित होता है। निवेश-निर्गम उपागम में हम पूर्व- पश्च जांच प्रतिमान तथा संदर्भ-निवेश प्रक्रिया निर्गम मूल्यांकन प्रतिमान पर विचार कर सकते हैं।

योगदेय परीक्षण पूरे पाठ्यक्रम या पाठ्यक्रम के एक बड़े भाग पर आधारित होते हैं, इनका उद्देश्य भी अपेक्षाकृत व्यापक होता है तथा ये पाठ्यक्रम के अन्त में या छः महीने अथवा तीन महीने के अन्त में प्रदान किये जाते हैं। इनके प्राप्तियों के आधार पर श्रेणी एवं प्रमाण पत्र प्रदान किये जाते हैं। योगदेय परीक्षण के पद प्रश्न भी रूपदेय परीक्षण के पदों से व्यापक होते हैं। किन्तु दोनों परीक्षणों सम्बन्ध विद्यार्थी की प्रगति या अधिगम उपलब्धि से ही होता है।

9.4 दूरस्थ शिक्षा में मूल्यांकन प्रणाली

दूर शिक्षा में मूल्यांकन प्रदत्त कार्य (अनुशिक्षक द्वारा अंकित तथा कम्प्यूटर द्वारा अंकित), प्रयोजना, प्रयोगशाला में प्रायोगिक कार्य, तत्काल जांच, प्रस्तुतीकरण एवं प्रदर्शन, सत्रांत परीक्षा

आदि पर आधारित विद्यार्थी उपलब्धि का सतत् निर्माणात्मक तथा सत्रांत संकलित मूल्यांकन से संबंधित होता है। इन परीक्षाओं तथा जांचों में प्राप्त अंको को या श्रेणियों को सम्पूर्ण अंक या श्रेणियों (विद्यार्थी की निष्पत्ति हेतु) का निर्धारण करने के लिए संचित किया जाता है। इनके आधार पर प्रमाणपत्र या उपाधि प्रदान की जाती है। उदाहरण के लिए, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में निरंतर अंतरालों में प्रदत्त कार्य में दिए गए अंकों या श्रेणियों तथा सत्रांत परीक्षा में प्रदत्त अंको या श्रेणियों को समावेशक श्रेणी या अंक देने के लिए जोड़ा जाता है। प्रदत्त कार्य के मूल्यांकन को 25-30 प्रतिशत महत्त्व दिया जाता है, जबकि सत्रांत परीक्षा को 70-75 प्रतिशत महत्त्व दिया जाता है। पांच बिन्दु पैमाने पर क (श्रेष्ठतम) से ड. (असंतोषप्रद) तक बिन्दु होते हैं। इस पैमाने पर प्रत्येक विद्यार्थी को प्रत्येक विषय में दिए प्रदत्त कार्य मूल्यांकन या सत्रांत परीक्षा में न्यूनतम घ (संतोषप्रद) श्रेणी प्राप्त करनी होती है, पर किसी पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए अध्येता को समावेशित रूप से न्यूनतम 'ग' (अच्छा) श्रेणी प्राप्त करनी होती है। इस प्रकार का मूल्यांकन अध्येता-निष्पत्ति का मापन एवं श्रेणीकरण ही करता है।

दूर शिक्षा में मूल्यांकन कार्यक्रम, शैक्षिक कार्यक्रम के विभिन्न पक्षों पर ध्यान देता है तथा यह दूर शिक्षा मूल्यांकन में उल्लिखित मूल्यांकन को भी सम्मिलित करता है जो मूल्यांकन प्रतिमान के निर्माण एवं क्रियान्वयन में निहित प्रक्रिया के मूल्यांकन के अलावा होता है। इन पर हम आगामी खंडों में विचार करेंगे। इससे पूर्व हम निम्नांकित उप-खंड में शैक्षिक मूल्यांकन तथा दूर शिक्षा कार्यक्रम के मूल्यांकन पर थोड़ा विचार विमर्श करेंगे।

1. स्वतः आंकलन (ग्रेड प्रणाली नहीं)
2. दत्त कार्य (ग्रेड एवं अंक)
3. पद अन्तिम परीक्षा (ग्रेड एवं अंक)

9.4.1 स्वतः आंकलन:

9.4.1.1 संरचनात्मक आंकलन यह कार्यक्रम के दौरान सम्पन्न होता है। मूल्यांकन के कार्य का संचालन संगठन की निर्णयन प्रक्रिया द्वारा तथा क्रियात्मक सीमाओं का अंतर्गत होता है।

9.4.1.2 योगात्मक आंकलन यह कार्यक्रम के अंत में सम्पन्न होता है। मूल्यांकन के कार्य का संचालन चुनी हुई विधियों एवं प्रारूप की समय सम्बन्धी सीमाओं से होता है।

9.4.2 दत्त कार्य:

सतत् मूल्यांकन छात्रों के सम्पूर्ण प्रगतिशीलता के मूल्यांकन के लिए जो कोर्स आधारित कार्य किया जाता है, उसे दत्तकार्य कहते हैं।

दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन का प्रबल साधन माना जाता है। दत् कार्य के दो उद्देश्य होते हैं संरचनात्मक उद्देश्य एवं योगात्मक उद्देश्य। दत् कार्य के द्वारा ग्रेड या अंको जो प्राप्त करते हैं, वह अंक उस कोर्स के सम्पूर्ण भाग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे सतत दत् कार्य कहते हैं।

9.4.3 पद अन्तिम परीक्षा:

दूरवर्ती शिक्षा में छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का आकलन इसी मूल्यांकन के साधन पर निर्भर करता है जो एक वर्ष में दो बार आयोजित किया जाता है।

इस पद अन्तिम परीक्षा के द्वारा छात्रों का योगात्मक मूल्यांकन प्रभावी ढंग से किया जाता है। जबकि दत् कार्य के द्वारा संरचनात्मक मूल्यांकन किया जाता है। यह मूल्यांकन पद्धति न केवल दूरवर्ती शिक्षा में सम्भव है अपितु औपचारिक शिक्षा में भी प्रयोग किया जाता है लेकिन छात्रों के हाथ में नहीं होती है।

9.4.4 पाठ्यक्रम मूल्यांकन:

पाठ्यक्रम का सही होना छात्रों के सही मार्ग दर्शन का आधार होता है। दूरवर्ती शिक्षा में गुणात्मक मूल्यांकन के लिए पाठ्यक्रम मूल्यांकन आवश्यक होता है। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित सूचना का संकलन आवश्यक है-

क. छात्र,

ख. पाठ्यक्रम निर्माता,

ग. खरीददार/ प्रयोगकर्ता/रोजगार परक,

9.4.5 अनुदेशन सामग्री का मूल्यांकन:-

दूरवर्ती शिक्षा में सामग्री के विकास का मूल्यांकन संरचनात्मक रूप में की जाती है, बाद में सामग्री को योगात्मक मूल्यांकन द्वारा प्रक्रिया में लाया जाता है।

अनुदेशन सामग्री का मूल्यांकन के दो पक्ष हैं-

क. अनुदेशित पक्ष- स्वयं अध्ययन सामग्री की उपयुक्तता, काठिन्यता स्तर, विषय वस्तु की रूचि व स्पष्टता, चित्रात्मक प्रस्तुतीकरण, श्रव्य- दृश्य कार्यक्रम आदि।

वैज्ञानिक पक्ष:- वैज्ञानिक उपागम का संतुलित प्रस्तुतीकरण, सामग्री का नवीनीकरण, सन्दर्भ की प्रासंगिकता एवं शोध अध्ययन आदि।

छात्र सहायता सेवा:- छात्र सहायता सेवा दूरस्थ शिक्षा में विद्यार्थी को शिक्षा अधिगम प्रक्रिया की प्राप्ति करने का कौशल प्रदान करती है।

9.5 दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन प्रणाली की समीक्षा:

मूल्यांकन शैक्षिक प्रणाली का अभिन्न अंग है। शिक्षा पद्धति चाहे जिस प्रकार की हो मूल्यांकन के बिना यह पूर्ण नहीं होती है। किन्तु विभिन्न शैक्षिक प्रणालियों में मूल्यांकन प्रक्रिया में कुछ अन्तर होना स्वाभाविक होता है। दूरवर्ती शिक्षा की प्रक्रिया औपचारिक शिक्षा से भिन्न होती है। अतः इसकी मूल्यांकन प्रक्रिया में भी कुछ भिन्नता होती है। यह भिन्नता दूरवर्ती शिक्षा की अपनी विशिष्टताओं के कारण होती है। यह विशिष्टताएँ इस प्रकार की होती है।

1. दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली में शिक्षार्थियों को उनकी योग्यताओं, सुविधाओं एवं अपनी गति से सीखने का अवसर प्रदान किया जाता है। अतः इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन प्रक्रिया भी सुनिश्चित की जाती है। इसलिए दूरवर्ती शिक्षा में परीक्षा प्रणाली लचीली होती है।
2. इस प्रणाली में अनुदेशन प्रणाली सामग्री का प्रारूप एक स्थायी आलेख के रूप में होता है किन्तु शिक्षार्थी के स्वतः अभिप्रेरणा, अनुभव आदि से उसमें सुधार एवं विकास की सम्भावना होती है। अतः शिक्षार्थियों को परीक्षा प्रदान करने तथा मूल्यांकन में इस तथ्य को ध्यान में रखना होता है।
3. इस प्रणाली में अनुदेशन हेतु विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु सशक्त माध्यम का सर्वाधिक प्रयोग करने को प्रयास किया जाता है। प्रत्येक माध्यम की अपनी विशेषताएँ होती है तथा उन्हे प्रभावशाली बनाने में विशेषज्ञों की अहम भूमिका होती है। अतः मूल्यांकन में माध्यमों की प्रभावशीलता का ध्यान रखना होता है।
4. दूरवर्ती शिक्षा में प्रवेश नामांकन का मानदण्ड बहुत अधिक लचीला होता है। इसलिये इसके शिक्षार्थियों के ज्ञान स्तर, कौशल विकास तथा उनके शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्यों में पर्याप्त विषमता होती है। चूँकि उन्हे प्रदान की जाने वाली अनुदेशन सामग्री एक जैसी होती है। अतः मूल्यांकन में पर्याप्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।
5. दूरवर्ती शिक्षा में पाठ्य सामग्री का निर्माण विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है किन्तु शिक्षार्थियों की विषमता के कारण यह सामग्री उनकी कठिनाईयों का समुचित समाधान करने में सदैव सफल नहीं हो पाती है। अतः इसमें लचीली मूल्यांकन प्रक्रिया की आवश्यकता होती है।
6. दूरवर्ती शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच आमने सामने की अन्तःक्रिया नहीं होती है। सम्पर्क कार्यक्रम की अवधि बहुत छोटी होने के कारण शिक्षार्थियों को शिक्षकों से सम्पर्क करने तथा अपनी कठिनाईयों को दूर करने का अवसर भी नहीं मिल पाता है। शिक्षार्थियों को जो

पाठ्य सामग्री लिखित या विभिन्न सम्प्रेषण माध्यमों से प्रदान की जाती है, वह सभी के लिए उपयुक्त भी नहीं होती है। तथा उससे उन्हें त्वरित पृष्ठपोषण भी नहीं मिल पाता है कभी कभी छात्रों द्वारा भेजे जाने वाले उत्तर पत्रक भी उनके द्वारा स्वयं हल किये हुए नहीं होते हैं बल्कि किसी अन्य द्वारा हल किये हुए होते हैं। अतः उनकी विश्वसनीयता संदिग्ध होती है।

9.5.1 दूरवर्ती शिक्षा में स्वतः मूल्यांकन:-

दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली में छात्रों को अनुदेशन सामग्री सामान्यतया: मुद्रित रूप में भेजी जाती है तथा इसका (विषय सामग्री) निर्माण अनुभवी शिक्षकों द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पंजीकृत शिक्षार्थी अधिक परिपक्व होते हैं तथा अपनी योग्यता में वृद्धि करना चाहते हैं। अतः वे अभिप्रेरित होते हैं। इसलिए उनमें स्वतः मूल्यांकन के द्वारा अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति की जानकारी की भी तीव्र इच्छा होती है। अतः अनुदेशन सामग्री की प्रत्येक इकाई के अन्त में स्वतः मूल्यांकन का प्रावधान विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। उनके उत्तर संकेत भी दिये जाते हैं। इससे शिक्षार्थी अपनी स्वतः मूल्यांकन कर सकता है। यदि अनुदेशन का सम्प्रेषण माध्यम रेडियो या दूरदर्शन होता है तब प्रथम इकाई के सम्प्रेषण के तुरन्त पश्चात् कुछ प्रश्न दिये जाते हैं जिनका उत्तर छात्रों को ढूँढना एवं लिखना होता है। बाद में द्वितीय इकाई के प्रसारण के समय प्रथम इकाई के प्रश्नों के सही उत्तर बतलाए जाते हैं। इस प्रकार छात्र अपना स्वतः मूल्यांकन करता है। तथा इस प्रविधि के प्रयोग से उन्हें पृष्ठपोषण भी मिलता है। गलत उत्तरों की जानकारी के पश्चात् छात्र सम्बन्धित विषय वस्तु को पुनः पढ़ने को अभिप्रेरित होता है। तथा सही उत्तर आगे पढ़ने के लिए सुनिश्चित करते हैं।

इस प्रणाली में शिक्षार्थियों को कुछ गृहकार्य भी दिये जाते हैं जो उन्हें प्रदान की गई अनुदेशन सामग्री पर आधारित होते हैं। छात्रों को इकाई के अध्ययन के पश्चात् गृहकार्य सम्भव होता है। इस प्रकार स्वतः मूल्यांकन दूरवर्ती शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

9.5.2 गृहकार्यों (सत्रीय कार्यों) का मूल्यांकन:

गृहकार्य को शिक्षार्थी द्वारा तर्क पूर्ण करके अध्ययन केन्द्र को भेजना तथा अध्ययन केन्द्र द्वारा उन उत्तर पत्रकों मूल्यांकित कर के उपयुक्त टिप्पणी के साथ शिक्षार्थी को वापस करना दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली का एक प्रमुख अंग है। यद्यपि इस कार्य में शिथिलता आने लगी है। किन्तु शिक्षार्थियों को पृष्ठ पोषण प्रदान करने की यह बहुत उपयोगी प्रविधि है। इसलिए इस कार्य की अनिवार्यता पर भी बल दिया जाता है। क्योंकि यह क्रिया नियमित रूप से समुचित ढंग से की जायें तो छात्रों के लिए बहुत लाभप्रद होती है। इसकी अनिवार्यता होने पर छात्र सम्पूर्ण अनुदेशन सामग्री की विधिवत अध्ययन करने का प्रयास करता है तथा मूल्यांकन छात्रों के उत्तर पत्रकों को समुचित ढंग से मूल्यांकित करता है एवं उपयुक्त टिप्पणी अंकित करता है।

इस प्रकार गृहकार्य में दिये गये प्रश्नों के उत्तरों को छात्रों से लिखवाना तथा उनकी जाँच के बाद पुनः उन्हें वापस करने का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थियों को पृष्ठपोषण प्रदान करना होता है। उत्तर पत्रकों पर शिक्षको द्वारा अंकित टिप्पणियों से छात्रों को सुझाव एवं निर्देशन भी प्राप्त होता है जिससे उन्हें आगे कार्य करने के सही ढंग का पता चलता है। किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मूल्यांकन कार्य को गम्भीरता से लिया जाना चाहिए तथा टिप्पणियाँ लिखने में पर्याप्त सावधानी रखी जानी चाहिए। उपयुक्त टिप्पणियाँ लिखना सरल कार्य नहीं होता है तथा प्रायः इसमें त्रुटियाँ की जाती हैं। अतः अगले अध्याय में इसकी विस्तृत चर्चा अलग से की गई है। इस प्रकार दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन प्रक्रिया औपचारिक शिक्षा से भिन्न होती है जिसके लिए शिक्षकों एवं मूल्यांकन प्रक्रियाओं को अलग से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

9.6 दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन तकनीकी की सीमाएं

दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन प्रक्रिया व प्रणाली काफी उपयोगी होता है परन्तु कुछ आधारों पर मूल्यांकन की प्रक्रिया का पालन करना कठिन प्रतीत होता है। दूरवर्ती शिक्षा में मूल्यांकन तकनीकी की अच्छाइयों के साथ साथ कुछ कमियाँ भी हैं जो निम्न हैं-

1. शिक्षार्थियों के प्रति शिक्षकों का उदासीन व्यवहार।
2. आवश्यकता से अधिक लचीलापन होना।
3. विषय वस्तु विशेषज्ञों का अभाव।
4. आधुनिक मूल्यांकन तकनीकियों के प्रति उदासीनता।
5. शिक्षकों का दूरस्थ शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण।
6. दूरस्थ शिक्षा में संरचनात्मक मूल्यांकन का अभाव।

अभ्यास प्रश्न-2

टिप्पणी:- नीचे दिये गये स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

प्रश्न 1. मूल्यांकन के प्रकार बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....
.....

प्रश्न 2. संरचनात्मक मूल्यांकन तथा संकलनात्मक मूल्यांकन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

प्रश्न 3. ग्रेडिंग व्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?

.....
.....
.....
.....
.....

प्रश्न 4. दूरवर्ती शिक्षा में दत्त कार्य का महत्व बताइये ।

.....
.....
.....
.....
.....

प्रश्न 5. दूरवर्ती शिक्षा में स्वतः मूल्यांकन पर प्रकाश डालिए।

.....
.....
.....
.....
.....

9.7 सारांश:

इस इकाई में हमने दूरशिक्षा में मूल्यांकन, प्रकार, तथा विभिन्न उपकरणों पर विचार किया है, निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन आदि के बीच में अन्तर बताया गया है, साथ ही साथ मूल्यांकन के विभिन्न प्रकार का प्रभावी ढंग से वर्णन किया गया है। ऐसा करने से अधिगमकर्ता के लिए मूल्यांकन की बाह्य व आन्तरिक प्रक्रिया को बनाने में सहयोग प्राप्त होगा।

9.8 शब्दावली:

पृष्ठपोषण: किसी कार्य के प्रति दी गयी राय या अनुक्रिया।

अभिरूचि: किसी वस्तु के प्रति व्यक्ति की इच्छा।

अभियोग्यता: कार्य करने की क्षमता ही व्यक्ति की अभियोग्यता है।

संरचनात्मक: योजना के पूर्व स्तरानुसार किया गया प्रयास।

योगात्मक: योजना के क्रियान्वित होने के बाद का आंकलन।

9.9 अभ्यास में प्रश्नों के उत्तर:

अभ्यास प्रश्न-1

उत्तर 1. मूल्यांकन एक शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के सन्दर्भ में छात्रों की प्रगति की जाँच की जाती है।

उत्तर 2. क. मापन परिमाणात्मक होता है जबकि मूल्यांकन परिमाणात्मक तथा गुणात्मक दोनों होता है।

ख. मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक होता है जबकि मापन का क्षेत्र व्यापक होता है।

उत्तर 3. मूल्यांकन की दो प्रविधियाँ होती हैं- परिमाणात्मक एवं गुणात्मक, परिमाणात्मक विधि मूल्यांकन की सबसे वैध व विश्वसनीय विधि होती है जबकि गुणात्मक विधि का मूल्यांकन में प्रयोग तभी करते हैं जब परिमाणात्मक विधि सफल नहीं हो पाती है।

अभ्यास प्रश्न-2

उत्तर 1. मूल्यांकन के मुख्य रूप से दो प्रकार होते हैं- (क) संरचनात्मक मूल्यांकन (ख) योगात्मक मूल्यांकन, इसके अतिरिक्त आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यांकन, औपचारिक व अनौपचारिक मूल्यांकन आदि हैं।

उत्तर 2. संरचनात्मक मूल्यांकन तथा संकलनात्मक मूल्यांकन में अन्तर- संरचनात्मक मूल्यांकन यह सतत् मूल्यांकन होता है जबकि संकलनात्मक मूल्यांकन वार्षिक या कार्य योजना के अन्तिम स्तर किया जाता है। इसलिये सूक्ष्म शिक्षण को संरचनात्मक मूल्यांकन और अभ्यासात्मक शिक्षण को संकलनात्मक मूल्यांकन कहा जाता है।

उत्तर 3. ग्रेडिंग प्रणाली मापन के परिणामों का उल्लेख करने के लिए जब आंकिक स्तर दिया जाता है यही ग्रेडिंग प्रणाली कही जा सकती है। दूसरे शब्दों में शिक्षार्थी के गुणात्मक अन्तर को समाप्त करने के लिए जिस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है वह ग्रेडिंग प्रणाली कहलाती है।

उत्तर 4. दूरवर्ती शिक्षा में दत्तकार्य का महत्त्व इसलिए है, कि दत्तकार्य शिक्षार्थी का सम्पूर्ण उपलब्धि के प्रांसागिक रूप से सतत् आकलन करता है। दूसरे शब्दों में दत्तकार्य किसी भी पाठ्यक्रम का सहगामी आकलन का आधार होता है।

उत्तर 5. दूरवर्ती शिक्षा में स्वतः मूल्यांकन- किसी भी कार्य के आकलन का निर्धारण उसके निष्पत्ति से माना जाता है, जिसका आधार मूल्यांकन होता है। दूरवर्ती शिक्षा में शिक्षार्थी अनुदेशन सामग्री के द्वारा सतत् स्वतः मूल्यांकन की प्रक्रिया करता रहता है।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

दूरवर्ती शिक्षा: डॉ० सिया राम यादव

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन: वर्मा एवं उपाध्याय

दूरवर्ती शिक्षा: इग्नू पाठ्यसामग्री,

9.11 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

शिक्षा मनोविज्ञान: डॉ० एस० के० मंगल,

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ: डॉ० एस० पी० गुप्ता,

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. दूरवर्ती शिक्षा की मूल्यांकन व्यवस्था सरल है, सिद्ध कीजिये।

प्रश्न 2. संरचनात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन को उदाहरण सहित समझाइये।

प्रश्न 3. मापन व मूल्यांकन का आधार शैक्षिक उद्देश्य होता है, प्रमाणित कीजिए।

प्रश्न 4. पाठ्यसामग्री एवं अनुदेशन सामग्री का मूल्यांकन कैसे करते हैं? व्याख्या कीजिए।

इकाई 10: मुक्त एवं दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श का संप्रत्यय, आवश्यकता व महत्व (Concept, Need and Importance of Counseling in Open and Distance Education)

इकाई की रूपरेखा

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 परामर्श सेवा
 - 10.3.1 परामर्श का अर्थ
 - 10.3.2 परामर्श के प्रकार
 - 10.3.3 परामर्श के कार्य
- 10.4 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा
 - 10.4.1 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श की आवश्यकताएँ
 - 10.4.2 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श विधि
- 10.5 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा की व्यवस्था एवं सीमाएँ
- 10.6 सारांश
- 10.7 शब्दावली
- 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.10 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो मनुष्य - जीवन के प्रत्येक मोड़ पर उसका विकास एवं प्रगति करती है। दूरवर्ती शिक्षा, शिक्षा की एक वैकल्पिक प्रणाली है जो पत्राचार मुक्त एवं स्वतः अध्ययन आदि रूपों से समाज की सेवा प्रदान करती है। परामर्श सेवा शिक्षा का एक अभिन्न अंग है, दूरवर्ती सेवा में परामर्श सेवा से संबन्धित पंचम इकाई है इससे पहले की इकाई के अध्ययनोपरांत आप दूरवर्ती शिक्षा के मूल्यांकन तकनीकी के महत्व एवं आवश्यकता को स्पष्ट कर सकते हैं। इस इकाई में परामर्श की आवश्यकता एवं उसके विभिन्न प्रकारों की विस्तृत व्याख्या दूरवर्ती शिक्षा के सन्दर्भ में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप मुक्त एवं दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श का संप्रत्यय, आवश्यकता व महत्व का अध्ययन कर सकेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरान्त आप

- परामर्श का अर्थ एवं प्रकार को बता सकेंगे।
- विभिन्न परामर्शों में अन्तर स्थापित कर सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा के परामर्श सेवा की व्याख्या कर सकेंगे।
- विभिन्न परामर्श सेवा क्या है ? इस पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- परामर्श की प्रमुख विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा की सीमाएँ बता सकेंगे।

10.3 परामर्श सेवा

दूरवर्ती शिक्षा के विकास के साथ-साथ दूरवर्ती शिक्षण एवं स्वतः अनुदेशनात्मक सामग्री की गुणवत्ता में सुधार भी निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में कुछ अध्ययन भी दिये गये हैं। इन अध्ययनों के निष्कर्ष से यह स्पष्ट पता चलता है कि दूरवर्ती शिक्षार्थी को दूरवर्ती शिक्षण से कुछ और अधिक सहायता की आवश्यकता होती है। दूरवर्ती शिक्षार्थी को अपने अध्ययन प्रक्रिया के अन्तर्गत जिन प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता है उन्हें प्रमुख रूप से तीन वर्गों में रखा जा सकता है:

1. शिक्षार्थी के अध्ययन कौशलों/आदतों से सम्बन्धित समस्याएँ।
2. मुद्रित अनुदेशनात्मक माध्यम से सम्बन्धित समस्याएँ तथा
3. मनो-सामाजिक अवरोधों या विवशताओं से सम्बन्धित समस्याएँ।

इनमें से उपर्युक्त दो वर्गों की समस्याओं के सम्बन्ध में आप पिछले अध्यायों में अलग-अलग ढंग से चर्चा कर चुके हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए दूरवर्ती शिक्षार्थी, शिक्षक अथवा किसी सलाहकार या परामर्शदाता की आवश्यकता का अनुभव करता है।

दूरवर्ती शिक्षार्थी को अनेक मनो-सामाजिक अवरोधों का भी सामना करना पड़ता है। यह अवरोध प्रमुख रूप से पाठ्यक्रम एवं अध्ययन के सम्बन्ध में निर्णय लेने तथा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं संस्थानिक समस्याओं से सम्बन्धित होते हैं। इसके निराकरण के लिए शिक्षार्थी एवं शिक्षक के

बीच आमने-सामने के सम्पर्क की आवश्यकता होती है। अतः दूरवर्ती शिक्षार्थियों की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं द्वारा परामर्श सेवा की भी व्यवस्था की जाती है। दूरवर्ती शिक्षार्थियों के लिए परामर्श सुविधा बहुत अधिक लाभप्रद एवं महत्वपूर्ण होती है। इसलिए परामर्श सेवा को दूरवर्ती शिक्षा की एक सहायक प्रणाली माना जाता है। दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा में महत्व की दृष्टि से ही इस अध्याय में परामर्श के विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया गया है।

दूरवर्ती शिक्षा में विद्यार्थियों को सहायता प्रदान करने के ढंग

सभी प्रकार की शिक्षा प्रणालियों में शिक्षार्थी के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। ये आवश्यकताएँ शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं परामर्श पक्षों से सम्बन्धित होती हैं। शिक्षार्थियों के लिए इन आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम उसका शिक्षक होता है। अतः शिक्षक को शिक्षण प्रदान करने के साथ-साथ एक प्रशासक एवं परामर्शदाता की भूमिका का भी निर्वहन करना होता है।

दूरवर्ती शिक्षा में भी शिक्षार्थियों को शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं परामर्श सम्बन्धी कार्यों हेतु शिक्षक से सहायता की आवश्यकता होती है। शिक्षक इसके लिए विभिन्न प्रकार से सहायता करता है। शिक्षक द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता को निम्नांकित तीन वर्गों एवं नौ उपवर्गों में रखा जा सकता है-

(क) शिक्षण सम्बन्धी सहायता: शिक्षण, पृष्ठपोषण, व ग्रेडिंग

(ख) प्रशासनिक सहायता: कार्य- अध्ययन हेतु शिक्षार्थियों की सामान्य आवश्यकताओं एवं कमियों को पूरा करना, नियमन - संस्थानिक नियमों को संदर्भित करना, व आकलन - प्रवेश योग्यता की जाँच।

(ग) परामर्श: सूचना प्रदान करना, सलाह देना - व्यक्तिगत समस्याओं एवं अध्ययन के ढंग आदि हेतु, परामर्श - भावी जीवन में प्रगति हेतु सही पाठ्यक्रम चुनने तथा उसमें अच्छी सफलता प्राप्त करने हेतु।

उपर्युक्त वर्गीकरण सामान्य शैक्षणिक अनुभवों पर आधारित है। शिक्षक इनके अतिरिक्त अन्य कुछ तरीकों से भी शिक्षार्थी की सहायता कर सकता है। यहाँ हमारा उद्देश्य परामर्श सम्बन्धी सहायता को महत्व प्रदान करना है। दूरवर्ती शिक्षण के सम्बन्ध में हम पूर्व अध्याय में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं। प्रशासनिक सहायता सामान्यतया नियमबद्ध होती है तथा उनकी जानकारी संस्था की विवरणिका एवं मैनुअल आदि से प्राप्त की जा सकती है। चूंकि इस अध्याय में हम परामर्श के विभिन्न पहलुओं का विवेचन करना चाहते हैं, अतः हम अपना ध्यान इसी बिन्दु पर केन्द्रित रख रहे हैं।

10.3.1 परामर्श का अर्थ

परामर्श का शाब्दिक अर्थ विचार-विमर्श, पूछ-ताछ, सलाह, तर्क-वितर्क तथा विचारों का पारस्परिक विनियम करना है। किन्तु शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त परामर्श के कुछ अन्य पक्ष भी हैं। अनेक विद्वानों द्वारा इन्हीं पक्षों पर पर प्रकाश डालते हुए परामर्श के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अतः परामर्श के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों द्वारा प्रस्तुत इसकी परिभाषाओं को उद्धृत करना अधिक उपयुक्त होगा।

गिलबर्ट रेन के अनुसार, “सर्वप्रथम वैयक्तिक होता है। इसे समूह के साथ सम्पादित नहीं किया जा सकता है। ‘सामूहिक परामर्श’ एक असंगत पद है। इन दोनों शब्दों में सामंजस्य नहीं है। व्यक्तिगत परामर्श एक ही बात को दो शब्दों में कहने जैसा है। क्योंकि परामर्श सदैव वैयक्तिक या व्यक्तिगत होता है।”

जार्ज ई० मायर्स ने परामर्श को इस प्रकार परिभाषित किया है, “परामर्श का कार्य तब सम्पन्न होता है जब यह व्यक्ति को अपने आप निर्णय लेने तक पहुँचने में बुद्धिमतापूर्ण प्रक्रिया को अपनाने में सहायता प्रदान करता है। परामर्श स्वयं उसके लिए निर्णय नहीं लेता है। परामर्श प्रक्रिया में सेवार्थी हेतु परामर्शदाता द्वारा निर्णय लेना उतना ही असंगत होता है। जितना कि बीजगणित के शिक्षण में शिक्षक द्वारा शिक्षार्थी के लिए समस्या का समाधान स्वयं कर देना।”

राबिन्सन ने परामर्श को अधिक स्पष्ट करने को प्रयास किया है। उसके अनुसार, “परामर्श के अन्तर्गत वे समस्त परिस्थितियाँ सम्मिलित कर ली जाती हैं जिनके आधार पर प्रार्थी या सेवार्थी को अपने वातावरण से समायोजन स्थापित करने में सहायता मिलती है। परामर्श का सम्बन्ध दो व्यक्तियों से होता है- परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। कोई भी परामर्शप्रार्थी अपनी समस्याओं का समाधान बिना किसी सुझाव के स्वयं ही करने में सक्षम नहीं हो पाता है। इसके लिए वैज्ञानिक सुझावों की आवश्यकता होती है। इस वैज्ञानिक सुझाव ही परामर्श कहलाता है।

रूथ स्ट्रॉंग ने परामर्श को संयुक्त प्रयास एवं परामर्शप्रार्थी के आत्मबोध को महत्व प्रदान करते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है-

“परामर्श प्रक्रिया एक संयुक्त प्रयास है। विद्यार्थी का दायित्व स्वयं को समझने का प्रयास करना, उस दिशा को समझना जिसमें उसे जाना चाहिए तथा समस्याओं के उत्पन्न होने पर उनके समाधान हेतु आत्म विश्वास जागृत करना होता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता का उत्तरदायित्व विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार उसे सहायता प्रदान करने हेतु तत्पर रहना होता है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं में परामर्श की विशेषताओं, उद्देश्यों एवं कार्यों का विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उल्लेख किया है। इन सभी परिभाषाओं से परामर्श के कुछ प्रमुख विशेषताओं एवं तत्वों का पता चलता है। ये विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. परामर्श वैयक्तिक सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है।
2. यह प्रक्रिया दो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित होती है।
3. परामर्श के द्वारा शिक्षार्थी को अपनी समस्याएँ स्वयं हल करने के योग्य बनाया जाता है।
4. इस प्रक्रिया से परामर्शार्थी को स्वयं अपने को समझने तथा अपनी समस्याओं के समाधान हेतु मार्ग ढूँढने में सहायता मिलती है।
5. इस प्रक्रिया में परामर्शदाता सम्पूर्ण परिस्थितियों के आधार पर परामर्शार्थी को कुछ ऐसे वैज्ञानिक सुझाव देता है जिससे वह अपना समायोजन स्वयं कर सके।
6. परामर्श में सुझावों अथवा निर्णयों को शिक्षार्थी पर थोपा नहीं जाता है अपितु वह स्वयं उन्हें स्वीकार करता है।
7. परामर्श प्रक्रिया में विचार-विमर्श के अनेक साधन हो सकते हैं।
8. प्रत्येक परामर्श साक्षात्कार पर आधारित होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर परामर्श के अर्थ को इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है कि परामर्श एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साक्षात्कार के माध्यम से दो व्यक्तियों के मध्य विचार-विमर्श होता है। इन दोनों व्यक्तियों-परामर्शदाता एवं परामर्शार्थी के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध का होना इस प्रक्रिया की प्राथमिक आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विचार-विमर्श का उद्देश्य परामर्शार्थी को इस योग्य बनाना होता है कि वह अपनी समस्याओं का हल खोजने में सक्षम हो सके तथा अपने सम्बन्ध में स्वयं निर्णय ले सके।”

10.3.2 परामर्श के प्रकार

परामर्श को कई ढंगों से वर्गीकृत किया जा सकता है। परामर्श के अनेक प्रकार होते हैं किन्तु हम यहाँ पर ‘छात्र परामर्श’ पर ही मुख्य रूप से अपना ध्यान केन्द्रित रखेंगे।

परामर्श के अर्थ को स्पष्ट करते समय हम उल्लेख कर चुके हैं कि परामर्श प्रक्रिया के अन्तर्गत तीन क्रियाएँ-सूचना देना, सुझाव देना एवं परामर्श देना निहित होती हैं। यह परामर्श का एक क्रिया आधारित वर्गीकरण है जिसे सूचना-सुझाव-परामर्श वर्णक्रम के नाम से जाना जाता है।

शिक्षार्थी परामर्श प्रक्रिया में क्रिया आधारित जाब स्पेक्ट्रम वर्गीकरण अधिक महत्वपूर्ण है। इस वर्गीकरण से सम्बन्धित परामर्श के दो अन्य वर्गीकरण निम्नांकित हैं -

1. विकासात्मक परामर्श एवं समस्या-समाधान परामर्श
2. शैक्षिक परामर्श एवं गैर शैक्षिक परामर्श

विकासात्मक/समस्या-समाधान परामर्श, क्रिया एवं प्रकरण आधारित वर्गीकरण है तथा शिक्षार्थी के सम्मुख उत्पन्न दो प्रमुख मुद्दों-निर्णय बिन्दु एवं अवरोधों से सीधे सम्बन्धित है। इसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है-

1. विकासात्मक परामर्श: इस प्रकार का परामर्श शिक्षार्थी की प्रगति एवं विकास से सम्बन्धित होता है। शिक्षार्थी को सही निर्णय बिन्दु पर पहुँचने में इस प्रकार का परामर्श महत्वपूर्ण होता है। अतः इस प्रकार के परामर्श में निम्नांकित मुद्दे सम्मिलित होते हैं-

प्रवेश पूर्व मुद्दे: जैसे पाठ्यक्रम सम्बन्धी सूचना, वैकल्पिक पाठ्यक्रमों एवं संस्थाओं सम्बन्धी जानकारी, पूर्व तैयारी के लिए सुझाव, लक्ष्य स्पष्टीकरण, समय निर्धारण, संस्थानिक सूचनाएँ, प्रवेश-पूर्व आवश्यकताओं एवं योग्यताओं से सम्बन्धित सूचनाएँ आदि।

प्रवेश सम्बन्धी मुद्दे: जैसे संस्थानिक आवश्यकताएँ, दूर अध्ययन के प्रति अभिविन्यास, अध्ययन कौशल, सत्रीय कार्यों की तैयारी आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ एवं सुझाव।

पाठ्यक्रम चयन: जैसे विभिन्न पाठ्यक्रमों की जानकारी, पाठ्यक्रमों की मान्यता, अध्ययन का कठिनाई स्तर, पाठ्यक्रम के लिए पूर्व आवश्यकताएँ एवं योग्यताएँ, दूसरे पाठ्यक्रमों से सम्बन्ध, संभावित भावी कैरियर आदि सम्बन्धी सुझाव।

भावी व्यवसाय चयन: जैसे रोजगारों की सामान्य जानकारी, विशिष्ट रोजगार एवं उसके लिए अध्ययन छोड़ने की स्थिति: जैसे ऐसा स्थिति उत्पन्न होने के कारणों को स्पष्ट करना, तनाव एवं असन्तोष दूर करने में मदद करना, वैकल्पिक पाठ्यक्रम अध्ययन की ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रोत्साहन आदि।

आगे बढ़ने हेतु अभिप्रेरणा: जैसे- अध्ययन के लक्ष्यों का स्पष्टीकरण, आगे बढ़ते रहने हेतु बार-बार अभिप्रेरित करना, शिक्षार्थी के लक्ष्यों को उपयुक्त पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित करना, समय एवं जीवन की मांगों को व्यवस्थित करना आदि।

विकासात्मक परामर्श अपेक्षाकृत सरल होता है। इसमें शिक्षार्थी दबाव एवं जल्दबाजी की स्थिति में नहीं होता तथा उसे उपयुक्त दिशा में बढ़ने हेतु पर्याप्त समय होता है।

समस्या-समाधान परामर्श: समस्या-समाधान परामर्श शिक्षार्थी की प्रगति के मार्ग में आने वाले अवरोधों का उपयुक्त समाधान होता है। कुछ प्रमुख अवरोध एवं उन्हें दूर करने हेतु परामर्श एवं तत्सम्बन्धी उपाय अगांकित है।

अध्ययन सम्बन्धी अवरोध - जैसे-उपयुक्त अध्ययन विधियों का विकास, अध्ययन की गति एवं अवधान में सुधार, दूरवर्ती अधिगम का अनुशीलन, निषेधात्मक अध्ययन आदतों को दूर करना (जैसे-सत्रीय कार्य समय से पूरा न करना, स्वयं जाँच प्रश्नों को न हल करना आदि), समूह अध्ययन विधि का विकास आदि के द्वारा शिक्षार्थी को सहायता करना है।

समय सम्बन्धी अवरोध: जैसे-उपलब्ध समय को व्यवस्थित एवं वर्गीकृत करना-कार्यों एवं क्रियाओं को प्राथमिकता क्रम प्रदान करना, अनावश्यक कार्यों को छोड़ना, लक्ष्यों के प्रति अभिप्रेरणा प्रदान करना चाहता है।

व्यक्तिगत अवरोध - जैसे-अस्वस्थता, अयोग्यता, विवाह-विच्छेद, बच्चों की देखरेख, गहरा शोक, अधिक उम्र, बेरोजगारी, काम का दबाव आदि अवरोधों को दूर करने एवं उनसे बचने के उपायों को अपनाने में शिक्षार्थी की सहायता करना।

संस्थागत अवरोध: जैसे-व्यवस्था की कमियों से निपटना, कुछ जटिल नियमों के विरुद्ध विशिष्ट वादों की अपत्ती, शिक्षा को एवं मूल्यांकनकर्ताओं को परिवर्तित करना, अनुदेशन सामग्री सम्प्रेषण में विलम्ब आदि अवरोधों को दूर करने हेतु सुझाव देना।

परीक्षा-भय: जैसे परीक्षा की अच्छी तैयारी न होना, असफल होने का डर, अच्छे अंक न आ सकने का डर, परीक्षा में अच्छी तरह न लिख पाना आदि के डर शिक्षार्थी को मुक्त करने हेतु प्रोत्साहित करना।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि शैक्षिक परामर्शदाता की अपनी सीमाएँ होती हैं। शिक्षार्थी की अध्ययन सम्बन्धी, समय-सम्बन्धी, संस्थागत एवं व्यक्तिगत अवरोधों से निपटने में वह अपनी योग्यता, अनुभव एवं कौशल के आधार पर ही परामर्श दे सकता है। शिक्षार्थी की जटिल व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान उच्चस्तरीय परामर्श अर्थात् मनो-चिकित्सा से सम्भव होता है। मनो-चिकित्सा परामर्श हेतु विशिष्ट चिकित्सकों की आवश्यकता होती है।

2. शैक्षिक एवं गैर-शैक्षिक परामर्श- परामर्श का यह वर्गीकरण प्रकरण आधारित होता है। इसके द्वारा विभिन्न उपयोगी वैकल्पिक स्वरूपों की जानकारी प्रदान की जाती है।

शैक्षिक परामर्श के अन्तर्गत समस्त पाठ्यक्रम एवं पाठ्यक्रम आधारित प्रकरण समाहित होते हैं। उदाहरणार्थ-अध्ययन की तैयारी, अध्ययन सम्बन्धी कठिनाइयाँ परीक्षण तकनीक आदि। शैक्षिक परामर्श कुछ विशिष्ट ज्ञानात्मक मुद्दों से सम्बन्धित होता है।

गैर-शैक्षिक परामर्श सामान्य एवं भावात्मक मुद्दों से सम्बन्धित होता है जैसे-पाठ्यक्रम चयन, सामान्य अध्ययन सम्बन्धी कठिनाइयाँ परीक्षा भय आदि।

शैक्षिक एवं गैर-शैक्षिक दोनों प्रकार के परामर्श प्रवेश-पूर्व, प्रवेश के समय, पाठ्यक्रम अध्ययन के समय, परीक्षा के समय तथा अध्ययन के पश्चात् की अवस्थाओं में प्रदान किये जा सकते हैं। शैक्षिक परामर्श का सीधा सम्बन्ध शिक्षक से होता है जबकि गैर-शैक्षिक परामर्श सेवा की व्यवस्था केन्द्रीय संस्था का कार्य होता है।

दूरवर्ती शिक्षार्थियों को शैक्षिक एवं गैर-शैक्षिक दोनों प्रकार के परामर्श की आवश्यकता होती है। दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं द्वारा अपने क्षेत्रीय केन्द्रों एवं अध्ययन केन्द्रों के माध्यम से इन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है। सामान्यतया अध्ययन केन्द्र के शिक्षक ही परामर्शदाता की भूमिका निभाते हैं तथा प्रत्येक रविवार एवं अवकाश के दिनों में इन केन्द्रों पर परामर्श हेतु शिक्षार्थियों को बुलाया जाता है।

10.3.3 परामर्श के प्रक्रिया

परामर्श प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में तीन क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं- सूचना प्रदान करना, सुझाव देना एवं परामर्श प्रदान करना। इन क्रियाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

- 1. सूचना प्रदान करना:** सूचना प्रदान करने से तात्पर्य परामर्शदाता द्वारा सेवार्थी को सही एवं उपयुक्त सूचना देने से होता है। शिक्षार्थियों विशेष रूप में अपने अध्ययन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती है।
- 2. सुझाव देना:** कई विकल्पों में से सेवार्थी (छात्र) के लिए उपयुक्त विकल्प का सुझाव देना। उदाहरणार्थ - इंजीनियरिंग को भावी व्यवसाय के रूप में अपनाने को इच्छुक विद्यार्थी को परामर्शदाता इस प्रकार का सुझाव दे सकता है कि गणति के दो पाठ्यक्रमों में से आपके लिए व्यावहारिक गणति कोर्स अधिक उपयुक्त रहेगा।
- 3. परामर्श:** शिक्षार्थियों को उनकी आवश्यकताओं, भावनाओं अथवा अभिप्रेरणाओं को स्पष्ट करने में उनकी सहायता करना जिससे वे अपने लिए उपयुक्त निर्णय ले सकें।

उपयुक्त तीनों क्रियाओं में बहुत सूक्ष्म अन्तर है। सूचना प्रदान करने में ज्ञान पर अधिक बल होता है तथा शिक्षार्थी पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। परामर्श शिक्षार्थी केन्द्रित होता है तथा इसमें परामर्शदाता को ज्ञान की अपेक्षा शिक्षार्थी केन्द्रित होता है तथा इसमें परामर्शदाता को ज्ञान की

अपेक्षा शिक्षार्थी के कौशलों को स्पष्ट करने में सहायता करना होता है। सुझाव देना ज्ञान एवं शिक्षार्थी दोनों पर आधारित होता है तथा यह सूचना देने एवं परामर्श के बीच की स्थिति होती है।

परामर्श प्रक्रिया में शिक्षार्थी को किस प्रकार की क्रिया से सन्तुष्ट किया जाना चाहिए, यह उससे विभिन्न प्रकार के प्रश्न करके जाना जा सकता है।

परामर्श प्रक्रिया के तीन मुख्य अंग होते हैं-

1. परामर्श के लक्ष्य
2. परामर्शप्राथी या सेवार्थी या उपबोध
3. परामर्शी अथवा परामर्शदाता

लक्ष्यों को निर्धारित करने में सेवार्थी की रुचियों, आवश्यकताओं, भावनाओं एवं वातावरण को ध्यान में रखना होता है। परामर्श का लक्ष्य शिक्षार्थी को स्वयं कार्य कर सकने तथा अधिक परिपक्व ढंग से विचार-विमर्श करने में सहायता प्रदान करना होना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षार्थी को स्वयं अपनी योग्यताओं एवं समभाव्यताओं को ज्ञात करने तथा सामाजिक विकास में उनका उपयोग कर सकने के सम्बन्ध में उनकी सहायता करना परामर्श का लक्ष्य माना जाता है। इस प्रकार परामर्श के तीन प्रमुख उद्देश्य माने जा सकते हैं-

1. **आत्म ज्ञान:** व्यक्ति को अपने बारे में ज्ञान कराना अर्थात् उसकी योग्यता, शक्ति एवं सम्भाव्यताओं को पहचानने एवं समझने में मदद करना।
2. **आत्म स्वीकृति:** व्यक्ति को उसके बारे में ज्ञान कराने के साथ-साथ उसे स्वीकार करने के लिए भी उसको तैयार करना जिससे सेवार्थी को कोई श्रम भ्रम न रहे।
3. **सामाजिक सामंजस्य:** व्यक्ति को संकीर्ण चिन्तन से मुक्त करके सामाजिक जीवन में सभी के लिए सहायक बनने हेतु अभिप्रेरित करना।

अतः परामर्श सेवा से शिक्षार्थी को व्यक्तिगत स्तर पर सहायता करने तथा इस प्रणाली के दोषों से उत्पन्न समस्याओं से निपटने में सुविधा होती है।

दूरवर्ती अधिगम प्रक्रिया की विशेषताएँ - दूरवर्ती शिक्षा की अधिगम प्रक्रिया औपचारिक शिक्षा से भिन्न होती है। इसमें शिक्षार्थी को सर्वाधिक उपयुक्त अधिगम आव्यूहों अथवा अध्ययन कौशलों की एक प्रभावशाली व्यवस्था विकसित करनी होती है। किन्तु सभी दूरवर्ती शिक्षार्थी स्वयं अपने आप ऐसा नहीं कर पाते हैं तथा उन्हें सहायता की आवश्यकता होती है।

अतः स्व-शिक्षण हेतु उपयुक्त व्यक्तिगत अधिगम आव्यूह के विकास में शिक्षार्थी की सहायता हेतु परामर्श महत्वपूर्ण होता है।

10.4 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा

यद्यपि परामर्श सेवा का प्रयोग सभी प्रकार की शिक्षा प्रणालियों में किया जाता है। किन्तु दूरवर्ती शिक्षा में इसका अपना विशेष महत्व है। दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श का महत्व इसकी अपनी तीन विशिष्टताओं के कारण है-

1. दूरवर्ती शिक्षार्थियों की विशेषताएँ,
2. दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं की विशेषताएँ तथा
3. दूरवर्ती अधिगत प्रक्रिया की विशेषताएँ।

1. दूरवर्ती शिक्षार्थियों की विशेषताएँ: दूर शिक्षा का विद्यार्थी, नियमित स्कूली विद्यार्थियों से भिन्न होता है। उसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार की होती हैं-

- दूरवर्ती शिक्षार्थी को किसी-न-किसी प्रकार का पूर्व शैक्षिक अनुभव होता है जो सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता है।
- दूरवर्ती शिक्षार्थी अपने सहपाठियों एवं संस्था से अलग-थलग होता था।
- दूरवर्ती शिक्षार्थी की आय: कुछ अपनी व्यक्तिगत एवं घरेलू प्रतिबद्धताएँ होती है।
- दूरवर्ती शिक्षार्थी विभिन्न शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक पृष्ठभूमि वाले होते हैं।
- दूरवर्ती शिक्षार्थी की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले तथा उनके भावी जीवन के लिए उपयुक्त होने पर ही वे दूर शिक्षा के पाठ्यक्रमों में रुचि लेते हैं।
- दूरवर्ती शिक्षार्थी अपने प्राथमिक कर्तव्यों के निर्वहन के कारण पाठ्यक्रमों हेतु कम समय दे पाते हैं।

दूरवर्ती शिक्षार्थियों की उपर्युक्त विशिष्टताओं के कारण उन्हें परामर्श प्रदान करना आवश्यकत होता है क्योंकि बिना परामर्श के उनकी वास्तविक आवश्यकताओं, घर एवं व्यवसाय की अन्तर्विरोधी मांगों, पृथकता की समस्या तथा पूर्व अनुभवों आदि को जाना एवं समझा नहीं जा सकता है।

2. दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं की विशेषताएँ: दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

दूर स्थित होना: यद्यपि दूरवर्ती शिक्षण संस्थानों के अपने क्षेत्रीय केन्द्र एवं अध्ययन केन्द्र होते हैं किन्तु केन्द्रीय संस्था प्रायः शिक्षार्थी से बहुत दूर स्थित होती है। अतः त्वरित सम्प्रेषण एवं संचार सुविधा के अभाव में शिक्षार्थियों को आवश्यक सामग्री एवं सूचना प्राप्त नहीं हो पाती है।

जटिल प्रशासनिक व्यवस्था: दूरवर्ती शिक्षा में छात्रों का नामांकन, प्रवेश प्रक्रिया, सामग्री निर्माण, वितरण, सत्रीय कार्य, परीक्षा एवं मूल्यांकन आदि की व्यवस्था अलग-अलग प्रशासनिक एवं शैक्षणिक इकाइयों द्वारा की जाती है। यह प्रणाली बड़ी संख्या में छात्रों से निपटने के लिए तो ठीक होती है। किन्तु व्यक्तिगत स्तर पर छात्र से निपटने में इसमें लचीलापन न होने से छात्र को हानि हो सकती है।

10.4.1 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श की आवश्यकताएँ-

दूरवर्ती शिक्षार्थी को मुख्य रूप से दो अवसरों पर परामर्श की आवश्यकता पड़ती है-

1. किसी निर्णय बिन्दु पर पहुँचने में तथा
2. किसी अवरोध के उत्पन्न होने पर

निर्णय बिन्दु पर पहुँचने में- दूरवर्ती शिक्षार्थी को कई स्तरों पर निर्णय बिन्दुओं पर पहुँचना होता है। उदाहरणार्थ-

- कौन-सा पाठ्यक्रम चुना जाये?
- किसी पाठ्यक्रम विशेष के लिए आवेदन किया जाए अथवा नहीं?
- क्या पाठ्यक्रम को जारी रखा जाये या छोड़ दिया जाये?
- पाठ्यक्रम से किस लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है तथा भविष्य में इससे किस प्रकार की सम्भावनाएँ हो सकती है?
- अध्ययन के लिए कितना समय लगाना चाहिए?

उपर्युक्त उदाहरण मौलिक निर्णय बिन्दुओं से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त कुछ कम महत्व के निर्णय बिन्दु भी हो सकते हैं जैसे-सत्रीय कार्य को पूर्ण करने या छोड़ने, उपयुक्त अध्ययन अथवा निबन्ध लेखन विधि को अपनाने आदि के सम्बन्ध में निर्णय की आवश्यकता होती है। इन निर्णयों हेतु परामर्श से शिक्षार्थी की सहायता की जा सकती है।

अवरोध उत्पन्न होने पर- दूरवर्ती शिक्षार्थी के अध्ययन की प्रगति में अनेक स्तरों पर अवरोध उत्पन्न हो सकते हैं। ये अवरोध निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं-

1. **अध्ययन से सम्बन्धित** - प्रभावी अध्ययन का तरीका ढूँढने, सत्रीय कार्य पूर्ण करने, परीक्षा की अच्छी तैयारी करने आदि के मार्ग के उत्पन्न अवरोध।
2. **समय से सम्बन्धित** - विभिन्न कार्यों , अध्ययन, घरेलू दायित्वों आदि के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त समय की अनुपलब्धता।
3. **व्यक्तिगत अवरोध** - आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, व्यवसाय सम्बन्धी एवं घरेलू अवरोध।
4. **संस्थागत अवरोध** - संस्था के नियमों की जटिलता, कार्य निष्पादन में कठिनाई, डाक प्रेषण में विलम्ब आदि।

उपर्युक्त मौलिक अवरोधों के अतिरिक्त कुछ छोटे अवरोध भी शिक्षार्थी के लिए कठिनाई उत्पन्न करते हैं, जैसे-शिक्षक द्वारा सत्रीय कार्य की जाँच करके विलम्ब से लौटाना, छुट्टियों का गलत समय पर होना, काम का अधिक दबाव होना आदि।

गहन परामर्श से इन अवरोधों का विश्लेषण करके उन्हें दूर करने के उपायों के ढूँढने में शिक्षार्थी की सहायता की जा सकती है। परामर्श की शुरुआत शिक्षार्थी अथवा परामर्शदाता में से किसी एक के द्वारा की जा सकती है। परामर्श प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु परामर्शदाता को अपने सहयोगी शिक्षकों से भी परामर्श की आवश्यकता होती है।

10.4.2 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श विधि-

परामर्श प्रक्रिया के संचालन में अग्रलिखित तीन मान्यताएँ अन्तर्निहित होती हैं-

उपर्युक्त मान्यताओं की दृष्टि से परामर्श के कई प्रकार के माध्यम हो सकते हैं। दूरवर्ती शिक्षा में हम आमने-सामने, पत्राचार, दूरभाष, दूरदर्शन एवं रेडियों प्रसारण आदि माध्यमों का प्रयोग करते हैं। दूरवर्ती शिक्षार्थियों को परामर्श देने हेतु भी इन्हीं माध्यमों एवं इनके कुछ अन्य रूपों का प्रयोग किया जाता है। इन विभिन्न माध्यमों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है-

1. साक्षात्कार माध्यम: सभी प्रकार के परामर्श में साक्षात्कार विधि सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रचलित है। व्यक्ति की मनोवृत्ति, भावनाओं, विचारों, समस्याओं एवं गुणों के अध्ययन एवं विश्लेषण में यह सर्वाधिक उपयोगी विधि अथवा माध्यम है।

साक्षात्कार विधि के अन्तर्गत परामर्शदाता एवं सवार्थी एक-दूसरे से अमाने-सामने अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध स्थापित कर वार्तालाप करते हैं तथा विचारों का आदान-प्रदान करते हुए किसी विषय अथवा समस्या के निर्णायक बिन्दु पर पहुँचते हैं। दूरवर्ती शिक्षा भी परामर्श हेतु इस विधि को प्रयुक्त किया जाता है।

2. **समूह परामर्श विधि:** यह भी परामर्श का प्रत्यक्ष माध्यम है किन्तु इसमें परामर्शप्रार्थी अर्थात् सेवार्थी एक से अधिक की संख्या अर्थात् समूह के रूप में परामर्शदाता के सम्मुख उपस्थित होते हैं।

यद्यपि इस विधि में परामर्शदाता एवं सेवार्थी के मध्य एक से एक सम्बन्ध नहीं स्थापित हो पाता है किन्तु दूसरे प्रकार की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी होती हैं क्योंकि इसमें सेवार्थियों को एक दूसरे को तथा उनकी समस्याओं को जानने-समझने का अवसर प्राप्त होता है। इससे उन्हें यह भी पता लगता है कि उनकी समस्या उनकी अपनी अकेली नहीं है अपितु यह अनेक शिक्षार्थियों से सम्बन्धित है।

इस विधि में परामर्शदाता पहले शिक्षार्थियों को समस्याओं को एक-एक करके (यदि संख्या बहुत अधिक नहीं होती है तब) सुनता है तथा उन्हें समानताओं के आधार पर कुछ वर्गों में रखकर उन उपर विचार-विमर्श करता है। इस विधि में समस्याओं की समानताओं के आधार पर शिक्षार्थियों के छोटे-छोटे समूह भी बनाये जा सकते हैं।

इस विधि का सबसे प्रमुख लाभ यह होता है कि इसमें शिक्षार्थी विभिन्न प्रकार की समस्याओं एवं उनके समाधान की जानकारी थोड़े समय में ही प्राप्त कर लेता है तथा अध्ययन के जिन बिन्दुओं अथवा समस्याओं की ओर उसका ध्यान गया होता है, उनके प्रति भी वह सक्रिय एवं संवेदनशील हो जाता है।

दूरवर्ती शिक्षार्थियों को अध्ययन केन्द्रों पर बुलाकर इस विधि को भी प्रयुक्त किया जाता है। किसी पाठ्यक्रम में अधिक शिक्षार्थी होने पर यह विधि बहुत अधिक उपयोगी होती है।

3. **टेलीफोन परामर्श विधि:** परामर्श हेतु वर्तमान समय में अनेक नवीन तकनीकी विधियों को भी प्रयुक्त किया जा रहा है। टेलीफोन से परामर्श भी उन्हीं में से एक है। प्रत्यक्ष आमने-सामने तथा टेलीफोन माध्यम में एक प्रमुख अन्तर यह है कि टेलीफोन परामर्श के समय सेवार्थी एवं परामर्शदाता एक-दूसरे से बातचीत तो कर सकते हैं किन्तु उनके चेहरे अदृश्य होते हैं। टेलीफोन परामर्श की निम्नलिखित तीन विधियाँ हो सकती हैं।

1. एकल टेलीफोन विधि

2. दूर-सम्मेलन विधि

3. टेपयुक्त टेलीफोन विधि

एकल टेलीफोन विधि में सेवार्थी सीधे अपने टेलीफोन से परामर्शदाता को फोन करके उससे सम्पर्क स्थापित कर सकता है।

टैपयुक्त टेलीफोन की सुविधा होने पर एक तरफ से भेजा गया सन्देश दूसरी तरफ टैप है। इस प्रकार दूसरी तरफ के व्यक्ति के अनुपस्थित रहने पर भी बाद में उसे सन्देश प्राप्त हो तथा वह उसका उत्तर अपनी सुविधानुसार दूसरे व्यक्ति को दे सकता है।

4. **पत्रों के माध्यम से परामर्श:** पत्रों के द्वारा भी परामर्श का है किन्तु इसमें समय अधिक लगता है। इसमें द्वि-मार्गी वार्तालाप सम्भव नहीं हो पाता है किन्तु माध्यमों के उपलब्ध न होने की स्थिति में पत्राचार माध्यम उपयोगी होता है। दूरवर्ती शिक्षा में परा पत्र-माध्यम का भी अधिक प्रयोग किया जाता है।

5. **हस्त-पुस्तिकाओं के माध्यम से परामर्श:** अनेक दूरवर्ती संस्थायें परामर्श-सामग्री को हस्त-पुस्तिकाओं के रूप में तैयार करती है। इन हस्त-पुस्तिका शिक्षार्थियों की लगभग सभी सम्भावित समस्याओं के समाधान सम्बन्धी सूचनाएँ/सामग्री दी गई है। अतः ये हस्त-पुस्तिकाएँ शिक्षार्थियों के लिए बहुत उपयोगी होती है।

6. **आडियो एवं वीडियो कैसेटों के माध्यम से परामर्श:** हस्त-पुस्तिकाओं के समान की परामर्श सेवा हेतु आडियो एवं वीडियो कैसेटों का भी किया जाता है। परामर्श हेतु आडियो कैसेट अधिक प्रयुक्त किये जाते हैं। क्योंकि यह वीडियो के तुलना में अधिक सस्ता होता है।

7. **रेडियो एवं दूरदर्शन प्रसारण द्वारा परामर्श:** वर्तमान समय में दूरवर्ती शिक्षार्थियों को रेडियो एवं दूरदर्शन के प्रसारण के माध्यम भी परामर्श प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है यद्यपि इसमें द्वि-मार्गी अन्तःक्रिया का अभाव है। किन्तु इस कमी को टेलीफोन युक्त प्रसार से दूर करने का प्रयास किया जाता है। इन्हीं द्वारा इस प्रकार की परामर्श सेवा भी प्रदान की जा रही है।

8. **कम्प्यूटर अथवा अन्तःक्रियात्मक वीडियोडिस्क द्वारा परामर्श:** दूरवर्ती शिक्षार्थियों को परामर्श प्रदान करने में कम्प्यूटर एवं वीडियोडिस्क बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यद्यपि यह महंगे साधन हैं। किन्तु अब माइक्रो कम्प्यूटर काफी हैं तथा इन्हें क्षेत्रीय एवं अध्ययन केन्द्रों पर सरलता से उपलब्ध कराया जा सकता है। कार्यक्रमों को अन्तः क्रियात्मक भी बनाया जा सकता है तथा इसके द्वारा शिक्षार्थियों को वैकल्पिक भी दिये जा सकते हैं।

भारत में कम्प्यूटर परामर्श का प्रयोग करियर परामर्श हेतु किया है। यह कार्यक्रम अर्थात् Computer Assisted Counselling (Instruction) कहलाता है। शिक्षार्थियों से एक प्रश्न-श्रृंखला के उत्तर प्राप्त किये जाते हैं। इन उत्तरों को विश्लेषित करके सेवा के लिए उपयुक्त करियर को चुनने हेतु किसी एक करियर अथवा कई करियर की प्राथमिकता की सूची प्रस्तुत की जाती है। यह कार्यक्रम बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

10.5 दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा की व्यवस्था एवं सीमाएँ-

दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली में शिक्षार्थियों हेतु सहायक सेवा का विशेष महत्व होता है। ये सब सेवाएँ केन्द्रीय संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्रों एवं अध्ययन के द्वारा प्रदान की जाती हैं। केन्द्रीय संस्थान प्रमुख रूप से नीति निर्धारण, प्रशासन, अध्ययन सामग्री निर्माण, सामग्री वितरण एवं क्षेत्रीय केन्द्रीय अध्ययन केन्द्रों के सुचारू रूप से संचालन सम्बन्धी कार्यों को निष्पादित किया जाता है। क्षेत्रीय द्वारा अध्ययन केन्द्रों की प्रशासनिक व्यवस्था का पर्यवेक्षण एवं शिक्षार्थी सहायक सेवाओं की व्यवस्था की जाती है। अध्ययन केन्द्र शिक्षार्थियों से सीधे जुड़े होते हैं तथा उनके लिए सहायक सेवाओं का संचालन करते हैं।

दूरस्थ शिक्षार्थियों हेतु सहायक सेवाओं को प्रदान करने में केन्द्रीय संस्थान तथा क्षेत्रीय एवं अध्ययन केन्द्रों की भूमिका निम्नलिखित प्रकार की होती है-

केन्द्रीय संस्थान के शिक्षार्थी-सहायता सम्बन्धी कार्य:

1. शिक्षार्थी-सहायता प्रणाली के विकास एवं क्रियान्वयन के सम्बन्ध में सभी प्रकार का नियोजन एवं नीति-निर्धारण करना।
2. शिक्षार्थी सहायता प्रणाली की व्यवस्था करना एवं उसका संचालन करना।
3. शिक्षार्थी सहायता प्रणाली से जुड़े हुए स्टाफ एवं उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करना।
4. शिक्षार्थी सहायता सम्बन्धी सूचनाओं का प्रचार-प्रसार करना।

इसमें दूसरे एवं तीसरे क्रम के कार्य क्षेत्रीय केन्द्रों को भी सौंपे जा सकते हैं।

स्थानीय अध्ययन केन्द्रों के शिक्षार्थी-सहायता सम्बन्धी कार्य

1. पाठ्यक्रम सामग्री से सम्बन्धित आमने-सामने वाले अर्थात् प्रत्यक्ष शिक्षण सत्रों (सम्पर्क कार्यक्रमों) को आयोजित एवं संचालित करना।
2. शैक्षिक एवं गैर-शैक्षिक परामर्श प्रदान करना।
3. परामर्श सेवायें प्रदान करना- इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सेवायें आती हैं-

सूचना- शिक्षार्थियों को विभिन्न पाठ्यक्रमों, शिक्षा संस्थाओं, पाठ्यक्रम हेतु आवश्यक न्यूनतम योग्यताओं, प्रवेश नियमों, शुल्क, अध्ययन एवं परीक्षा पद्धति, मूल्यांकन पद्धति एवं भावी सम्भावनाओं आदि से सम्बन्धित सूचना प्रदान करना।

जाँच - पाठ्यक्रम विशेष हेतु शिक्षार्थियों की उपयुक्तता की जाँच करना तथा उन्हें वैकल्पिक पाठ्यक्रमों की जानकारी देना।

सुझाव - शिक्षार्थी की आवश्यकता को पूर्ण करने वाले वैकल्पिक पाठ्यक्रमों की जानकारी तथा सर्वाधिक उपयुक्त पाठ्यक्रम को चयन करने हेतु सुझाव प्रदान करना।

परामर्श - सेवार्थियों को अपनी आवश्यकताओं की प्रशंसा करने अर्थात् उन्हें उपयुक्त ठहराने हेतु अवसर प्रदान करना।

क्रियान्वयन - शिक्षार्थियों को उनके द्वारा चुने गये पाठ्यक्रमों को क्रियान्वित करने हेतु सहायता एवं प्रोत्साहन प्रदान करना।

सहायक सेवा स्टाफ (परामर्शदाता या काउन्सलर) की भूमिका - दूरवर्ती शिक्षा के अध्ययन केन्द्र सामान्यतया किसी औपचारिक शिक्षा संस्था में ही स्थित होते हैं तथा उसका समन्वयक भी उसकी संस्था का कोई वरिष्ठ अध्यापक होता है। अध्ययन केन्द्र कार्यक्रमों को सुचारू रूप से संचालित कर सकने की दृष्टि से विभिन्न पाठ्यक्रमों एवं विषयों के लिए अंशकालिक परामर्शदाताओं की नियुक्ति भी उसी संस्था के शिक्षकों में से की जाती है। चूँकि अध्ययन केन्द्र का लगभग समस्त स्टाफ औपचारिक शिक्षा प्रणाली की उपज होता है तथा उससे जुड़ा हुआ भी होता है, अतः दूर शिक्षा एवं उसके शिक्षार्थियों की समस्याओं का ज्ञान उन्हें अधिक नहीं होता है। किन्तु हस्त पुस्तिकाओं एवं मैनुअल के माध्यम से उन्हें उनके कार्यों एवं दायित्वों से अवगत कराने का प्रयास किया जाता है। अतः उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी भूमिकाओं को ठीक ढंग के निर्वहन कर सकते हैं।

अध्ययन केन्द्रों पर नियुक्त शैक्षिक परामर्शदाताओं को सामान्यतया निम्नलिखित भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है-

- शिक्षार्थियों के सत्रीय कार्य का मूल्यांकन करना तथा उनके द्वारा अपने लिखित कार्य के माध्यम से शुरू की गई बातचीत एवं मुद्दों के प्रति उपयुक्त अनुक्रिया करना।
- अध्ययन केन्द्र पर आयोजित आमने-सामने के सत्र में सत्रीय कार्यों के बारे में व्यक्तिगत एवं सामूहिक चर्चा को प्रोत्साहित करके उसे आगे बढ़ाना।
- पाठ्यक्रम से सम्बन्धित स्वतः अनुदेशानात्मक सामग्री के बारे में शिक्षार्थी के प्रश्नों एवं सन्देहों का समाधान करना।
- दूर शिक्षा के लिए आवश्यक एवं उपयुक्त अध्ययन कौशलों के विकास हेतु शिक्षार्थियों को सहायता प्रदान करके उन्हें स्वतंत्र शिक्षार्थी बनने में मदद करना।

- निर्णय लेने एवं अधिगम अवरोधों के उत्पन्न होने की स्थिति में शिक्षार्थियों को सहायता प्रदान करके उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना। ये स्थितियाँ प्रमुख रूप से पाठ्यक्रम प्रारम्भ करते समय, सत्रीय कार्य पूरा करते समय, परीक्षा के समय उत्पन्न होती है।

केन्द्रीय संस्थान के विभिन्न नियामों एवं नियमावतियों की पर्याप्त जानकारी रखना तथा शिक्षार्थियों को आवश्यक पढ़ने पर उनकी व्याख्या करना।

- शिक्षार्थियों से सम्बन्धित आवश्यक रिकार्ड रखना।
- बहु-माध्यम सम्प्रेषण प्रणाली का प्रयोग करना।
- विषय एवं पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञात रखने का प्रयास करना।

केन्द्रीय संस्थान, क्षेत्रीय एवं अध्ययन केन्द्रों तथा परामर्शदाताओं के अपेक्षित कार्यों एवं भूमिकाओं के सफलतापूर्वक निर्वहन के लिए यह आवश्यक है कि इस हेतु एक निश्चित संगठनात्मक स्वरूप होना चाहिए। अनेक दूरवर्ती शिक्षा संस्थाओं द्वारा इस प्रकार की संगठनात्मक प्रणाली का विकास भी किया गया है। ब्रिटेन मुक्त विश्वविद्यालय की सहायक सेवा प्रणाली इसका एक आदर्श उदाहरण है। भारत में भी इग्नू के द्वारा शिक्षार्थी सहायत सेवा हेतु एक अपनी प्रणाली का विकास किया गया है। जिससे दूर शिक्षा के अधिकांश शिक्षार्थी लाभ उठा रहे हैं।

परामर्श एवं शिक्षार्थी-सहायता के कुछ प्रतिमान

दूरवर्ती शिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रचलित परामर्श एवं शिक्षार्थी सहायता के कुछ प्रतिमान निम्नांकित हैं-

प्रतिमान संख्या सहायक सेवायें सेवायें प्रदान करने वाली संस्था

1. सत्रीय कार्य मूल्यांकन सुझाव एवं परामर्श केन्द्रीय
2. सत्रीय कार्य मूल्यांकन केन्द्रीय
3. सुझाव एवं परामर्श स्थानीय अध्ययन केन्द्र (अंशकालिक परामर्शदाताओं द्वारा)
4. सत्रीय कार्य मूल्यांकन आमने-सामने का शिक्षण (सम्पर्क सूत्र) स्थानीय अध्ययन केन्द्र (अंशकालिक शिक्षक परामर्शदाता)
5. सत्रीय कार्य मूल्यांकन आमने-सामने का शिक्षण सुझाव एवं परामर्श स्थानीय अध्ययन केन्द्र (स्थानीय अंशकालिक शिक्षक परामर्शदाता)

दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सीमाएँ- इस इकाई में दूरवर्ती शिक्षा की परामर्श सेवा का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि परामर्श सेवा में हमें षा दूरवर्ती शिक्षा के लिए लाभदायाक होती हैं परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी होती हैं जो निम्न प्रकार हैं-

- विशेषज्ञ परामर्शकर्ता का अभाव।
- दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा सभी परिस्थियों में लाभदायक नहीं होता ।
- उत्तम परामर्श विधियों का अभाव।
- पक्षपात की संभावनाओं का प्रबलता।
- उपयुक्त स्रोतों एवं विषय वस्तुओं का अभाव।
- छात्रों में भावनात्मक विकास की कमी।
- परामर्श सेवाओं के लिए अनुसंशित करने से पूर्व उसके विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करना आवश्यक है जो सरलता से प्राप्त नहीं की जा सकती।
- परामर्श सेवा एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो सभी के द्वारा परिचालन संभव नहीं है।
- परामर्श की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है जो दीर्घ कालीन चलती रहती है। जिसका परिणाम सार्वभौमिक नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए ।

अपने उत्तर की जांच दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. परामर्श से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

2. परामर्श और निर्देशन से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3. दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श की प्रक्रिया बताइये ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. परामर्श के किन्ही दो विधियों की व्याख्या कीजिए ?

.....

.....

.....

.....

.....

5. दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा की आवश्यकता कब होती है ?

.....

.....

.....

.....

6. दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श की सीमाओं का उल्लेख कीजिए ?

.....

.....

.....

.....

10.6 सारांश

इस इकाई में हमने परामर्श सेवा के विभिन्न पक्षों का दूरवर्ती शिक्षा के सन्दर्भ अध्ययन किया है। परामर्श क्या है? प्रमुख आवश्यकताएं तथा विभिन्न प्रकारों के मूल्यांकन को सरल वाक्यों में व्याख्या किया गया है। यहां यह भी संकेत दिया गया है कि दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा किन किन रूपों में छात्रों के लिए अधिक लाभदायक है तथा परामर्श सेवा की प्रमुख विधियों का प्रभावी ढंग से इस इकाई में क्रियान्वित किया गया है, जो किसी न किसी रूप में न केवल दूरवर्ती छात्रों के लिए अपितु समाज के सभी वर्गों के लिए परामर्श सेवा उपयोगी सिद्ध होगी।

10.7 शब्दावली:

दूरवर्ती शिक्षा: औपचारिक शिक्षा से वंचित छात्रों के लिए प्रदान की गयी शिक्षा ही दूरवर्ती शिक्षा है।

परामर्श : मनोवैज्ञानिक जिज्ञासाओं की सन्तुष्टि के लिए विचार विमर्ष करने की प्रक्रिया है।

परामर्श दाता: मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान जिस व्यक्ति द्वारा किया जाता है, वह परामर्श दाता कहलाता है।

परामर्श प्रार्थी: मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान के ग्रहणकर्ता को परामर्श प्रार्थी कहा जाता है।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

उत्तर 1. प्रक्रिया एक संयुक्त प्रयास है। विद्यार्थी का दायित्व स्वयं को समझने का प्रयास करना, उस दिशा को समझना जिसमें उसे जाना चाहिए तथा समस्याओं के उत्पन्न होने पर उनके समाधान हेतु आत्म विश्वास जागृत करना होता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता का उत्तरदायित्व विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार उसे सहायता प्रदान करने हेतु तत्पर रहना होता है।

उत्तर 2. परामर्श और निर्देशन मुख्य अन्तर है कि - परामर्श निर्देशन का एक भाग है, जबकि निर्देशन एक व्यापक प्रक्रिया है।

परामर्श व्यक्तिगत होता है जबकि निर्देशन व्यक्तिगत व समूह दोनों में हो सकता है।

उत्तर 3. परामर्श प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसमें तीन प्रक्रियाएं सम्मिलित होती हैं जिसमें सूचना प्रदान करना, सुझाव देना एवं परामर्श प्रदान करना आदि है।

उत्तर 4. परामर्श की दो विधिया हैं साक्षात्कार माध्यम तथा समूह परामर्श विधि।

उत्तर 5. दूरवर्ती शिक्षा में मुख्य रूप से दो अवरोधों पर परामर्श की आवश्यकता पड़ती है-

1. किसी निर्णय बिन्दु में पहुँचने में।
2. किसी अवरोध के उत्पन्न होने पर।

उत्तर 6.

- विशेषज्ञ परामर्श का अभाव।
- दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा सभी परिस्थितियों में लाभदायक नहीं होता।
- उत्तम परामर्श विधियों का अभाव।
- पक्षपात की संभावनाओं का प्रबलता।
- उपयुक्त स्रोतों एवं विषय वस्तुओं का अभाव।

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

दूरवर्ती शिक्षा: डॉ० सिया राम यादव,

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन: वर्मा एवं उपाध्याय,

दूरवर्ती शिक्षा: इग्नू पाठ्यसामग्री,

10.10 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री:

शिक्षा मनोविज्ञान: डॉ० एस० के० मंगल,

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ: डॉ० एस० पी० गुप्ता,

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न-

प्रश्न 1. शिक्षक एक अच्छा परामर्श दाता होता है। सिद्ध कीजिए ?

प्रश्न 2. दूरवर्ती शिक्षा में परामर्श सेवा का क्या महत्व है ?

प्रश्न 3. परामर्श के प्रमुख विधियों का वर्णन एवं कीजिए ?

इकाई 11: प्रौढ़ शिक्षा: अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसका महत्व (Adult Education: Meaning, Nature, Objectives and Its Significance)

इकाई की रूपरेखा

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ
- 11.4 प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा
- 11.5 प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न नाम
- 11.6 प्रौढ़ शिक्षा की प्रकृति
- 11.7 प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य
- 11.8 प्रौढ़ शिक्षा का महत्व
- 11.9 सारांश
- 11.10 शब्दावली
- 11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.12 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

सरकार ने प्रौढ़ निरक्षरता के विरुद्ध एक सुव्यवस्थित व सुनियोजित अभियान प्रारम्भ किया है। इससे अब तक शैक्षिक व सामाजिक रूप से वंचित रहे व्यक्ति सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन में अपनी सक्रिय भूमिका अदा कर सकेंगे। वे न केवल साक्षर बन सकेंगे वरन आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी नागरिक बन कर विकास की प्रक्रिया में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकेंगे। हमें राष्ट्रीय साक्षरता अभियान को जन आन्दोलन का स्वरूप देना है व एकजुट होकर देश से निरक्षरता के अभिशाप को दूर करने के लिए कृतसंकल्प होना है। हमें यह सदैव याद रखना है कि देश का व हमारा भविष्य इस कार्यक्रम की सफलता पर अवलम्बित है। इस अध्याय में आप प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसके महत्व के बारे में अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि -

- प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ बता सकेंगे।
- प्रौढ़ शिक्षा की प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रौढ़ शिक्षा के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

11.3 प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ

‘प्रौढ़ शिक्षा’ नामक पद बहुत प्रचलित है। इसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न कार्यक्रम संचालित किए गए हैं। ब्रिटेन में ‘एडल्ट एजुकेशन’ नाम प्रचलित था व इसके पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न विषय - साहित्य, कला, अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, नृत्य, सामाजिक अध्ययन आदि पढ़ाए जाते थे। भारत में निरक्षरता की समस्या गम्भीर थी। यहाँ प्रौढ़ शिक्षा को साक्षरता या पर्याय माना गया। इसका कार्य था- विद्यालय की सामान्य शिक्षा के अभाव की पूर्ति करना। इसमें सामान्य पढ़ना, लिखना व साधारण गणित का शिक्षण शामिल रहता था। धीरे-धीरे परिस्थिति व आवश्यकता के अनुसार प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में तीन तत्वों-जागरूकता, व्यवहारिकता व साक्षरता - का समावेश किया गया।

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने प्रौढ़ शिक्षा के स्थान पर समाज शिक्षा नाम का प्रयोग किया। उनके अनुसार समाज शिक्षा की एक ऐसी परिभाषा जो साक्षरता प्रसार तक सीमित हो, बहुत संकुचित परिभाषा है। उनके अनुसार-“समाज शिक्षा से हमारा तात्पर्य पूर्ण मनुष्य की शिक्षा से है। इसके द्वारा मनुष्य साक्षरता प्राप्त करेगा ताकि वह विश्व के बारे में जान सके। इससे उसे इस बात की शिक्षा मिलेगी कि वह अपने वातावरण को किस प्रकार अपने अनुकूल बनाए तथा किस प्रकार अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों का जिनमें वह रहता है, सदुपयोग करे। इसका तात्पर्य मनुष्य को उत्तम शिल्प व उत्पादन विधियों को सिखाना है जिससे वह अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सके। इसका उद्देश्य व्यक्ति एवं समुदाय को व्यक्तिगत सफाई के विषय में ज्ञान देना है जिससे उनका जीवन स्वास्थ्यप्रद बन सके। अन्त में, समाज शिक्षा द्वारा मनुष्य को नागरिकता का प्रशिक्षण मिलना चाहिए जिससे वह संसार की समस्याएँ जान सके व शान्ति व देश की प्रगति के अनुकूल निर्णय लेने में सरकार के लिए सहायक हो सके। श्री हुमायूँ कबीर के अनुसार - “समाज शिक्षा का आशय उस पाठ्यक्रम से है जिससे जनता में नागरिकता की भावना उत्पन्न होती है तथा सामाजिक एकता बढ़ती है। समाज शिक्षा निरक्षर व्यक्तियों को मात्र साक्षर बनाने से संतुष्ट नहीं होती वरन् इसका उद्देश्य जनसाधारण में शिक्षित मस्तिष्क का निर्माण करना है। श्री सैयदेन ने प्रौढ़ शिक्षा में राजनीति,

नागरिकता व नैतिकता की शिक्षा को शामिल किया है। डॉ० मुखर्जी के मतानुसार प्रौढ़ शिक्षा के दो पक्ष हैं- प्रौढ़ साक्षरता तथा साक्षर प्रौढ़ों की अनवरत शिक्षा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रौढ़ शिक्षा या समाज शिक्षा वह अशंकालिक शिक्षा है जिसे व्यक्ति अपना काम करते हुए प्राप्त करता है। इसमें वे सभी क्रियाएँ आ जाती हैं जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के सामान्य जीवन से है तथा जिनका कुछ शैक्षिक महत्व है। इसमें साक्षरता सम्मिलित है व साथ ही साक्षर प्रौढ़ों की आगे की शिक्षा भी सम्मिलित है जिससे नवसाक्षर पुनः निरक्षर न बन सकें। यह बहुमुखी विकास की जन शिक्षा है।

प्रौढ़ शिक्षा जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, यह वह शिक्षा है जो वयस्कों को दी जाती है। इसके बारे में यह धारणा प्रचलित है कि यह निरक्षर लोगों को साक्षर बनाती है। पढ़ना, लिखना तथा गिनने का ज्ञान कराना इसका मुख्य कार्य है। समयानुसार इसकी इस धारणा में भी परिवर्तन होने लगा। इसको अब व्यापक रूप में देखा जाने लगा है। प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य केवल वयस्कों को साक्षर बनाना मात्र नहीं है। अपितु उसके अन्तर्गत वह सभी प्रकार की शिक्षा आती है जो प्रत्येक नागरिक को जनतान्त्रिक व्यवस्था का विवेकपूर्ण सदस्य बनाती है। इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिये नीचे कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं-

1. यूनेस्को रिपोर्ट- "प्रौढ़ शिक्षा से तात्पर्य है - पूर्ण मानव की शिक्षा। यह व्यक्ति को साक्षरता प्रदान करेगी जिसमें उसे विश्व का ज्ञान प्राप्त हो सके। यह उसको बतायेगी कि वह स्वयं पर्यावरण से अनुकूलन किस प्रकार करे और जिन प्राकृतिक दशाओं में यह निवास करता है उनका सर्वोत्तम प्रयोग किस प्रकार करे।"

"Adult Education means the education of a complete man. It will give him literacy so that knowledge of the world may become accessible to him. It will teach him how to harmonize himself with his environment and make the best use of the physical condition in which he subsists."

UNESCO Report

2. ब्राइसन- "प्रौढ़-शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिए सब अवसरों पर और सब परिस्थितियों में शिक्षा है।"

"Adult Education is education for everybody at all times and in all conditions."

Lymon Bryson : Adult Education, p.6.

3. मॉरगन, होम्स व बंडी - "प्रौढ़-शिक्षा किसी नई बात को सीखने के लिए प्रौढ़ व्यक्ति का जान-बूझकर किया जाने वाला प्रयास है।"

"Adult Education may be thought of as the conscious effort of a mature person to learn something new." **Morgan, Holmes & Bundy : Methods to Adult Education, p. 12**

4. रीन्स, फ्रेन्सलर व हाउले- "प्रौढ़-शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के तीन पक्षों में से किसी एक से या अधिक से हो सकता है- उसका व्यावसायिक जीवन, उसका व्यक्तिगत जीवन या नागरिक के रूप में उसका जीवना।"

"Adult Education may be concerned with any or more of the three aspects of individuals life, his work, his personal life, or his life as a citizen. **Reene, Frenslar & Houle: Adult Education p. 171.**

उल्लिखित परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि साधारणतः प्रौढ़-शिक्षा में प्रौढ़ों को दी जाने वाली सम्पूर्ण औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा सम्मिलित है। भारत में प्रौढ़-शिक्षा के इसी अर्थ को स्वीकार किया गया है। अतः हम भारतीय दृष्टिकोण से प्रौढ़-शिक्षा की परिभाषा को डॉ० मुकर्जी के अग्रांकित शब्दों में लेखबद्ध कर सकते हैं- "भारत में प्रौढ़ शिक्षा के दो पहलू हैं (1) प्रौढ़-साक्षरता, अर्थात् उन प्रौढ़ों की शिक्षा-जिनको विद्यालयों में कभी किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है, और (2) साक्षर-प्रौढ़ों की अनवरत शिक्षा।"

"In India, adult education has two aspects: (i) Adult literacy i.e. education of those adults who never had any schooling, and (ii) Continuation education of the adult literate."

-S.N. Mukerji : Education in India : Today and Tomorrow, p. 434.

11.4 प्रौढ़ शिक्षा की नवीन धारणा (New Concept of Adult Education)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात प्रौढ़ शिक्षा की परिभाषा विस्तृत रूप से की जाने लगी है ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि राष्ट्रीय नेताओं की राय में देश की प्रगति के लिए निरक्षर व्यक्तियों को केवल साक्षर

करना की पर्याप्त नहीं है अपितु उनकी बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उन्नति करना भी आवश्यक है श्री सैयदेन के अनुसार यदि हमारी समस्त जनता पढ़ना-लिखना और जोड़-बाकी तथा गुणा-भाग के सवाल सही-सही लगाना सीख ले भी तो उससे क्या फायदा होगा? इससे अखबारों में तथा सार्वजनिक मंच पर लफ़फ़ाजी करने वालों को उन्हें बेवकूफ बनाने का उतना ही ज्यादा मसाला और मिल जायेगा। इससे न तो उनके मानदण्ड ऊँचे होंगे, न उनकी रूचियों में सुधार होगा और न उनका जीवन समृद्ध बनेगा, उनकी सहानुभूति या समझ या सामाजिक चेतना में कोई गहराई नहीं पैदा होगी। इसलिए हमें इस समस्या को बिल्कुल ही दूसरे तथा अधिक व्यापक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। हमें जनता में चीजों को परखने की क्षमता, आलोचनात्मक शक्ति और सामाजिक भावना का विकास करने में योग देना चाहिए ताकि वे कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट तथा निकृष्ट के बीच, ज्ञान के क्षेत्र में सच और झूठ के बीच और आचरण के क्षेत्र में भले और बुरे के बीच अन्तर कर सकें।

11.5 प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न नाम (Different Names of Adult Education)

प्रौढ़-शिक्षा के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग होता रहा है। साथ ही समय की माँग एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार इसकी अवधारणा को 'साक्षरता' तक सीमित रखा। परन्तु धीरे-धीरे परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार इसमें साक्षरता के साथ जागरूकता एवं व्यवहारिकता का समावेश किया गया। समय-समय पर इसकी अवधारणा में परिवर्तन होता रहा और उसको नया नाम दिया जाता रहा।

1. समाज शिक्षा (**Social Education**): भारत के तत्कालीन शिक्षामन्त्री स्व० अबुल कलाम ने इसको 'समाज-शिक्षा' का नाम दिया। इसमें नागरिक शिक्षा, आर्थिक सुधार, स्वास्थ्य, भावात्मक एकता एवं सौन्दर्य बोध का समावेश किया है।
2. जन शिक्षा (**Mass or People Education**): चीन में प्रौढ़-शिक्षा के लिए 'जन शिक्षा' का नाम रखा गया है।
3. सामुदायिक शिक्षा (**Community Education**): अमेरिका के दक्षिणी देशों में इसको 'सामुदायिक शिक्षा' के नाम से पुकारा गया।
4. जन शिक्षण कार्यक्रम (**Public Instruction Programme**): सोवियत रूस में लेनिन ने निरक्षरता के उन्मूलन के लिए 'जन शिक्षण कार्यक्रम' की घोषणा की। यहाँ प्रौढ़ शिक्षा इसी नाम से जानी जाती है।
5. श्रमिक शिक्षा (**Labour Education**): भारत में सन् 1967 में नगरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में निवास करने वाले श्रमिकों की शिक्षा के लिए एक योजना चालू की। इसके अन्तर्गत उनकी शिक्षा के

लिए श्रमिक विद्यापीठों की स्थापना की गई। इस प्रकार श्रमिक शिक्षा को प्रौढ़ शिक्षा के एक अंग के रूप में स्वीकार किया गया।

6. सतत् शिक्षा (**Continuing Education**): सतत् शिक्षा व्यक्ति के लिए ऐसे अवसर प्रदान करती है जिससे वह अपने व्यवसाय, उत्तरदायित्व तथा विभिन्न सीमाओं में रहते हुए अपनी अभिरूचि एवं क्षमता के अनुसार शिक्षा का क्रम जारी रख सकें। प्रौढ़-शिक्षा सतत् शिक्षा के लिए आधार का कार्य करती है।

हुमायूँ कबीर- “प्रौढ़ शिक्षा वह आधार है, जिस पर स्तन्त्र भारत कल्याणकारी राज्य का निर्माण कर सकता है, जो वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सामाजिक सुरक्षा की माँग को स्वीकार करेगा।”

11.6 प्रौढ़ शिक्षा की प्रकृति (Nature of Adult Education)

हमारे यहाँ प्रौढ़-शिक्षा का स्वरूप अभी तक अस्पष्ट है। हमारे यहाँ प्रौढ़ शिक्षा को कई नामों से सम्बोधित किया गया है। इस क्षेत्र में आजकल निम्नलिखित चार प्रकार के नाम प्रचलित हैं-

- | | |
|----------------------|------------------|
| (iii) प्रौढ़ शिक्षा | (ii) साक्षरता |
| (iii) आधारभूत शिक्षा | (iv) समाज शिक्षा |

प्रौढ़ शिक्षा का सम्बन्ध प्रायः उन प्रौढ़ों से समझा जाता है जो किसी न किसी उत्पादन कार्य में लगे हुए हैं। साक्षरता का अर्थ निरक्षर प्रौढ़ों को लिखना, पढ़ना तथा गणना का ज्ञान कराना है। आधारभूत शिक्षा की संकल्पना यूनेस्को के एक सेमिनार द्वारा प्रस्तावित की गयी, जिसके अन्तर्गत यह बतलाया गया है कि कुछ मूलभूत ज्ञान तत्व जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। जिसकी जानकारी सभी नागरिकों के लिए आवश्यक है। चौथा नाम केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा परिषद् द्वारा प्रस्तावित किया गया जिसमें यह कहा गया है कि समाज शिक्षा व्यक्ति को समाज के एक स्वस्थ स्तर पर जीवन व्यतित करने के योग्य बनायेगी।

प्रौढ़ शिक्षा की प्रकृति को निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं-

- i. प्रौढ़ शिक्षा संगठित समाज की स्थापना करती है। आज मानव समुदाय शिक्षित-अशिक्षित, धनी, निर्धन, शहरी ग्रामीण और जाति व धर्म के आधार पर विभिन्न वर्गों में बँटा हुआ है, इस वर्गभेद को मिटाने या कम से कम करने का प्रयास करती है ताकि समाज संगठित होकर विकास करे।
- ii. यह सम्पत्ति की रक्षा एवं विकास करनी है। देश का भौतिक और प्राकृतिक सम्पत्ति का सबके हित में विवेकपूर्ण उपयोग करना, सम्पत्ति की रक्षा करना एवं इनके विकास पर बल देती है।

- iii. सामाजिक जागृति की भावना पैदा करती है। यह भावना उत्पन्न करना कि व्यक्ति बड़े हित के लिए छोटे हित का सहर्ष त्याग कर सके, अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति चेतना जागृत करते हुए नागरिकता की भावना का विकास करना, जागरूक मतदाता बनाना प्रौढ़ शिक्षा का कार्य है।
- iv. प्रौढ़ शिक्षा सहयोग की भावना पैदा करती है। प्रौढ़ शिक्षा का राष्ट्रीय समस्याओं पर विवेकपूर्ण चिन्तन के अवसर प्रदान करना है। समाज हित और राष्ट्र हित के कार्यों का सम्पदान मिलजुल कर करने की भावना विकसित करती है।
- v. यह व्यक्ति की आर्थिक उन्नति करने का प्रयास करती है। प्रौढ़ शिक्षा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उद्योग धन्धों व दस्तकरी का ज्ञान प्रदान करता है, जिससे प्रौढ़ों का आर्थिक स्तर उन्नत हो। इसमें व्यावसायिक प्रशिक्षण की भी व्याख्या की गयी है।
- vi. प्रौढ़ शिक्षा प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों को स्वशासन की शिक्षा प्रदान करता है, जिससे वे अपने राजनीतिक कर्तव्यों का पालन और अधिकारों का उपयोग कर सकें।
- vii. प्रौढ़ शिक्षा प्रौढ़ों को देश की समस्याओं से परिचय कराती है और उनके समाधान में उनसे सहयोग प्रदान करने के लिए कहती है। यदि देश की सभी जनता देश की समस्याओं से परिचित हो जाये और मिलजुलकर समस्या समाधान पर बल दे तो व्यक्ति विकास के साथ देश का भी विकास होगा।
- viii. प्रौढ़ों को आत्म अभिव्यक्ति में निपुण बनाने के लिए साक्षरता प्रसार पर विशेष बल देती है ताकि अधिक से अधिक प्रौढ़ ज्ञान प्राप्त कर सकें तथा अपने बातों को कहीं भी प्रस्तुत कर सकें।
- ix. व्यक्ति को अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत स्वास्थ्य शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी है क्योंकि यह सर्वविदित है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। यदि प्रौढ़ स्वस्थ नहीं होगा तो शिक्षा का अर्जन कैसे कर सकता है।
- x. प्रौढ़ शिक्षा प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में प्रौढ़ों को अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति सजग करने के लिए नागरिकता की शिक्षा को महत्व देती है। जिससे प्रत्येक प्रौढ़ एक अच्छा नागरिक बनकर अपने व्यक्तित्व का विकास ठीक प्रकार से कर सके।
- xi. प्रौढ़ शिक्षा प्रौढ़ों को खाली समय के सदुपयोग के लिए स्वस्थ मनोरंजन की भी व्यवस्था करती है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों को रखा गया है। इसमें कार्य साधक शिक्षा, कौशल विकास व आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है।

-
- xii. यह समयबद्ध ढंग से 15 से 35 आयु वर्ग के सभी निरक्षर पुरुषों व महिलाओं को साक्षर बनाने का प्रयास करता है।
 - xiii. यह महिलाओं की समानता की शिक्षा पर विशेष बल देती है अर्थात् सभी महिलाओं की एक समान शिक्षा व्यवस्था को महत्व देती है।
 - xiv. प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत सर्व धर्म सम्भाव की जागृति होती है, अर्थात् प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था सभी धर्मों के व्यक्तियों या प्रौढ़ों को एक समान एवं एक साथ देने पर बल देती है।
 - xv. इसके अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति समयबद्ध ढंग से हो और प्रगति का नियमित मूल्यांकन हो, इस पर बल देती है।
 - xvi. इसमें स्वैच्छिक संस्थाओं, श्रमिकों, छात्रों, शिक्षकों, व्यापारियों आदि सभी वर्गों का योगदान महत्वपूर्ण है।
 - xvii. प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत धार्मिक प्रवचन जैसे भजन, कीर्तन, मजलिस आदि को निश्चित रूप से स्थान दिया जाता है।
 - xviii. प्रौढ़ों को शिक्षा देने के लिए विशेषज्ञ संसाधन व प्रतिबद्धता से युक्त संगठनों को रखा गया है।
 - xix. वर्तमान में नई दिल्ली स्थिति प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय को राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा संस्थान का रूप दिया गया है।
-

11.7 प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Adult Education)

प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्यों का दो दृष्टिकोणों से विवेचन किया जा सकता है:

- (1) व्यक्ति की आवश्यकताओं के दृष्टिकोणों से।
- (2) समाज की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से।

व्यक्ति की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य (Objectives According to the Needs of the Individual):

1. **उपचारात्मक (Remedial):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य विद्यालय की औपचारिक शिक्षा की इस कमी को पूरा करना है, जिसे व्यक्तियों ने किन्हीं कारणों से अपने बचपन में प्राप्त नहीं किया है। ऐसे व्यक्ति आवश्यक शिक्षा प्राप्त करके एक सन्तुष्ट और प्रसन्न व्यक्ति के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

2. **व्यावसायिक (Vocational):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों तथा कृषि सम्बन्धी और नगरीय क्षेत्रों में व्यवसायिक और तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था करना है।

3. **स्वास्थ्य सम्बन्धी (Health):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य प्रौढ़ों को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करना है। उन्हें स्वास्थ्य और सफाई के आधारभूत सिद्धान्तों से परिचित कराना है। उन्हें अस्वस्थता से बचने के उपायों, विभिन्न क्षेत्रों में फैलने वाले रोगों का उन्मूलन करने और पौष्टिक आहार की समस्याओं को हल करने के लिए ज्ञान प्रदान करना है।

4. **मनोरंजन सम्बन्धी (Recreational):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने अवकाश काल का सदुपयोग कर सके और अपने मानसिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रख सके। इसका लक्ष्य स्वस्थ मनोरंजन के द्वारा मानसिक तनावों को दूर करके व्यक्ति के जीवन में अच्छे संस्कारों का विकास करना है।

5. **सांस्कृतिक (Culture):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों में ज्ञान पिपासा को जाग्रत करना, आत्म विकास के वांछित अभिवृद्धि करना, जीवन के प्रति कलात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना और जीवन दर्शन का निर्माण करना है।

6. **सामाजिक कुशलता (Social Skill):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य प्रौढ़ों में सामाजिक कुशलता का विकास करना है। जिससे वे अपने साथियों के साथ रह सकें, जीवन में उन्नति कर सकें। अपने पारिवारिक जीवन को सुखी बना सकें और आज के जटिल संसार में अपने कर्तव्य और अधिकारों को समझ सकें।

समाज की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Adult Education according to the needs of the society):

1. **सामाजिक एकता का विकास (Promotion of Social Cohesion):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य शिक्षित और अशिक्षित, गरीब और अमीर, स्वदेशी, और विदेशी, पूंजीपति और मजदूर, शहरी और देहाती, उच्च जाति और निम्न जाति तथा युवकों और वृद्धों के बीच की दूरी को कम करके उनमें सामान्य सम्बन्ध स्थापित करना है। प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य विभिन्न वर्गों के बीच की ईर्ष्या, द्वेष और अलगाव की भावना को समाप्त करके उनमें एकता की भावना को उत्पन्न करना है।

2. **राष्ट्रीय साधनों का संरक्षण और विकास (Conservation and Improvement of National Resources):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य कार्यकर्ता की उत्पादक क्षमता को उन्नत करके, राष्ट्रीय उत्पादन को बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्था में सुधार करना है। प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य लोगों में यह भावना पैदा करना है कि वे देश के प्राकृतिक और मानवीय साधनों को ऐसे साधन समझें जिनसे देशवासियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।

3. **सहकारी संस्थाओं का संगठन (Organizing Cooperative Institution):** प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न करना है कि अपने व्यक्तिगत हित से समाज का हित बड़ा है,

इसलिए समाज हित के लिए अपने व्यक्तिगत हितों का बलिदान कर देना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में इस भावना का समावेश करना है कि वह मानव जाति को प्रगति और विकास में अपने योगदान देने के कार्य को अपना आदर्श समझे।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रौढ़ शिक्षा 15 से आयु वर्ग के सभी निरक्षर पुरुषों व महिलाओं को साक्षर बनाने का प्रयास करता है।
2. चीन में प्रौढ़-शिक्षा के लिए का नाम रखा गया है।
3. भारत के तत्कालीन शिक्षामन्त्री स्व० अबुल कलाम ने प्रौढ़ शिक्षा को का नाम दिया।
4. अमेरिका के दक्षिणी देशों में प्रौढ़ शिक्षा को के नाम से पुकारा गया।
5. “प्रौढ़ शिक्षा वह आधार है, जिस पर स्तन्न भारत कल्याणकारी राज्य का निर्माण कर सकता है, जो वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सामाजिक सुरक्षा की माँग को स्वीकार करेगा।” यह परिभाषाने दी है।

11.8 प्रौढ़ शिक्षा का महत्व (Importance of Adult Education)

आज का प्रत्येक व्यक्ति समाज का उपयोगी अंग है। प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य यह है कि प्रौढ़ जनता को ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे वह अपना जीवन बेहतर बना सके, उसमें परम्परागत के बजाय प्रगतिशील समाज बनाने की इच्छा पैदा हो जाये और उसे अपने देश के भविष्य में आस्था पैदा हो प्रौढ़ शिक्षा सहित समाज शिक्षा के फील्ड कार्यों का दायित्व राज्य सरकारों और संघीय क्षेत्रों के प्रशासनों का है जो व्यक्तियों में प्रौढ़ शिक्षा को प्रसारित करके एक योग्य नागरिक का निर्माण कर सके। इस दृष्टि से भी प्रौढ़ शिक्षा का अधिक महत्व है।

भारत की वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा के महत्व का विवेचन करते हुए, डॉ० के०जी० सैयदैन ने लिखा है - “हम राष्ट्रीय जीवन के ऐसे नए युग में प्रवेश कर रहे हैं, जो शायद आने वाली कई शताब्दियों के लिए हमारे देश की भावी व्यवस्था की रूपरेखा निर्धारित कर देगा। हमारे राष्ट्रीय जीवन को विषाक्त करने वाले आपस के संगीन झगड़ों की घनघोर घटायें भी विनाश की बादलों की तरह छूट जायेगी और हम फिर न्याय स्वतन्त्रता और समझदारी के प्रकाशमय वातवरण में पहुँच जायेंगे। यदि आप मुझे एक स्वतः स्पष्ट सत्य को दोहराने की अनुमति दें तो मैं कहूँगा कि अकेले राजनीतिक स्वतन्त्रता किसी भी समाज या राष्ट्र के लिए, ‘अच्छे जीवन’ का आश्वासन नहीं कर सकती है। हम भली-भाँति जानते हैं कि कई राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र होते हुए भी दूसरी जंजीरों में जकड़े हुए हैं, जो उन्हें ‘अच्छे जीवन की ओर’ नहीं

बढ़ने देती हैं क्योंकि इस प्रकार का जीवन कठिन परिश्रम तथा समाजपयोगी कार्य द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में जब तक जनता 'निरन्तर सतर्कता' के रूप में अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने को तैयार न हो, तब तक वह स्वतन्त्रता को भी सुरक्षित नहीं रख सकते हैं और इस 'सतर्कता के लिए उचित नागरिक तथा सामाजिक शिक्षा की आवश्यकता होती है यदि हमारा लक्ष्य ऊँचा है और हम अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के सहारे सामाजिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक लोकतन्त्र के लक्ष्य तक पहुँचाना चाहते हैं, तो स्पष्ट: हमें जनसाधारण के लिए कहीं अधिक उच्च स्तर की शिक्षा की आवश्यकता होगी नहीं तो हमें शा इस बात का खतरा रहेगा कि चतुर लेकिन बेईमान दल या व्यक्ति अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस तथाकथित 'स्वतन्त्रता का अनुचित लाभ उठाएँ। इस बात को मैं तत्काल और बड़े पैमाने पर प्रौढ़-शिक्षा का आन्दोलन शुरू करने के राजनीतिक औचित्य का आधार कहूँगा।

इन सारगर्भित शब्दों में समकालीन शिक्षाशास्त्रियों के अधिराज डॉ० सैयदैन ने हमारे देश के राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा के महत्व का संदेश दिया है। इसी सन्देश को कुछ भिन्न शब्दावली में 'कोठारी कमीशन' ने इस प्रकार पुनरावृत्ति की है - "कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के भार को केवल पुलिस एवं सेना को नहीं सौंप सकता है। वस्तुतः राष्ट्रीय सुरक्षा बहुत बड़ी सीमा तक नागरिकों की शिक्षा, विभिन्न कार्यक्रमों के उनके ज्ञान, उनके चरित्र, उनकी अनुशासन की भावना एवं सुरक्षा-सम्बन्धी कार्यों में उनसे कुशलतापूर्वक भाग लेने की क्षमता पर आधारित रहती है। अतः हमारे देश के राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा का विशिष्ट महत्व होना चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा का महत्व राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली में अत्यधिक है आज की बदलती हुई परिस्थितियों में सम्पूर्ण जीवन को जीने के लिए सीखने की क्रिया अनवरत रूप से बनी रहनी चाहिए। आजकल इस बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली पूरे समय के लिए विस्तृत शिक्षा प्रदान नहीं कर सकती। इस प्रणाली में विद्यालय से अलग हुए प्रौढ़ों को पूरे समय, अंशकालीन सेवाकालीन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इस दृष्टि से भी प्रौढ़ शिक्षा का महत्व अधिक है।

शिक्षित व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र की उन्नति का मूलाधार है। विश्व के जितने भी प्रगतिशील देश हैं उन सबकी प्रगति का श्रेय शिक्षा को जाता है। प्रजातंत्रात्मक देशों में शिक्षा का महत्व अत्यधिक है। प्रत्येक जन्तंत्रात्मक देश में शिशु, बाल, युवा, स्त्री, पुरुष तथा प्रौढ़ों को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। हमारे यहाँ के सर्वाधिक विद्यालयों में प्रायः 6 से 21 वर्ष के बालकों की शिक्षा की व्याख्या की जाती है। किन्तु हमारे समाज में एक ऐसा भी वर्ग है जो किसी न किसी व्यवसाय में लगा हुआ है। किन्तु उनकी शिक्षा नहीं हो सकती है। शैक्षिक अवसरों के अभाव में 21 वर्ष से उपर के लोग शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ रहे हैं।

प्रौढ़ शिक्षा के महत्व पर प्रकार डालते हुए डा0 बी0के0आर0बी0 राव का कथन है- “प्रौढ़ शिक्षा एवं प्रौढ़ साक्षरता के बिना आर्थिक सामाजिक विकास उस तीव्रता एवं वैविध्य से नहीं किया जा सकता है जिसकी हमें आवश्यकता है और न हम अपने विकास को वह स्वरूप, स्थिरता तथा विशिष्टता दे पायेंगे। जिनका कि एक कल्याणकारी राष्ट्र में विशेष महत्व होता है। अतः आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए प्रौढ़ शिक्षा एक प्राथमिक अनिवार्यता है। प्रौढ़ शिक्षा के महत्व को निम्नलिखित रूपों में भी देख सकते हैं-

- देश में ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक है, जो कि अशिक्षित होते हुए भी जीविकोपार्जन में संलग्न हैं। उनके पास इतना समय तथा धन नहीं है कि वे नियमित रूप से विद्या अध्ययन कर सकें। हमारे देश में ऐसे प्रौढ़ों की संख्या अधिक है जो अपना हस्ताक्षर भी नहीं कर सकते। ऐसे प्रौढ़ वर्ग के लिए इसका महत्व बढ़ जाता है।
- लोकतंत्र की बुनियाद को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा आदर्श नागरिकता के गुणों को उत्पन्न करने के लिए सामाजिक शिक्षा की ओर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है। अशिक्षित होने के कारण प्रौढ़-गण अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों को समझ नहीं पाते। अतएव राजनीतिक अधिकारों के सदुपयोग के लिए भी समाज शिक्षा का अधिक महत्व है।
- ऐसा भी देखने में आया है कि कुछ लोग आर्थिक कठिनाइयों के कारण बीच में अपनी शिक्षा बन्द कर देते हैं। ऐसे अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों के मानसिक क्षितिज को विस्तीर्ण करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा का विशेष महत्व है।
- सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों का अनुसरण करने के लिए भी प्रौढ़ शिक्षा का अधिक महत्व है प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा ही सामुदायिक विकास के अन्तर्गत निहित विषयों, जैसे- कृषि, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन आदि का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।
- जिन व्यक्तियों ने स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर ली है उनको देश की विभिन्न गतिविधियों से परिचित कराने के लिए एकमात्र साधन प्रौढ़ शिक्षा ही है।
- भारत की निरक्षरता को दूर करने में भी प्रौढ़ शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।
- प्रौढ़ शिक्षा अवकाश के सदुपयोग पर भी बल देती है। हम अपने अवकाश को उत्पादक कार्यों तथा स्वस्थ मनोरंजन में व्यतित करते हैं।
- राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी प्रौढ़ शिक्षा का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है।

वर्ष 2004 में प्रौढ़ शिक्षा की गुणवत्ता के विषय में एक सर्वेक्षण किया गया जिससे प्राप्त हुआ कि विश्व के 127 देशों के सर्वेक्षण में भारत का स्थान शिक्षा के क्षेत्र में 105 वा था। ये तथ्य यह संदेश देते हैं कि प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भारत को अभी काफी प्रयास करना आवश्यक है। वर्तमान में सूचना संप्रेषण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। परिणामतः शैक्षिक तकनीकी में भी नए आयाम स्थापित हुए हैं आवश्यकता इन बात की है कि हम शैक्षिक तकनीकी के आधुनिक साधनों का प्रयोग कर तथा अन्य पारम्परिक विधाओं का प्रयोग कर प्रौढ़ शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करें। रेडियो, दूरदर्शन, कम्प्यूटर नेटवर्किंग इत्यादि का पूरा लाभ उठाकर हम लक्ष्य को प्राप्त करने में निश्चित रूप से सफल हो सकते हैं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि भारत में विभिन्न कदम उठाकर साक्षरता प्रतिशत को बढ़ाया है। परन्तु भारत में निरक्षरों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। अतः भारत सरकार को सबको शिक्षित बनाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाने चाहिए।

11.9 सारांश

इस अध्याय में आपने प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसके महत्व के बारे में अध्ययन किया। प्रौढ़ शिक्षा जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, यह वह शिक्षा है जो वयस्कों को दी जाती है। इसके बारे में यह धारणा प्रचलित है कि यह निरक्षर लोगों को साक्षर बनाती है। पढ़ना, लिखना तथा गिनने का ज्ञान कराना इसका मुख्य कार्य है। समयानुसार इसकी इस धारणा में भी परिवर्तन होने लगा। इसको अब व्यापक रूप में देखा जाने लगा है। प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य केवल वयस्कों को साक्षर बनाना मात्र नहीं है। अपितु उसके अन्तर्गत वह सभी प्रकार की शिक्षा आती है जो प्रत्येक नागरिक को जनतान्त्रिक व्यवस्था का विवेकपूर्ण सदस्य बनाती है।

हमारे यहाँ प्रौढ़-शिक्षा का स्वरूप अभी तक अस्पष्ट है। हमारे यहाँ प्रौढ़ शिक्षा को कई नामों से सम्बोधित किया गया है। इस क्षेत्र में आजकल निम्नलिखित चार प्रकार के नाम प्रचलित हैं-

- | | |
|----------------------|------------------|
| (i) प्रौढ़ शिक्षा | (ii) साक्षरता |
| (iii) आधारभूत शिक्षा | (iv) समाज शिक्षा |

प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्यों का दो दृष्टिकोणों से विवेचन किया जा सकता है:

- (1) व्यक्ति की आवश्यकताओं के दृष्टिकोणों से।
- (2) समाज की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से।

प्रौढ़ शिक्षा का महत्व राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली में अत्यधिक है आज की बदलती हुई परिस्थितियों में सम्पूर्ण जीवन को जीने के लिए सीखने की क्रिया अनवरत रूप से बनी रहनी चाहिए। आजकल इस

बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली पूरे समय के लिए विस्तृत शिक्षा प्रदान नहीं कर सकती। इस प्रणाली में विद्यालय से अलग हुए प्रौढ़ों को पूरे समय, अंशकालीन सेवाकालीन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इस दृष्टि से भी प्रौढ़ शिक्षा का महत्व अधिक है।

11.10 शब्दावली

प्रौढ़ शिक्षा: यह वह शिक्षा है जो वयस्कों को दी जाती है।

1. समाज शिक्षा: नागरिक शिक्षा, आर्थिक सुधार, स्वास्थ्य, भावात्मक एकता एवं सौन्दर्य बोध को समावेशित करने वाली शिक्षा।
2. जन शिक्षा: प्रौढ़-शिक्षा का एक रूप।
3. सामुदायिक शिक्षा: समस्त समुदाय को शिक्षित करने वाली शिक्षा।
4. जन शिक्षण कार्यक्रम: निरक्षरता के उन्मूलन के लिए कार्यक्रम।
5. श्रमिक शिक्षा: नगरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में निवास करने वाले श्रमिकों के लिए शिक्षा।
6. सतत् शिक्षा: वह शिक्षा जिसमें व्यक्ति अपने व्यवसाय, उत्तरदायित्व तथा विभिन्न सीमाओं में रहते हुए अपनी अभिरूचि एवं क्षमता के अनुसार शिक्षा का क्रम जारी रखता है।

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 35
2. 'जन शिक्षा'
3. 'समाज-शिक्षा'
4. 'सामुदायिक शिक्षा'
5. हुमायूँ कबीर

11.12 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. गुप्ता, डॉ० एस०पी० और डॉ०, अलका (2012) "भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास" शारदापुस्तक भवन इलाहाबाद।
2. गुप्ता, एस०पी० एवं गुप्ता, अलका (2010) "भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ", शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
3. त्यागी एवं पाठक (2005) "भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ" विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
4. त्यागी दास गुलसरन (2005) "भारत में शिक्षा का विकास" विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

-
5. नारायण, लक्ष्मी एवं अन्य (2010) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” न्यू कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद।
 6. पाण्डेय, रामशकल और मिश्र, डॉ० करूणा शंकर (2005) “भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएं” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा - 2।
 7. पाण्डेय, डॉ० रामशकल (2005) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा - 2।
 8. पचौरी, डॉ० गिरीश (2009) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” लायल बुक डिपो में रठ (इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस में रठ)।
 9. पुष्प, डा० गीता एण्ड जायस, डॉ०, शीला (2005) “प्रसार शिक्षा” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
 10. भटनागर, सुरेश (2001) “भारत में शिक्षा का विकास” आर०लाल० बुक डिपो में रठ।
 11. भटनागर, सुरेश (2001) “आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं” आर०लाल बुक डिपो में रठ।
 12. सिंह, यू०के० और नायक, ए०के० (2005) “लाइफ लांग एजुकेशन” कामनवेलथ पब्लिसर्स दिल्ली।
 13. शुक्ला, डॉ० सी०एस० (2012) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, में रठ।
-

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रौढ़ शिक्षा को परिभाषित कीजिए तथा इसकी प्रकृति की व्याख्या कीजिए।
2. प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य का वर्णन कीजिए।
3. प्रौढ़ शिक्षा के महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई 12: जीवन पर्यन्त अधिगम: अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसका महत्व (Life Long Learning: Meaning, Nature, Objectives and Its Significance)

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ

12.4 जीवन पर्यन्त अधिगम से सम्बद्ध कुछ अन्य संप्रत्यय

12.5 जीवन पर्यन्त अधिगम की प्रकृति

12.6 जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य

12.7 जीवन पर्यन्त अधिगम का महत्व

12.8 सारांश

12.9 शब्दावली

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

जीवन पर्यन्त अधिगम का विचार इस विचारधारा पर आधारित है कि सुसम्बद्ध रीति से सिखाने-पढ़ाने का कार्य जीवन के कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक ही सीमित नहीं है। यह आजीवन चलने वाला एक उद्यम या कार्य है। यह शिक्षा उसी दिन समाप्त नहीं हो जाती जब बालक स्कूल या कॉलेज से प्रमाण-पत्र या डिग्री प्राप्त कर लेता है। यह सतत् चलती रहती है। यह जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। फ्रेंच भाषा में इसको 'एजुकेशन परमानेंट' (Education Permanent) द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। सन् 1971 में शिक्षा के विकास के लिए यूनेस्को (UNESCO) ने अन्तर्राष्ट्रीय आयोग (International Commission on the Development of Education) की स्थापना की। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'Learning To Be' में विकसित तथा विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों के लिए शैक्षिक योजनाओं के लिए 'आजीवन अधिगम' के प्रत्यय को प्रस्ताविक किया। इस अध्याय में आप जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसके महत्व के बारे में अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि -

- जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ बता सकेंगे।
- जीवन पर्यन्त अधिगम की प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे।
- जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- जीवन पर्यन्त अधिगम के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

12.3 जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ (Meaning of Life-Long Learning)

आयोग के अनुसार, “आरम्भ में, जीवनपर्यन्त अधिगम सापेक्ष रूप से पुरानी परिपाटी-प्रौढ़ शिक्षा, संध्याकालीन पाठ्यक्रम-पर प्रयुक्त एक नये शब्द से अधिक कुछ नहीं थी। उसके बाद, यह विचार व्यावसायिक प्रशिक्षण पर प्रयुक्त किया गया, जिसके बाद उसमें व्यक्तित्व के बहुविध पहलू-बौद्धिक, भावनात्मक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक तथा राजनीतिक-शिक्षात्मक क्रियाकलाप की एक एकीकृत दृष्टि के भीतर समाविष्ट हो गये। अब, अनन्तः जीवनपर्यन्त अधिगम की अवधारणा व्यक्ति तथा समाज के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण शैक्षणिक प्रक्रिया का समावेश करती है। उसका सम्बन्ध प्रथमतः बच्चों की अधिगम से है और जब कि वह बच्चे को अपना जीवन जिस तरह वह चाहता है, उस

तरह जीने में सहायता पहुँचाता है, उसका सारभूत कार्य भावी प्रौढ़ व्यक्ति को स्वायत्तता तथा स्व-अधिगम के विविध रूपों के लिए तैयार करना है।”

जीवनपर्यन्त अधिगम की अवधारणा में अधिगम के सभी पहलुओं का समावेश होता है, उसमें प्रत्येक वस्तु अन्तर्विष्ट होती है और समष्टि उसके भागों के साकल्य की अपेक्षा अधिक बड़ी वस्तु होती हैं अधिगम का पृथक् स्थायी भाग जैसी कोई वस्तु नहीं है जो जीवनपर्यन्त न हो। दूसरे शब्दों में, जीवनपर्यन्त अधिगम कोई अधिगम-पद्धति नहीं है बल्कि ऐसा सिद्धान्त है जिस पर किसी पद्धति का समग्र संगठन आधारित होता है, तथा तदनुसार जिसे उसके प्रत्येक संघटक भाग के विकास का आधार होना चाहिए। आजीवन अधिगम के अन्तर्गत औपचारिक (Formal) सहज (Informal) गैर-औपचारिक/अनौपचारिक (Non-formal) प्रौढ़ शिक्षा आगे की शिक्षा को समझकर स्वयं को जीवनपर्यन्त सीखने वाला विद्यार्थी बना लेता है।

अन्त में, हम कह सकते हैं कि आजीवन अधिगम जीवन-पर्यन्त चलने वाली सृजनात्मक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य मानव व्यक्तित्व की पूर्णता के विकास के लिये सभी प्रकार के अधिगम अनुभव प्रदान करना है।

12.4 जीवन पर्यन्त अधिगम से सम्बद्ध कुछ अन्य संप्रत्यय (New Concepts Related to Life Long Learning)

प्रौढ़ शिक्षा- बहुधा प्रौढ़ अधिगम को ही जीवन पर्यन्त अधिगम समझ लिया जाता है। महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रौढ़ शिक्षा एवं जीवन पर्यन्त अधिगम केन्द्र स्थापित है। इससे भी भ्रम होता है। प्रौढ़ शिक्षा 15 वर्ष से 45 वर्ष की आयु के लोगो के लिए है। इसका पाठ्यक्रम भी होता है। जीवन पर्यन्त अधिगम में प्रौढ़ शिक्षा सम्मिलित है किन्तु यह निश्चित अवधि (15-45 वर्ष) तक सीमित नहीं है।

अनौपचारिक शिक्षा- नान फार्मल एजुकेशन की कल्पना लगभग 5 वर्ष से 11 वर्ष की आयु के उन बालकों के लिए की गई है जो प्रारम्भिक अधिगम से वंचित हैं। अतः अनौपचारिक शिक्षा से जीवन पर्यन्त अधिगम भिन्न है।

औपचारिकतर शिक्षा- इनफार्मल एजुकेशन समाज, राज्य, परिवार या किसी अन्य साधन से प्रसंगतः प्राप्त हो जाती है, जीवन पर्यन्त शिक्षा को पहले से कुछ नियोजित कर लिया जाता है, यह प्रसंगवश शिक्षा नहीं है।

विद्यालयेतर शिक्षा- आउट आफ स्कूल एजुकेशन का अर्थ जीवन पर्यन्त अधिगम में निहित है किन्तु कुछ लोग इसका अर्थ विद्यालय से बाहर दी जाने वाली नवयुवकों की व्यावसायिक अधिगम से लेते हैं। अतः यह जीवन पर्यन्त शिक्षा से भिन्न हो जाती है।

अग्रिम शिक्षा - फरदर एजुकेशन जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ देता है किन्तु सन् 1944 में ब्रिटेन में निर्मित कानून के अन्तर्गत फरदर एजुकेशन उस शैक्षिक प्रयास को कहा गया है जो नवयुवकों को व्यवसाय में प्रवेश के पहले उनके बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक विकास तक सीमित है। इस अर्थ में अग्रिम शिक्षा जीवन पर्यन्त अधिगम से भिन्न है।

लोक शिक्षा - डेनमार्क में फोक स्कूल में चलने वाली शिक्षा से भ्रम के कारण जीवन पर्यन्त अधिगम के स्थान पर लोक शिक्षा का प्रयोग त्याज्य है।

जन शिक्षा - जन शिक्षा की धारणा जीवन पर्यन्त अधिगम में निहित है किन्तु यह शब्द (मास एजुकेशन) चीन में चलाए गये शैक्षिक आन्दोलन के लिए प्रयुक्त होता है। अतः इस शब्द से भी हम बचेंगे।

जनता शिक्षा - रूस में पीपुल्स एजुकेशन के आन्दोलन ने निरक्षरता उन्मूलन में बड़ा योगदान दिया है। जीवन पर्यन्त शिक्षा केवल साक्षरता की शिक्षा नहीं है। अतः इस शब्द का भी प्रयोग जीवन पर्यन्त अधिगम के लिए नहीं किया जा सकता।

समाज शिक्षा - स्वतन्त्र भारत के प्रथम दो दशकों में इसका प्रयोग प्रौढ़ शिक्षा के स्थान पर किया गया था। अब इसका प्रयोग कम हो गया है। इसके स्थान पर 'प्रौढ़ शिक्षा' का प्रयोग होता है। प्रौढ़ शिक्षा से जीवन पर्यन्त अधिगम की भिन्नता हम पहले ही देख चुके हैं।

सामुदायिक शिक्षा - जीवन पर्यन्त अधिगम में सामुदायिक शिक्षा की धारणा भी विद्यमान है किन्तु सामुदायिक शिक्षा शब्द का प्रयोग दक्षिण अमें रिकी देशों में स्थापित सामुदायिक स्कूलों की शिक्षा के लिए रूढ़ हो गया है जिनमें स्कूली बच्चों का सामुदायिक कार्यों को शिक्षा दी जाती है और उनके अभिभावकों को प्रौढ़ शिक्षा दी जाती है।

जीवन पर्यन्त अधिगम - जीवनपर्यन्त अधिगम (लाइफ लांग लर्निंग) की अवधारणा सतत शिक्षा शिक्षा से मिलती-जुलती है और कुछ विद्वान इनका प्रयोग पर्यायवाची के रूप में करते भी हैं। सतत शिक्षा में शिक्षा का भाव निहित है किन्तु जीवन-पर्यन्त अधिगम में प्रासंगिकता, आनुषंगिकता भाव प्रबल हो जाता है। अतः जीवन पर्यन्त अधिगम शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन समझ पड़ता है।

अनुपूरक शिक्षा - कभी-कभी जीवन पर्यन्त अधिगम को अनुपूरक शिक्षा (कम्प्लीमेंटरी एजुकेशन) कह दिया जाता है। वियतनाम में इसी अनुपूरक शिक्षा शब्द का प्रचलन है। 17 या 18 वर्ष से ऊपर के सभी वयस्कों में जो व्यवसायरत हैं, डिग्री स्तर तक के सामान्य शिक्षा के ज्ञान को विकसित किया जाता है जिससे वे उत्पादन बढ़ा सकें व समाजवाद को सुदृढ़ कर सकें। जीवन पर्यन्त अधिगम में अनुपूरक शिक्षा का भाव निहित है। किन्तु यह उससे भिन्न है।

जीवन पर्यन्त अधिगम अधिक व्यापक होने के कारण भारतीय समाज में अधिक स्वीकृत हो रहा है।

12.5 जीवन पर्यन्त अधिगम की प्रकृति (Nature of Life Long Learning):

1. तीन शब्दों जीवन, पर्यन्त तथा अधिगम के ऊपर जीवन पर्यन्त अधिगम का सम्पूर्ण प्रत्यय तथा प्रयास आधारित रहते। इन तीनों शब्दों के अर्थ एवं व्याख्या जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ, आवश्यकता, कार्य विधि एवं क्षेत्र स्पष्ट करते हैं।
2. जीवन पर्यन्त अधिगम की मूल मान्यता है कि मानव अधिगम औपचारिक अध्ययन के बाद समाप्त नहीं हो जाती है, वरन् यह जीवन भर लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। कह सकते हैं कि जीवन पर्यन्त अधिगम व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन वृत्त को समेट लेती है।
3. जीवन पर्यन्त अधिगम केवल प्रौढ़ शिक्षा तक सीमित नहीं है वरन् यह शिक्षा की सभी अवस्थाओं पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, तकनीकी तथा व्यावसायिक आदि को एकीकृत करती है। अतः यह अधिगम को समग्र रूप में देखती है।
4. जीवन पर्यन्त अधिगम के अन्तर्गत शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक तथा अ-अनौपचारिक सभी प्रकार के साधन उपकरण व माध्यम सम्मिलित रहते हैं।
5. परिवार जीवन पर्यन्त अधिगम में प्रथम एवं सबसे महत्वपूर्ण व सार्थक भूमिका अदा करता है। पारिवारिक अधिगम के रूप में यह प्रक्रिया किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन वृत्त में लगातार चलती रहती है।
6. बालक द्वारा समुदाय में अन्तर्क्रिया करने के प्रथम क्षण से ही, समुदाय जीवन पर्यन्त अधिगम में एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाता है। समुदाय वास्तव में व्यावसायिक तथा सामान्य दोनों ही क्षेत्रों में सम्पूर्ण जीवन भर शैक्षिक उत्तरदायित्व निभाता है।
7. शैक्षिक संस्थायें जैसे, विद्यालय, कालेज, विश्वविद्यालय या प्रशिक्षण केन्द्र यद्यपि जीवन पर्यन्त अधिगम के लिए महत्वपूर्ण हैं, तथापि इसके अनेक साधनों में से कुछ हैं। यह बहुत अधिक समय तक न तो अधिगम प्रदान करने के एकाधिकार को बनाये रखा सकती है और न ही समाज के अन्य शैक्षिक साधनों से अलग-अलग रह सकती है।
8. जीवन पर्यन्त अधिगम में मानव जीवन की प्रत्येक अवस्था में क्षैतिज दिशा में भी एकीकरण एवं समग्रता है।
9. जीवन पर्यन्त अधिगम में उर्ध्वधर दिशा में मानव विकास तथा व्यक्तित्व निखार के प्रयासों में निरूपरता व तालमें ल है।

10. चयनित प्रकार के विपरीत जीवन पर्यन्त अधिगम सार्वभौमिक प्रकृति की होती है। यह दिशा के प्रजातांत्रिक तथा सर्वव्यापी रूप को निर्दिष्ट करती है।
11. जीवन पर्यन्त अधिगम में पाठ्यवस्तु, सीखने के साधन, अधिगम तकनीकी तथा सीखने के समय में काफी नम्यता विभेदीकरण विद्यमान रहता है।
12. जीवन पर्यन्त अधिगम एक गत्यात्मक अधिगमन है। जो नये-नये परिवर्तनों के साथ सीखने की सामग्री व साधनों के अनुकूलन की अनुमति देता है।
13. जीवन पर्यन्त अधिगम प्रणाली के द्वारा अधिगम प्रदान करने के विभिन्न विकल्प तथा प्रारूप प्रस्तुत होते हैं।
14. जीवन पर्यन्त अधिगम के मुख्य रूप से दो अंग हैं सामान्य तथा व्यावसायिक, किन्तु दोनों अंग एक दूसरे से पूर्णतया अलग नहीं हैं बल्कि एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे पर निर्भर हैं।
15. व्यक्ति एवं समाज के विभिन्न प्रकार के अनुकूलित, अपेक्षित तथा अनुभूत कार्यों की पूर्ति जीवन पर्यन्त अधिगम के द्वारा सम्भव होती है।
16. जीवन पर्यन्त अधिगम एक सुधारात्मक कार्य अर्थात् वर्तमान अधिगम व्यवस्था के दोषों को दूर करना भी सम्पादित करती है।
17. जीवन पर्यन्त अधिगम का अंतिम लक्ष्य व्यक्ति के जीवन स्तर को कम से कम यथावत बनाये रखना तथा परिस्थितिनुसार उसे अधिकाधिक श्रेष्ठ बनाना है।
18. जीवन पर्यन्त अधिगम की तीन प्राथमिक आवश्यकताएँ क्रमशः व्यक्ति को अवसर (Opportunity)] प्रेरणा (Motivation) तथा शैक्षिकता (Hernings) प्रदान करना है।
19. जीवन पर्यन्त अधिगम सभी प्रकार की अधिगम व्यवस्थाओं का नियोजन, एकीकरण तथा क्रियान्वयन करने वाला व्यवहारिक सिद्धान्त है।
20. व्यवहारिक स्तर पर जीवन पर्यन्त अधिगम की प्रणाली परिपूर्ण अधिगम की एक समग्र व नियोजित व्यवस्था प्रस्तुत करती है।

12.6 जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य

यद्यपि जीवन पर्यन्त अधिगम बहुउद्देश्यीय होती है और उसके उद्देश्यों को सीमित नहीं किया जा सकता तथापि इसके निम्नलिखित सामान्य उद्देश्यों को ध्यान में रखा जा सकता है-

1. नवयुवकों और वयस्कों के अधिगम स्तर को ऊँचा उठाना- जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य नवयुवकों और वयस्कों के अधिगम स्तर को ऊँचा उठाना है। जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा किसी भी व्यक्ति के अधिगम स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है क्योंकि जो विषय वस्तु एक या दो बार

पढ़ने या सीखने के बाद याद नहीं हो पाती उस विषय-वस्तु को बार-बार सीखने से वह याद हो जाती है अतः व्यक्ति हमें शा पढ़ने-लिखने की आदत डालना है।

2. **आर्थिक संसाधनों को गतिशील बनाना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य आर्थिक संसाधनों को गतिशील बनाना भी है राष्ट्र के विकास में आर्थिक संसाधनों में गतिशीलता आवश्यक है जीवन पर्यन्त अधिगम के माध्यम से व्यक्ति को शिक्षित किया जा सकता है, जो कि शिक्षित होकर ठीक प्रकार से संसाधनों का प्रयोग करेगा। नवयुवक या व्यवस्क अपना आर्थिक विकास करेगा तथा साथ ही साथ, समाज देश का भी आर्थिक विकास करेगा। राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु जीवन पर्यन्त अधिगम एक प्रभावी साधन है। यदि आर्थिक संसाधनों को गतिशील बनाया जाता है तो शिक्षित किसान अधिक अन्न उत्पादन कर सकता है तथा जो मजदूर शिक्षित होगा वह कल-कारखानों में उत्पादन क्षमता में वृद्धि निश्चित रूप से करेगा। ऐसी भावना को विकसित करना है।

3. **स्थानीय संसाधनों के उपयोग और सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य यह भी है कि यह स्थानीय संसाधनों के उपयोग और सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करे। स्थानीय संसाधनों के उपयोग से व्यक्ति को अपने ही क्षेत्र में रोजगार प्राप्त होगा। नवयुवक आत्मनिर्भर भी होगा। इस प्रकार का विचार व्यक्ति के अन्दर पैदा करना है। जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा व्यवस्क में अपने समुदाय के साथ कार्य करने की प्रेरणा भी मिलती है। जो कार्य अकेले नहीं कर पाता वह समूह के साथ जल्दी सीख जाता है। सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए श्रमदान, पास पड़ोस की सेवा, यातायात के नियम सीखना, विकलांगों को पढ़ाना, चलचित्र प्रदर्शन की व्यवस्था करना, रेडियो एवं दूरदर्शन का सामाजिक उपयोग करना आदि पर बल देना है।

4. **व्यक्ति की कार्यक्षमता और कुशलता का विकास करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम के माध्यम से व्यक्ति की कार्यक्षमता एवं कुशलता को विकसित करना। निरन्तर अभ्यास से किसी भी योग्यता को प्राप्त किया जा सकता। व्यक्ति की कार्यक्षमता जब बढ़ती है तो उसमें कुशलता का विकास स्वतः ही हो जाता है। अधिगम एवं कार्यक्षमता एक दूसरे से संबंधित है। जिस प्रकार अधिगम एवं कार्यक्षमता एक दूसरे से सम्बन्धित है ठीक उसी प्रकार अधिगम एवं कुशलता का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा व्यक्ति में कार्य करने की क्षमता एवं कुशलता दोनों का विकास करना है।

5. **जन चेतना का विकास करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य जन चेतना का विकास करना भी है। इसके द्वारा समाज में लोगों को जागृत करना है। अधिगम के द्वारा व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान प्राप्त करके अपने अधिकारों के प्रति जागृत करने की भावना उत्पन्न करना है। अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने योग्य हो जाता है समाज के अन्य नवयुवकों एवं व्यस्कों को जागृत करता है व्यक्ति जितना ही ज्ञानार्जन करेगा उसमें उतना ही अपने प्रति एवं समाज के प्रति चेतना का विकास

होगा। अतः जन चेतना को विकसित करने का कार्य जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा ही सम्भव है। जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा वह सदैव दूसरों को कुछ देता है व उनसे कुछ लेता है, वह निरन्तर स्वाध्याय व पठन-पाठन सम्बन्धी क्रियाएं करता रहते है। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षासु समाज का अंग बनाये। ये व्यक्ति अपने पर्यावरण से सुपरिचित रहने का सदैव प्रयत्न करेंगे, देश की आवश्यकताओं का मूल्यांकन कर उसकी प्रगति में अपना योगदान करें तथा निरन्तर जागरूक रहें, ऐसी भावना को विकसित करना है।

6. **व्यक्ति में समस्या समाधान के लिए चेतना उत्पन्न करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्ति में ऐसी चेतना उत्पन्न करना है कि वह स्वयं किसी समस्या के समाधान के लिए जागृत हो इस अधिगम से व्यक्ति में सोचने समझने की शक्ति का विकास करना है। जीवन पर्यन्त अधिगम व्यक्ति को घरेलू समस्याओं से निजात पाने के लिए भी तैयार करती है। हमारे पास कुछ ऐसी समस्याएं होती जिसका समाधान कोर्ट द्वारा न करके स्वयं करना पड़ता है जिसके लिए हमें सुझ-बुझ, सामान्य ज्ञान तथा व्यवहारिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। अतः इस प्रकार के ज्ञान एवं सुझ-बुझ एवं, व्यवहारिक ज्ञान को विकसित करना है। घर-परिवार एवं समाज में रहकर भी हमें कुछ निर्णय स्वयं लेने पड़ते हैं। जिसके लिए हमें विशेष ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के समस्याओं के माध्यम हेतु हमें निरन्तर अधिगम की आवश्यकता है। व्यक्ति में ऐसी चेतना शक्ति पैदा करना है।

7. **निर्णय लेने की योग्यता का विकसित करना-** निर्णय लेने की योग्यता को विकसित करना भी जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य हैं। व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों से जुड़ा होता है। कुछ निर्णय उसे स्वयं लेने पड़ते हैं चाहे वह बालक हो या नवयुवक हो या फिर व्यस्क ही क्यों न हो। परिवारिक समस्याओं में या फिर समाज में विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में निर्णय लेने पड़ते है। यह सभी जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा ही सम्भव है। क्योंकि निरन्तर अधिगम से व्यक्ति में निर्णय लेने की योग्यता का विकास होता है। यह प्रायः देखा जाता है। कि व्यक्ति में आत्म विश्वास न होने के कारण किसी कार्य-क्षेत्र में निर्णय नहीं ले पाता, वह घबड़ा जाता है। निर्णय लेने की योग्यता के अभाव में वह किसी व्यवसाय का चुनाव भी सही रूप में नहीं कर पाता है। अतः जीवन पर्यन्त अधिगम का यह मुख्य उद्देश्य है कि वह व्यक्ति में निर्णय शक्ति की योग्यता का विकास करे ताकि वे स्वयं निर्णय लेने में समर्थ हों।

8. **नेतृत्व के कौशलों को विकसित करना-** व्यक्ति में नेतृत्व के कौशलों को विकसित करना भी जीवन पर्यन्त अधिगम का प्रमुख उद्देश्य है। आज के परिवेश में प्रत्येक जगह नेतृत्व की आवश्यकता है। बिना नेतृत्व का कोई भी कार्य सुचारू रूप से आगे नहीं बढ़ पाता है। अतः व्यक्ति में नेतृत्व की ऐसी योग्यता पैदा करना है कि वह जहाँ भी हो चाहे वह घर हो, समाज हो या देश का ही नेतृत्व क्यों न करना है। सभी कौशलों का विकास करना इसका उद्देश्य है और यह विकास अधिगम के द्वारा ही सम्भव है ज्ञान एक ऐसा औजार है जिसके द्वारा किसी भी गुण या योग्यता को विकसित किया जा सकता है।

9. **जीवन के मूल्यों का विकास करना:** जीवनपर्यन्त अधिगम द्वारा व्यक्ति के जीवन के मूल्यों को विकसित किया जा सकता है। व्यक्ति के लिए जीवन के मूल्यों का विकसित होना अति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को जीने के लिए एक कुछ मूल्यों को निर्धारित करता है उसके अनुसार अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। परन्तु यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जो भी जीवन मूल्य व्यक्ति निर्धारित करे वह सार्थक एवं आदर्श हों। व्यक्ति के विकास में सामाजिक मूल्यों का विशेष महत्व है। चूंकि हम समाज में रहते हैं इसलिए हमें जीवन के सभी मूल्यों को विकसित करना आवश्यक है। इसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित करने पर जोर दिया गया है। इसमें विभिन्न विषयों को मूल्यपरक बनाकर उसके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने पर देना है जिससे उनका संतुलित एवं सर्वतोन्मुखी विकास हो सके।

10. **घरेलू शिक्षा और सामाजिक शिक्षा प्रदान करना:** जीवन पर्यन्त अधिगम का यह भी उद्देश्य है कि वह व्यक्तियों को घरेलू शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक शिक्षा भी प्रदान करें क्योंकि व्यक्तित्व के विकास में दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। घरेलू शिक्षा ज्यादातर महिलाओं के लिए उपयोगी है जबकि सामाजिक शिक्षा पुरुष एवं महिला दोनों के लिए समान रूप से महत्व रखती है क्योंकि समाज के विकास में दोनों का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। घरेलू शिक्षा के माध्यम से घर-परिवार में उत्पन्न विभिन्न प्रकार की समस्याओं को घर में ही सुलझाया जा सके ऐसी योग्यता पैदा करना है, जबकि सामाजिक शिक्षा द्वारा समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की बुराईयों एवं समस्याओं को दूर करना है समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि व्यक्ति को सामाजिक ज्ञान नहीं है अतः व्यक्ति को सामाजिक ज्ञान देना। व्यक्ति अपने कार्य को करते समय सामाजिक आदर्श एवं मूल्यों को भूल जाता है इसे याद दिलाना तथा व्यक्ति में उत्पन्न स्वार्थपरता को महत्व न देना भी इसका उद्देश्य है। वह यह भूल जाता कि समाज के अन्य लोगो का मेरे कार्य से कितना लाभ है और कितना हानि। घरेलू शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति घरेलू व्यवसाय को भी आसानी से समझकर चुन लेता है। अतः जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य घरेलू शिक्षा एवं सामाजिक शिक्षा दोनों को एक आधार प्रदान करना है। आजीवन अधिगम से हमें घरेलू ज्ञान के साथ-साथ सामाजिक ज्ञान भी प्राप्त होता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को सामाजिक बनाना एवं उसे सामाजिक नियमों, रितिरिवाजों तथा आदर्शों से परिचित कराना और उन्हीं के अनुसार कार्य करने की योग्यता का विकास करना है।

11. **जनसंचार माध्यमों के उचित प्रयोग की जानकारी देना-** जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा व्यक्ति जनसंचार माध्यमों का उचित प्रयोग करना सीख जाता है। इससे व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की जानकारियां मिलती है। जनसंचार माध्यम व्यक्ति के ज्ञान को निरन्तर बढ़ाने का प्रयास करता है। प्रत्येक प्रकार के संचार माध्यमों से हमें ज्ञान प्राप्त होता है। सूचना सम्प्रेषण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास करने की आवश्यकता भी है शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में भी नये आयाम स्थापित हुए हैं

आवश्यकता इस बात की है कि हम साधनों का उचित प्रयोग करें। रेडियो, दूरदर्शन, कम्प्यूटर नेटवर्किंग आदि के उचित प्रयोग को पर बल देना है। यदि व्यक्ति इनके उचित प्रयोग को अधिगणित कर लेता है तो उसका व्यक्तित्व अधिकाधिक विकसित हो सकता है। इसके अन्तर्गत श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग (Use of Audio-Visual Aids) चार्ट, चित्र, प्रदर्शन कार्ड, वास्तविक वस्तुएं, स्लाइड, फिल्मस्ट्रिप, कठपुतली, टी0वी0 रेडियो टेप, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, आडियो टेप स्थानीय प्रचार माध्यमों आदि का उचित प्रयोग की जानकारी देना भी जीवन पर्यन्त अधिगम का मुख्य उद्देश्य है।

12. **स्वस्थ मनोरंजन एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य स्वस्थ मनोरंजन को बढ़ावा देना है। इसमें स्वास्थ्य पर आधारित कार्यक्रमों को प्रदर्शित करके चेतना का विकास करना है। उन्हें स्वास्थ्य एवं सफाई के आधारभूत सिद्धान्तों से भी परिचित कराना, आजीवन अधिगम का उद्देश्य है। जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्ति या व्यस्क को इस योग्य बनाना है कि अपने अवकाश काल का सदुपयोग करके अपने मानसिक स्वास्थ्य को सुरक्षित एवं ठीक रख सके। इसका उद्देश्य स्वस्थ मनोरंजन के द्वारा मानसिक तनावों एवं संघर्षों को दूर करके व्यक्ति या नवयुवक के जीवन में अच्छे संस्कारों का विकास करना है। जबकि सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यस्कों में ज्ञान पिपासा को जागृत करना, आत्मविकास में अभिवृद्धि करना, जीवन के प्रति कलात्मक दृष्टि को उत्पन्न करना और जीवन दर्शन का निर्माण करना भी है।

13. **स्वास्थ्य विज्ञान की सामान्य जानकारी देना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्तियों को स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी देना है। जिसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करना एवं स्वास्थ्य से संबंधित विषयों एवं सिद्धान्तों की जानकारी देना है। मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा करना, रोगों की रोकथाम करना एवं रोगों का उपचार करना भी जीवन पर्यन्त अधिगम का मुख्य उद्देश्य है। इसके द्वारा व्यक्ति को अपनी मौलिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, निवास) की पूर्ति के लिए कुशलता, दक्षता और योग्यता प्रदान करना है। व्यक्ति को मूल - प्रवृत्तियों, संवेगों तथा अन्य जन्मजात शक्तियों पर नियंत्रण तथा संतुलन रखने की क्षमता प्रदान करना है। जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्ति का संतुलित एवं सर्वांगीण विकास करना है। इसका मुख्य उद्देश्य मात्र ज्ञान प्रदान करना ही नहीं है वरन् व्यक्ति को अपने जीवन स्तर को सुधारने तथा शारीरिक एवं मानसिक हित के लिए आवश्यक कार्य करने हेतु प्रशिक्षित करना है जिससे वह जीवन भर प्रसन्नचित रह सके।

14. **क्रियात्मक साक्षरता का प्रसार करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्ति में क्रियात्मक साक्षरता का प्रसार करना है जिसमें अक्षर ज्ञान एवं अंक ज्ञान देना, अपने वंचित होने के कारणों के प्रति जागरूकता और संगठन तथा विकास की प्रक्रिया में भागीदारी के जरिए इन कारणों का निदान करना, अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने और खुशहाल बनाने के लिए जरूरी हुनरों को

सीखाना तथा राष्ट्रीय एकता, पर्यावरण संरक्षण, महिला पुरुष समानता और छोटे परिवार के आदर्शों का पालन करना है।

15. **राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना-** जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्ति में राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है। इसके लिए सभी व्यक्तियों को देश के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान कराया जाए। सभी नवयुवकों एवं व्यस्कों को स्वतन्त्रता प्राप्ति से सम्बन्धित बातों से विशेष रूप से परिचित कराया जाए तथा राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए सभी जातियों, सम्प्रदायों और राष्ट्रों में अधिक में ल उत्पन्न करने वाली पढ़ाई-लिखाई को प्रोत्साहित करना है। शैक्षिक कार्यक्रमों के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करना भी जीवन पर्यन्त अधिगम का मुख्य उद्देश्य है। राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल बनाने के लिए जीवन पर्यन्त अधिगम के अन्तर्गत फिल्मों, समाचारपत्रों और रेडियों का अधिक से अधिक प्रयोग पर बल दिया गया है। इसमें साम्प्रदायिक खतरों के बारे में लोगों को अधिगम के लिए जनसम्पर्क आन्दोलन आरम्भ हो तथा साम्प्रदायिक एकता से सम्बन्धित अध्ययन गोष्ठियों और नाटकों का आयोजन करना है।

अभ्यास प्रश्न

1. सन् 1971 में शिक्षा के विकास के लिए यूनेस्को (UNESCO) नेकी स्थापना की।
2. जीवन पर्यन्त अधिगम का उद्देश्य व्यक्ति काविकास करना है।
3. जीवन पर्यन्त अधिगम एक प्रकार कीअधिगम है।
4. राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतुअधिगम एक प्रभावी साधन है।
5. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में द्रुतगति लाना शिक्षण एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है जिसेआयोग ने इस उद्देश्य पर बल दिया है।

12.7 जीवन पर्यन्त अधिगम का महत्व (Importance of Lifelong Learning)

जीवन पर्यन्त अधिगम जनतन्त्र की सफलता की कुंजी है। कोई भी जनतन्त्र तब सफल हो सकता है जब उसके नागरिक अपने अधिकारों का सही उपयोग और कर्तव्यों का समुचित पालन करें। इसके लिए उन्हें शिक्षित होना ही जीवन भर शिक्षा के सम्पर्क में रहना है और किसी न किसी प्रकार उन्हें जीवनपर्यन्त अधिगम में तत्पर रहना है। इसलिए जीवन पर्यन्त अधिगम जनतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है।

जीवन पर्यन्त अधिगम एक प्रकार की समग्र और समन्वित अधिगम है। ज्ञान के महत्व से हम सभी परिचित हैं। ज्ञान ही सदगुण है, ज्ञान शक्ति है। आज ज्ञान का इतना अधिक विस्तार हो गया है, हो रहा है कि एक निश्चित अवधि तक औपचारिक शिक्षा प्राप्ति पर्याप्त नहीं हैं। हमें औपचारिक शिक्षोपरान्त बाद में भी सतत क्रम से अधिगम प्राप्त करते रहना है। ज्ञान में विस्फोट के कारण अनेक

नये विषय आ गये है। जब तक बालक अपनी औपचारिक शिक्षा पूरी करता है तब तक एक नया विषय आ जाता है जिसकी जानकारी के लिए नवयुवक को जीवन पर्यन्त अधिगम की आवश्यकता पड़ती है।

राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु जीवन पर्यन्त अधिगम एक प्रभावी साधन है। अब शिक्षा कोई विलासिता की वस्तु नहीं है। यह अब एक पूंजी निवेश के रूप में मान्य है और यह स्वीकृत सिद्धान्त बन गया है कि यदि व्यक्ति शिक्षित है तो वह राष्ट्र की पूंजी में अधिक वृद्धि कर सकता है। शिक्षित किसान अधिक अन्न उत्पादन कर सकता है। अतः व्यक्ति के लिए जीवन पर्यन्त अधिगम का महत्व अधिक है।

अधिगम द्वारा समाज में समानता के सिद्धान्त का अनुपालन होता है। अतः समाज के पिछड़े और दलित वर्ग को सम्मानजनक सामाजिक जीवन व्यतीत करने में सक्षम बनाने के लिए जीवन पर्यन्त अधिगम कारगर अस्त्र साबित हो सकती है। जीवन पर्यन्त अधिगम द्वारा समानता का सिद्धान्त तो व्यवहृत होता ही है, स्वयं अधिगम में शैक्षिक अवसरों की समानता के सिद्धान्त का पालन कर हम सामाजिक समरसता को सुनिश्चित कर सकते हैं।

राष्ट्र और भारतीय समाज को परम्परागत ढाँचे से ऊपर उठना है। तकनीकी, व्यावसायिक और प्राविधिक विकास करके ही हम समाज का आधुनिकीकरण कर सकते हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में द्रुतगति लाना शिक्षण एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। कोठारी आयोग ने इस उद्देश्य पर बल दिया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति केवल औपचारिक शिक्षा से सम्भव नहीं है। अतः जीवन पर्यन्त अधिगम की अत्यधिक आवश्यकता एवं महत्व है।

भारत एक संस्कृतप्रधान देश है। इसकी संस्कृति की अक्षुण्णता एवं शाश्वतता का विश्व कायल है। इसके संरक्षण एवं इसमें आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन की सदा आवश्यकता पड़ती है। जीवन पर्यन्त परिमार्जन हेतु जीवन पर्यन्त अधिगम की विशेष महत्व है। अतः जीवन पर्यन्त अधिगम की व्यवस्था होनी चाहिए।

केवल साक्षरता-अभियान और प्रौढ़ शिक्षा से ही काम नहीं चल सकता। प्रायः यह देखा जाता है कि साक्षरता के बाद व्यक्ति कुछ समय बाद पुनः निरक्षर हो जाता है। व्यक्ति को पुनः निरक्षर होने से बचाना है। अतः जीवन पर्यन्त अधिगम की जरूरत है। नव साक्षरों को ज्ञान के सम्पर्क में रखने के लिए एवं उन्हें पुनः निरक्षर होने से बचाने के लिए उन्हें कुछ सामग्री चाहिए जिसे पढ़कर वे साक्षर बने रह सकें। उनके लिए कुछ कार्यक्रम भी होने चाहिए। नव साक्षरों के अधिगम को स्थिर रखने के लिए, उपयुक्त सामग्री निर्माण एवं उचित कार्यक्रम चयन द्वारा हम उनकी सहायता कर सकते हैं। अतः नवसाक्षरों के लिए जीवन पर्यन्त अधिगम का उतना ही महत्व है जितना अन्य व्यक्तियों को।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की दृष्टि से आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से जीवन पर्यन्त अधिगम की अधिक महत्व है। विश्व के सभी देशों के लिए इसका महत्व है। किन्तु भारत जैसे विकासशील देश के लिए तो इसकी विशेष रूप से आवश्यकता की अनुभूति होती है। भारती समाज के आधुनिकीकरण हेतु, इसके तकनीकी एवं व्यावसायिक विकास के लिए एवं जनतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुपालन के लिए जीवन पर्यन्त अधिगम का विशेष महत्व है।

भविष्य की शैक्षिक चुनौतियों का सामना करने में जीवन पर्यन्त अधिगम की भूमिका को अनेक शैक्षिक एवं सामाजिक संस्थाओं ने भी स्वीकार किया है। उदाहरण के लिए यूरोप की समिति ने जीवन पर्यन्त अधिगम पर अनेक सर्वेक्षण कराये हैं तथा अपने राष्ट्रों के लिए इस पर महत्वपूर्ण साहित्य तैयार कराया है। इसी प्रकार ओईसीडी ने भी जीवन पर्यन्त अधिगम की योजना के रूप में आवृत्तक अधिगम के विचार को विकसित किया है।

जीवन पर्यन्त अधिगम प्रणाली को व्यावहारिक रूप से स्वीकार करने से पूर्व इससे होने वाले लाभ पर भी विचार करना अति आवश्यक है। जीवन पर्यन्त अधिगम के प्रवर्तक अपने पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि जीवन पर्यन्त अधिगम शैक्षिक अवसरों के वितरण में समानता लायेगी। इसे अपनाने के अनेक आर्थिक लाभ हैं। बदलते पारिवारिक व सामाजिक परिवेश में यह आवश्यक है तथा इसे अपनाने के महत्वपूर्ण तकनीकी व्यावहारिक कारण हैं, परन्तु जीवन पर्यन्त अधिगम को अपनाने से पूर्व इन सभी तर्कों का औचित्य देखना होगा।

जीवन पर्यन्त अधिगम की विभिन्न अवस्थाओं के लिए उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम निर्धारित करने के बाद अधिगम प्रक्रिया को निश्चित करना होगा। इसके लिए पाठ्यवस्तु, अध्यापन विधियाँ, शिक्षा तकनीकी, छात्र क्रियाएं, मूल्यांकन प्रविधियों आदि का निर्धारण करना होगा। इन सभी को स्पष्ट करना आवश्यक है। इस दिशा में अभी कोई प्रयास नहीं हुआ है।

वास्तव में जीवन पर्यन्त अधिगम का प्रयास एक विकसित होता प्रयत्न है जो साहित्य में विद्यमान है। फिलहाल यह शैक्षिक विकास के लिए एक दिशा निर्देश या शिक्षा दर्शन मात्र है। जीवन पर्यन्त अधिगम को व्यावहारिक रूप देने से पूर्व अनेक प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करना होगा। अतः आज की मुख्य आवश्यकता जीवन पर्यन्त अधिगम पर चिन्तन तथा विचारविमर्श करना है जिससे जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, प्रक्रिया, मूल्यांकन प्रविधियाँ, शिक्षा तकनीकी, अध्यापकों की भूमिका, छात्र क्रियाओं आदि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकरणों के बारे में समुचित निर्णय लिया जा सके। ऐसा करने के उपरान्त ही जीवन पर्यन्त अधिगम के क्रियान्वयन की दिशा में कोई ठोस कदम उठाया जा सकता है।

जीवन पर्यन्त अधिगम सतत चलने वाली प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न चरणों में जमाने के साथ चलने के लिए आवश्यक ज्ञान व कौशल प्रदान करना है।

जीवन पर्यन्त अधिगम प्रौढ़ शिक्षा से अधिक व्यापक होती है। विज्ञान तथा तकनीकी के विकास के कारण आ रहे परिवर्तनों के सापेक्ष व्यक्ति को समायोजन करने की दिशा में जीवन पर्यन्त अधिगम अत्यन्त आवश्यक है। समानता, आर्थिक लाभ, बदलते परिवेश तथा तकनीकी व व्यावसायिक परिवर्तन जीवन पर्यन्त अधिगम के महत्व को और भी अधिक बढ़ा देते हैं।

जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अध्यापन विधियों, शिक्षा तकनीकी तथा मूल्यांकन प्रविधि आदि प्रकरणों के सम्बंध में समुचित निर्णय लेने की आवश्यकता है।

12.8 सारांश

इस अध्याय में आपने जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य और इसके महत्व के बारे में अध्ययन किया। यहाँ पर इन सभी तथ्यों के संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

जीवनपर्यन्त अधिगम की अवधारणा में अधिगम के सभी पहलुओं का समावेश होता है, उसमें प्रत्येक वस्तु अन्तर्विष्ट होती है और समष्टि उसके भागों के साकल्य की अपेक्षा अधिक बड़ी वस्तु होती है अधिगम का पृथक् स्थायी भाग जैसी कोई वस्तु नहीं है जो जीवनपर्यन्त न हो। दूसरे शब्दों में, जीवनपर्यन्त अधिगम कोई अधिगम-पद्धति नहीं है बल्कि ऐसा सिद्धान्त है जिस पर किसी पद्धति का समग्र संगठन आधारित होता है, तथा तदनुसार जिसे उसके प्रत्येक संघटक भाग के विकास का आधार होना चाहिए। आजीवन अधिगम के अन्तर्गत औपचारिक (Formal) सहज (Informal) गैर-औपचारिक/अनौपचारिक (Non-formal) प्रौढ़ शिक्षा आगे की शिक्षा को समझकर स्वयं को जीवनपर्यन्त सीखने वाला विद्यार्थी बना लेता है।

जीवन पर्यन्त अधिगम प्रौढ़ शिक्षा से अधिक व्यापक होती है। विज्ञान तथा तकनीकी के विकास के कारण आ रहे परिवर्तनों के सापेक्ष व्यक्ति को समायोजन करने की दिशा में जीवन पर्यन्त अधिगम अत्यन्त आवश्यक है। समानता, आर्थिक लाभ, बदलते परिवेश तथा तकनीकी व व्यावसायिक परिवर्तन जीवन पर्यन्त अधिगम के महत्व को और भी अधिक बढ़ा देते हैं।

12.9 शब्दावली

जीवन पर्यन्त अधिगम: सुसम्बद्ध रीति से सिखाने-पढ़ाने का आजीवन चलने वाला एक उद्यम या कार्य।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अन्तर्राष्ट्रीय आयोग (International Commission on the Development of Education)
2. संतुलित एवं सर्वांगीण
3. समग्र और समन्वित
4. जीवन पर्यन्त
5. कोठारी

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. गुप्ता, डॉ० एस०पी० और डॉ०, अलका (2012) “भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास” शारदापुस्तक भवन इलाहाबाद।
2. गुप्ता, एस०पी० एवं गुप्ता, अलका (2010) “भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं”, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
3. त्यागी एवं पाठक (2005) “भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
4. त्यागी दास गुलसरन (2005) “भारत में शिक्षा का विकास” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
5. नारायण, लक्ष्मी एवं अन्य (2010) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” न्यू कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद।
6. पाण्डेय, रामशकल और मिश्र, डॉ० करूणा शंकर (2005) “भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा - 2।
7. पाण्डेय, डॉ० रामशकल (2005) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा - 2।
8. पचौरी, डॉ० गिरीश (2009) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” लायल बुक डिपो में रठ (इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस में रठ)।
9. पुष्प, डा० गीता एण्ड जायस, डॉ०, शीला (2005) “प्रसार शिक्षा” विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
10. भटनागर, सुरेश (2001) “भारत में शिक्षा का विकास” आर०लाल० बुक डिपो में रठ।
11. भटनागर, सुरेश (2001) “आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ” आर०लाल बुक डिपो में रठ।
12. सिंह, यू०के० और नायक, ए०के० (2005) “लाइफ लांग एजुकेशन” कामनवेलथ पब्लिसर्स दिल्ली।
13. शुक्ला, डॉ० सी०एस० (2012) “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक” इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, में रठ।

14. Singh, U.K. & Sudarshan K.N. (2004) "Adult Education" discovery Publishing House New Delhi.

निबंधात्मक प्रश्न

1. जीवन पर्यन्त अधिगम का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा जीवन पर्यन्त अधिगम की प्रकृति की व्याख्या कीजिए।
2. जीवन पर्यन्त अधिगम के उद्देश्य का वर्णन कीजिए।
3. जीवन पर्यन्त अधिगम के महत्व का वर्णन कीजिए।

**इकाई 13: सतत शिक्षा: अर्थ, प्रकृति, उद्देश्य व महत्व
(Continuing Education : Meaning, Nature and Objectives, and Its Significance)**

इकाई की रूपरेखा

-
- 13.1 प्रस्तावना
 - 13.2 उद्देश्य
 - 13.3 सतत शिक्षा का अर्थ
 - 13.4 सतत शिक्षा की प्रकृति
 - 13.5 सतत शिक्षा की कार्य विधि :
 - 13.6 भारत में सतत शिक्षा का विकास:
 - 13.7 सतत शिक्षा के गुण व दोष:
 - 13.8 सतत शिक्षा के उद्देश्य:
 - 13.9 भारत में सतत शिक्षा का महत्व
 - 13.10 सतत शिक्षा प्रदान करने की विधियां :
 - 13.11 भारत में सतत शिक्षा की समस्याएं एवं उनके समाधान
 - 13.12 सारांश
 - 13.13 शब्दावली
 - 13.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 13.15 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
 - 13.16 निबंधात्मक प्रश्न
-

13.1 प्रस्तावना

सतत और आजीवन शिक्षा, शिक्षा के अनौपचारिक साधन है। ये वयस्क शिक्षा कार्यक्रमों के महत्वपूर्ण भाग बन गए हैं। सतत शिक्षा और आजीवन शिक्षा के कार्यक्रम व्यापक रूप से स्वीकृत है। अनौपचारिक शिक्षा के शैक्षिक संस्थानों का सतत शिक्षा के साधन में रूपान्तर किए जाने की प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है।

शिक्षा एक सतत और आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। यह विद्यालय की शिक्षा के साथ समाप्त नहीं होती। वर्तमान युग के वयस्कों को तेजी से परिवर्तित होते विश्व और जीवन एवं समाज की बढ़ती हुई जटिलताओं को समझने की आवश्यकता है। जिन्होंने अत्यन्त प्रगतिशील और आधुनिक शिक्षा प्राप्त की है उन्हें भी सीखना जारी रखना चाहिए। सतत शिक्षा आधुनिक युग की आवश्यकता है। यह बेहतर जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा में कोई समापन बिन्दु नहीं होता है। शिक्षा में पूर्णता के लिए शिक्षा सदैव जारी रखना चाहिए।

सतत शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है - सदैव चलने वाली शिक्षा, जीवन भर चलने वाली शिक्षा इसलिए इसे जीवन पर्यन्त शिक्षा भी कहते हैं। मनुष्य अपने जीवन में जिन व्यक्तियों के सम्पर्क

में आता है और जिन परिस्थितियों से होकर गुजरता है उनसे कुछ न कुछ सीखता रहता है। शिक्षा का क्षेत्र अति व्यापक होता है और सतत शिक्षा के क्षेत्र में निश्चित कार्यक्रम आते हैं और ये कार्यक्रम भिन्न भिन्न देशों की सतत शिक्षा में भिन्न भिन्न है। इस इकाई के अंतर्गत आप सतत शिक्षा के स्वरूप, प्रकृति व महत्व का अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1. सतत शिक्षा के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. सतत शिक्षा की प्रकृति व महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।

13.3 सतत शिक्षा का अर्थ:

सतत शिक्षा का शिखर आधुनिक युग की देन है। 20 वीं सदी में ज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में इतनी तीव्र गति से विकास हुआ है कि कल सीखा हुआ ज्ञान और कौशल आज के लिए कम अर्थ का रह गया है। अतः आवश्यकता इस बात की महसूस हुई कि विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों को उनके क्षेत्र विशेष के अद्यतन ज्ञान एवं कौशल से निरन्तर अवगत कराया जाए। इस हेतु जो शिक्षा व्यवस्था बनाई गई उसे सतत शिक्षा की संज्ञा दी गई।

सतत शिक्षा को बढ़ावा देने में यूनेस्को की भूमिका उल्लेखनीय है। इसने 1971 में फ्रांस के तत्कालीन शिक्षा मन्त्री मोशिये फॉरे की अध्यक्षता में एक अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया। इस आयोग ने 21 राष्ट्रों की तत्कालीन शिक्षा प्रणालियों का अध्ययन किया और उसके आधार पर अपना प्रतिवेदन 'लर्निंग टू बी' के नाम से प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में दो बातों पर विशेष बल दिया गया है। एक भविष्योन्मुखी और दूसरी सतत शिक्षा।

भविष्योन्मुखी शिक्षा से तात्पर्य औपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को भविष्य की सम्भावनाओं और चुनौतियों के अनुकूल बनाने से है और सतत शिक्षा से तात्पर्य काम धन्धों में लगे व्यक्तियों की जीवन और उनके कार्य क्षेत्रों से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञान एवं कौशल प्रदान करने से है।

श्री घेष ने सतत शिक्षा को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है - "सतत शिक्षा का अर्थ उन शैक्षिक अनुभवों से है जो प्रौढ़ व्यक्तियों को उनकी आवश्यकताओं और रुचियों के अनुसार प्रदान किए जाते हैं।"

श्री सतीश चन्द्र के शब्दों में, 'सतत शिक्षा व्यक्तियों को उपयुक्त कौशलों, योग्यताओं और अभिवृत्तियों के विकास में सहायता करती है।'

13.4 सतत शिक्षा की प्रकृति:

सतत शिक्षा सदैव ली जाने वाली शिक्षा का चमत्कार है। यह किसी विशेष वर्ग में रूकती नहीं है। यह शिक्षा अधिगम समाप्त न होने की प्रकार है। इसमें शिक्षा के वे सभी अवसर शामिल हैं जो पूर्ण कालिक शिक्षा के समाप्त होने पर भी प्राप्त होते हैं।

यह अधिगम करने या सीखने की उस प्रक्रिया का पुनः आरम्भ है जिसमें व्यक्ति के आर्थिक व्यावसायिक और व्यक्तिगत मजबूरियों के कारण बाधा पड़ गई थी। यह व्यक्ति को एक अन्तराल के बाद भी आगे अध्ययन करने या सीखने और ज्ञान एवं कौशल को प्राप्त करने के योग्य बनाती है। परन्तु इन परिभाषाओं में सतत शिक्षा के मुल दर्शन ज्ञान एवं कौशल की निरन्तरता एवं नवीनता को समाहित नहीं किया गया है।

हमारी दृष्टि से सतत शिक्षा को निम्नखित रूप में परिभाषित करना चाहिए-

सतत शिक्षा वह शैक्षिक कार्यक्रम है जिसके द्वारा व्यक्तियों को उनके अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञान एवं कौशल की निरन्तर जानकारी दी जाती है उनकी कार्य क्षमता बढ़ाई जाती है और उनकी जीवन स्तर ऊँचा उठाया जाता है।

13.5 सतत शिक्षा की कार्य विधि :

सतत शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक अभिकरणों द्वारा दी जाती है और उनकी कार्यविधियाँ अलग अलग होती हैं। यहां उन सबका वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है।

औपचारिक शिक्षण संस्थाओं की कार्य विधि: इसके अन्तर्गत सतत शिक्षा की व्यवस्था अंशकालीन पाठ्यक्रम, अभिनव पाठ्यक्रम, कार्यशाला, सम्मेलन, संगोष्ठी, द्वारा की जाती है। कुछ संस्थाएं शोध एवं नवाचार सम्बन्धी पत्रिकाओं का प्रकाशन भी करती हैं।

निरौपचारिक शिक्षण संस्थाओं की कार्य विधि: निरौपचारिक शिक्षा में सतत शिक्षा की व्यवस्था मुख्य रूप से प्रौढ़ शिक्षा, पत्राचार शिक्षा और खुली शिक्षा द्वारा की जाती है।

प्रौढ़ शिक्षा में यह कार्य पुस्तकालयों, चल पुस्तकालयों, भजनों और नाटकों आदि के द्वारा किया जाता है।

भाषण और नाटक प्रदर्शन प्रौढ़ों के बीच पहुँच कर भी किए जाते हैं और रेडियो एवं टेलीविजन द्वारा भी किए जाते हैं। रेडियो टेलीविजन पर प्रसारित कार्यक्रम अधिक प्रभावशाली होते हैं।

पत्राचार शिक्षा: पत्राचार शिक्षा में सतत शिक्षा की व्यवस्था मुद्रित सामग्री एवं सम्पर्क कार्यक्रमों द्वारा सम्पन्न की जाती है। खुली शिक्षा में बहुमाध्यम उपागम, मुद्रित सामग्री, सम्पर्क कार्यक्रम, रेडियो टेपरिकार्ड, टेलीविजन और कम्प्यूटरों द्वारा की जाती है। वर्तमान में रेडियो और टेलिविजन पर दूर संवाद और कम्प्यूटर पर इन्टरनेट की सुविधा भी उपलब्ध है। यह बात दूसरी है कि इनका लाभ बहुत कम व्यक्ति उठा पाते हैं। कुछ संस्थाएँ शोध एवं नवाचार सम्बन्धित पत्रिकाओं का प्रकाशन भी करती हैं।

अनौपचारिक शिक्षण संस्थाओं की कार्यविधि : मनुष्य अनौपचारिक रूप से तो सदैव ही सीखता रहता है। इस शिक्षा की कोई पूर्व निश्चित कार्य विधि नहीं होती यह तो स्वाभाविक रूप से चलती रहती है।

13.6 भारत में सतत शिक्षा का विकास:

भारत में वैदिक काल से ही शिक्षा को जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया माना जाता रहा है। वैदिक कालीन गुरुकालीन शिक्षा समाप्त होने पर समावर्तन सामारोह में शिष्यों को उपदेश देते थे कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद अर्थात् आलस्य न करना।

पाश्चात्य जगत में प्लेटो सबसे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने मनुष्य के जन्म से मरण तक की पूरी शिक्षा योजना (पाठ्यक्रम) प्रस्तुत की थी। परन्तु प्राचीन काल की जीवन पर्यन्त शिक्षा और आधुनिक जीवन पर्यन्त शिक्षा के दर्शन में बहुत अन्तर है। प्राचीन कालीन जीवन पर्यन्त शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल ज्ञान में निरन्तर विकास करना था। परन्तु आधुनिक जीवन पर्यन्त शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तियों को अपने अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित निरन्तर अद्यतन ज्ञान एवं कौशल प्रदान कर उनकी कार्यक्षमता बढ़ाना है। उनके आर्थिक लाभ में वृद्धि करना और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाना है।

आधुनिक युग में किसी भी देश में सतत शिक्षा की शुरुआत क्षेत्र विशेष की पत्रिकाओं के प्रकाशन से हुई, हमारे देश भारत में भी। परन्तु इस शिक्षा की नियोजित रूप से शुरुआत 20 वीं सदी में हुई। हमारे देश में इसका शुभारम्भ शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में हुआ।

मुदालियर कमीशन (1952 – 53): ने शिक्षकों के पुर्न प्रशिक्षण का सुझाव दिया और इसके लिए शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम शुरू करने का सुझाव दिया।

बस तभी से पूर्व प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए अभिनव पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जा रही है। और साथ में सम्मेलन, विचार गोष्ठीयाँ, और कार्यशालाओं का आयोजन किया जा रहा है।

इसके बाद कोठारी कमीशन (1964-66) ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा विद्यालयों में ही समाप्त न समझी जाए, काम में लगे व्यक्तियों को उनके काम धंधों से सम्बन्धित अद्यतन जानकारी निरन्तर दी जाए।

2 अक्टूबर 1978 को हमारे देश में जो राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया गया उससे प्रौढ़ शिक्षा के साथ सतत शिक्षा को जोड़ दिया गया।

इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा तथा सतत शिक्षा केन्द्र स्थापित करने की घोषणा की गई और साथ ही उच्च शिक्षा संस्थाओं द्वारा सतत शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग की बात की गई।

क्राफ्ले व दुबे ने सतत शिक्षा की विशेषताओं को निम्नलिखित आयामों के रूप में प्रस्तुत किया है-

1. सतत शिक्षा समग्र शिक्षा है। इसमें सम्पूर्णता पर बल दिया गया है।
2. यह समन्वित है।
3. यह लचीली शिक्षा है।
4. यह खुलेपन पर बल देती है।
5. यह जनतन्त्रीय शिक्षा है।
6. यह सबकी परिपूर्ति करने वाली शिक्षा है।

13.7 सतत शिक्षा के गुण व दोष:

वर्तमान समय में सतत शिक्षा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के विकास को गति प्रदान कर रही है। परन्तु साथ इसकी अपनी कुछ सीमाएं हैं। यहां भारत के सन्दर्भ में सतत शिक्षा के गुण दोष प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

सतत शिक्षा के गुण:

1. सतत शिक्षा बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों और युवकों को अपनी शिक्षा पूरी करने के अवसर प्रदान करती है।
2. सतत शिक्षा मनुष्यों की समस्त कार्य कुशलता में निरन्तर वृद्धि करती रहती है और उन्हें निरन्तर आगे बढ़ने में सहायता करती है।

3. सतत शिक्षा द्वारा व्यक्तियों में सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना जागृत की जाती है। उन्हें सामाजिक परिवर्तन स्वीकार करने के लिए तैयार किया जाता है।
4. सतत शिक्षा नव साक्षर प्रौढ़ों की कार्यपरक साक्षरता को निरन्तरता प्रदान करती है।
5. सतत शिक्षा द्वारा मनुष्यों को अपने विशिष्ट व्यवसायों, वकालत, डाक्टरी एवं शिक्षण कार्य आदि के सम्बन्ध में अद्यतन जानकारी दी जाती है।

सतत शिक्षा की सीमाएँ (दोष):

1. सतत शिक्षा का दर्शन बड़ा लुभावना है परन्तु इसकी व्यवस्था करना बहुत कठिन है। हमारे देश में अनिवार्य एवं निशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था तो सरकार द्वारा हो नहीं पा रहा है और सतत शिक्षा की बात कौन करे ?
2. सतत शिक्षा की व्यवस्था सभी अभ्यर्थियों के अनुकूल करना बहुत कठिन है।
3. सतत शिक्षा सम्बन्धी जो कार्यक्रम रेडियो एवं टेलीफोन पर प्रसारित किए जाते हैं उनके समय और सीखने वालों के समय में तालमें ल बैठाना भी कठिन होता है।
4. सतत शिक्षा मनुष्यों में समझ एवं कार्य कुशलता का निरन्तर विकास करती है। इसका कुछ व्यक्ति दुरुपयोग भी करते हैं।

अभ्यास प्रश्न :

1. हमारे देश में सतत शिक्षा की शुरुआत किस क्षेत्र से हुई है?
 1. विज्ञान शिक्षा
 2. व्यवसायिक शिक्षा
 3. तकनीकी शिक्षा
 4. शिक्षक शिक्षा
2. 'लर्निंग टू बी' क्या है?
 1. प्रस्तक
 2. प्रतिवेदन
 3. पत्रिका
 4. नीति
3. प्रौढ़ शिक्षा के साथ सतत शिक्षा को कब जोड़ा गया ?
 1. 1949
 2. 1968
 3. 1978
 4. 1986

13.8 सतत शिक्षा के उद्देश्य:

सतत शिक्षा का मूल उद्देश्य है व्यक्तियों को अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञान एवं कौशल से परिचित कराना। उनकी कार्यक्षमता बढ़ाना और उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना। शेष उद्देश्य भिन्न - भिन्न देशों में भिन्न भिन्न हैं वर्तमान में हमारे देश में सतत शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:-

1. किसी कारण अपना कोई शैक्षिक पाठ्यक्रम पूरा न करने वालों को अपना यथा शैक्षिक पाठ्यक्रम पूरा करने में सहायता करना।
2. प्रौढ़ों के कार्यपरक साक्षरता की निरन्तरता बनाए रखना।
3. समाज के सभी वर्गों के व्यक्तियों को उनके अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञान एवं कौशल की निरन्तर जानकारी देना, उनकी कार्यक्षमता बढ़ाना, उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाना।
4. व्यक्तियों को नई चुनौतियों एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों से परिचित कराना और उन्हें उनका मुकाबला करने के लिए तैयार करना।
5. सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओं की कार्यक्षमता बढ़ाना और राष्ट्र का निरन्तर विकास करना।

किसी भी देश में सतत शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तियों को अपने अपने कार्य क्षेत्र का निरन्तर अद्यतन ज्ञान एवं कौशल प्रदान कर उनकी कार्यक्षमता को विकसित करना होता है।

हमारे देश भारत में सतत शिक्षा का क्षेत्र कुछ विस्तृत है। वर्तमान में इसके क्षेत्र में अग्रलिखित कार्य आते हैं।

1. बच्चों को अपनी शिक्षा जारी रखने में सहायता प्रदान करना।
2. नव साक्षर प्रौढ़ों के कार्यपरक साक्षरता को निरन्तर प्रदान करना।
3. विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों को उनके कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञान एवं कौशल प्रदान करना।
4. नागरिकों को राष्ट्रीय चुनौतियों एवं लक्ष्यों के प्रति जागरूक एवं क्रियाशील करना।

सामान्त तौर पर सतत शिक्षा पद्धति योजना को दो वर्गों के लिए बनाई गई है-

1. उन लोगों के लिए जो अन्य व्यक्तियों के साथ अंशकालिक शिक्षा में भाग लेते हैं। इस वर्ग के व्यक्ति विद्यालयों और महाविद्यालयों में अंशकालिक शिक्षा प्राप्त करके अपनी योग्यताओं में वृद्धि करते हैं।

2. उन व्यक्तियों के लिए जो केवल घर में ही अध्ययन कर सकते हैं। लेकिन अध्ययन के लिए आधिकारिक मान्यता प्राप्त करने के लिए उन्हें कुछ सहायता की आवश्यकता होती है।

सतत शिक्षा उन व्यक्तियों के लिए है जो विद्यालय छोड़ने से अधूरी रह गई शिक्षा को पूरी करना चाहते हैं।

संस्था में काम कर रहे व्यक्तियों को भी अपनी योग्यताओं में सुधार लाने के अवसरों की आवश्यकता होती है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो केवल आनन्द प्राप्त करने के लिए साहित्य, भाषा या किसी विशिष्ट विषय का अध्ययन करना चाहते हैं।

व्यक्तियों की विशेष उद्देश्यों को पूरा करके वयस्क शिक्षा प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति को शिक्षा तक पहुँच प्रदान करती है।

इस प्रकार मुख्य रूप से तीन श्रेणियों के व्यक्तियों से सम्बन्धित सतत शिक्षा के निम्न लिखित उद्देश्य होते हैं:-

1. जिन्होंने बिना पूरा किए शिक्षा को बीच में ही छोड़ दिया है।
2. नियुक्त व्यावसायिक।
3. सभी वयस्क व्यक्ति।

13.9 भारत में सतत शिक्षा का महत्व :

वर्तमान युग की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों में शिक्षा की निरन्तर जारी प्रक्रिया के रूप में जीवन को पूर्ण तौर पर संकल्पना की जानी चाहिए। अब व्यापक रूप से यह बात स्वीकार की जा रही है कि शिक्षा की आधुनिक विधि विस्तृत शिक्षा प्रदान नहीं करती है।

अतः इसे पूर्णता देने के लिए उन लोगों के लिए पूर्ण कालिक, अंशकालिक या नौकरी में रहते हुए शिक्षात्मक कार्यक्रमों की योजना बनाई गई है जिन्होंने विद्यालय छोड़ दिया है और वयस्कता की आयु तक पहुँच गए हैं उनके लिए सतत शिक्षा की विशेष रूप से महत्वपूर्ण है:

1. न्यूनतम साक्षरता (शिक्षा) प्रदान करने के लिए।
2. व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए।

3. ज्ञान की अभूतपूर्व वृद्धि की चुनौती का सामना करने के लिए

4. शिक्षा को स्व शिक्षा बनाने के लिए

भारत में सतत शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता: 20 वीं शताब्दी में ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में बहुत तीव्र गति से विकास हुआ है। 21 वीं सदी में यह गति और तेज हो गयी है और स्थिति यह है कि कल सीखा हुआ ज्ञान एवं कौशल आज कम अर्थ वाला होता जा रहा है। अतः वर्तमान में किसी भी देश में सतत शिक्षा का बड़ा महत्व है। हमारे देश में भी इसकी बड़ी आवश्यकता है।

1. शिक्षा पूर्ण करने के लिए: हमारे देश में लगभग 40 प्रतिशत शिक्षार्थी किसी न किसी कारण से अपनी शिक्षा पूर्ण किये बिना बीच में छोड़कर चले जाते हैं। सतत शिक्षा द्वारा ऐसे शिक्षार्थियों को अपनी शिक्षा पूर्ण करने की सुविधा प्रदान की जाती है। कुछ शिक्षार्थी इसका लाभ भी उठाते हैं।

2. प्रौढ़ों की कार्यपरक साक्षरता बनाये रखने के लिए: प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम अल्पकालीन होता है। प्रौढ़ अल्प समय में जो कुछ सीखते हैं वह अल्प समय में भूल भी जाते हैं। उनकी कार्यपरक साक्षरता बनाये रखने के लिए उत्तर साक्षरता कार्यक्रम आवश्यक होते हैं। यह अवसर सतत शिक्षा प्रदान करती है। अतः हमारे देश में इसका बड़ा महत्व है व इसकी बड़ी आवश्यकता है।

3. कार्यक्षमता बढ़ाना एवं जानकारी ऊँची उठाने के लिए: सतत शिक्षा द्वारा काम धन्धों में लगे व्यक्तियों को उनके कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित अद्यतन ज्ञान कराया जाता है और उन्हें अद्यतन तकनीकी की जानकारी दी जाती है। इनसे उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है, उत्पादन बढ़ता है एवं तदनुकूल आर्थिक लाभ में वृद्धि होती है और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

4. नई चुनौतियों का सामना करने और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति करना: सतत शिक्षा द्वारा नागरिकों को नई चुनौतियों एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों की निरन्तर जानकारी दी जाती है। इस शिक्षा द्वारा उन्हें नई चुनौतियों का सामना करने और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए तैयार किया जाता है।

5. सामाजिक उन्नयन और राष्ट्रीय विकास के लिए: सतत शिक्षा द्वारा नागरिकों को सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक गतिविधियों की निरन्तर जानकारी दी जाती है। राष्ट्रीय विकास योजनाओं की जानकारी दी जाती है और उन्हें प्रगति पथ पर अग्रसर किया जाता है। इससे सामाजिक उन्नयन और राष्ट्रीय विकास को गति मिलती है।

13.10 सतत शिक्षा प्रदान करने की विधियाँ :

1. **शिक्षा की समान्तर पद्धति:** एक समान्तर अंशकालिक शिक्षा पद्धति का निर्माण किया जाना चाहिए ताकि वयस्कों को वही डिप्लोमा और डिग्रियाँ लेने के अवसर प्रदान किए जा सकें जो विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्रों को मिलते हैं।

2. **तदर्थ कोर्स:** शैक्षिक संस्थानों को तदर्थ / अल्पकालिक कोर्सों की व्यवस्था करने में अग्रसर और अधिक विस्तृत ज्ञान और अनुभव प्राप्त करने में सहायता करेंगे। ऐसे कोर्स स्वसुधार कोर्स हो सकते हैं। उनके विषय - वस्तु में बच्चे की देखभाल, परिवार की देखभाल, पोषण, प्रबन्धक, बागबानी, मुर्गी पालन, खेती इत्यादि शामिल हो सकते हैं।

3. **विशिष्ट अंशकालिक कोर्स:** विशिष्ट अंशकालिक कोर्सों और मिश्रित कार्यक्रमों द्वारा कार्यकर्ताओं और कर्मचारियों की मानसिक सीमा में सुधार लाने के प्रयास किए जाने चाहिए, उनके ज्ञान और कौशलों में सुधार किया जाना चाहिए और उनके व्यवसायों के प्रति एवं व्यावसायिक जीवन में सुधार लाने के प्रति जिम्मेदारी की भावना पैदा की जानी चाहिए।

4. **विशिष्ट संस्थान:** विशिष्टीकृत संस्थान स्थापित किये जाने चाहिए जैसे कि केंद्रीय महिला कल्याण समिति और विद्यापीठ जिससे कि ग्रामिण समुदाय के लोगो का भरपूर फायदा मिल सके।

5. **जन संचार माध्यम:** सतत शिक्षा के उद्देश्यों के लिए जन संचार साधनों का भरपूर उपयोग होना चाहिए जैसे कि समाचार पत्र, फिल्में, रेडियों, टेलीवीजन, चार्ट, इशितहार और सस्ते प्रकाशन इत्यादि उपयोगी सिद्ध होते हैं।

6. **पुस्तकालय:** अच्छे पुस्तकालय को सतत शिक्षा पद्धति का मुख्य भाग माना जाता है। पुस्तकालय में नवसाक्षर के लिए पाठन सामग्री, व्यस्कों के लिए रोचक पठन - सामग्री और पुस्तके तथा उनकी व्यावहारिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित जानकारी होनी चाहिए।

7. **दूरस्थ शिक्षा केन्द्र:** दूरस्थ शिक्षा और पत्राचार शिक्षा द्वारा सतत शिक्षा प्रभावशाली रूप से प्रदान की जा सकती है। बहुत सी स्वैच्छिक एजेन्सियाँ दूरस्थ शिक्षा के नियमित संस्थानों को सहायता प्रदान करती हैं।

8. **मुक्त विश्वविद्यालय :** निम्नलिखित विश्वविद्यालय सतत शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी सेवा दे रहे हैं: -

1. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली (1985)
2. आन्ध्र प्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय (1982)

3. बिहार में नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय (1987)
4. राजस्थान में कोटा मुक्त विश्वविद्यालय (1987)
5. उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (2005) इत्यादि

भारत में सतत शिक्षा मुख्यतः चार प्रकार की शैक्षिक आवश्यकताओं और महत्व से सम्बन्धित है:

1. साक्षरता सहित न्यूनतम प्रारम्भिक शिक्षा
2. व्यावसायिक पुनश्चर्या शिक्षा
3. सांस्कृतिक मूल्योन्मुख शिक्षा
4. पर्यावरणीय शिक्षा

उपयुक्त शैक्षिक आवश्यकताओं एवं महत्व के लिए निश्चित लक्ष्य समूह इस प्रकार से है:-

1. निरक्षर समूह
2. नवसाक्षर समूह
3. बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों का समूह
4. कार्यरत व्यावसायिक समूह
5. सभी वयस्क नागरिक

इन समूह को शिक्षित करने के लिए विविध प्रकार की विधियों एवं माध्यमों का प्रयोग करना चाहिए जिनके नाम निम्नलिखित हैं-

1. सम्पर्क कार्यक्रम
2. वार्तालाप एवं प्रदर्शन
3. कार्यशाला
4. दृष्टान्त वार्ता
5. सामूहिक परिचर्चा
6. भाषण प्रलेख

7. नाटक

8. श्रव्य - दृश्य सामग्री का प्रयोग, चित्र, चार्ट, प्रदर्शन कार्ड, वास्तविक वस्तुएं, कठपुतली, टी.वी., आडियो टेप आदि।

9. टेलीफोन द्वारा सम्प्रेषण आदि।

13.11 भारत में सतत शिक्षा की समस्याएं एवं उनके समाधान:

भारत में सतत शिक्षा का विकास थोड़ी मन्द गति से हो रहा है। इसके अनेक कारण हैं। ये कारण ही इसकी समस्याएँ हैं।

1. सतत शिक्षा के निश्चित स्वरूप की समस्या:- सतत शिक्षा की व्यवस्था का मूल उद्देश्य व्यक्तियों को अपने क्षेत्र में अद्यतन ज्ञान एवं कौशल से निरन्तर अवगत कराने एवं उनके व्यवहार कौशल एवं उत्पादन क्षमता में निरन्तर विकास करना है। हमारे देश में इसके साथ कभी कुछ जोड़ दिया जाता है और कभी कुछ और जोड़ दिया जाता है। वर्तमान में प्रौढ़ शिक्षा के उत्तर साक्षरता कार्यक्रम को भी सतत शिक्षा से जोड़ रखा है और सामान्य जन शिक्षा कार्यक्रमों को भी इससे जोड़ रखा है। परिणाम यह है कि सतत शिक्षा का मूल दर्शन पीछे हो गया है। इसका पहला मुख्य कारण है शिक्षा का विभाजित उत्तरदायित्व और दूसरा मुख्यकारण है शिक्षा की बागडोर का शिक्षाविदों के स्थान पर राजनेताओं के हाथ में होना। इसके समाधान के लिए आवश्यक है कि सतत शिक्षा का क्षेत्र सीमित किया जाए, सुनिश्चित किया जाए। हमारी दृष्टि से उत्तर प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रमों को प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत रखा जाए। और नई चुनौतियाँ, राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं राष्ट्रीय विकास योजनाओं आदि की जानकारी को जन शिक्षा कार्यक्रमों के अन्तर्गत रखा जाए। यह भी आवश्यक है कि इसकी व्यवस्था जिज्ञासु, लगनशील और परिश्रम व्यक्तियों के लिए ही की जाए तब हम सीमित साधनों में उपयोगी सतत शिक्षा की व्यवस्था कर सकेंगे।

2. सतत शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण के अभाव की समस्या: हमारे देश में अपने काम धन्धों में लगे व्यक्ति तो कुछ नया सीखने और करने में रूचि रखते हैं परन्तु वेतनभोगी विशेषकर सरकारी कर्मचारी न तो इसकी आवश्यकता समझते हैं और इसे प्राप्त करने में रूचि लेते हैं इसके मूल कारण हैं, नौकरी की सुरक्षा और कर्मचारी संघ। यदि किसी क्षेत्र में पदोन्नति के लिए वरीयता के साथ योग्यता एवं क्षमता को जोड़ दिया जाये तो निश्चित रूप से लोग सतत शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति होगी।

3. सतत शिक्षा की उचित व्यवस्था की समस्या: यह कहना बड़ा सरल है कि काम धन्धों में लगे व्यक्तियों को हर पाँच वर्ष बाद अद्यतन ज्ञान एवं कौशल से परिचित कराया जाए। उनके क्षेत्र से सम्बन्धित नई -नई तकनीकियों में प्रशिक्षित किया जाए, परन्तु इतने विविध क्षेत्रों में लगे इतने

अधिक व्यक्तियों की सतत शिक्षा की व्यवस्था करना अपने देश में करना बहुत कठिन है। इसका सबसे पहला कारण अर्थाभाव और दूसरा कारण ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा की कमी है। इस समस्या का समाधान हम प्रथम समस्या के सन्दर्भ में सुझा चुके हैं। सतत शिक्षा का क्षेत्र सीमित एवं सुनिश्चित किया जाए और इसकी व्यवस्था जन संचार के माध्यमों - पत्रिकाओं रेडियो और टेलीविजन की सहायता से की जाए। विशेष क्षेत्रों में कार्यशालाओं का आयोजन भी किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए।

4. उचित लिखित सामग्री के निर्माण की समस्या:- पत्र पत्रिकाओं के लिए अद्यतन ज्ञान सम्बन्धी सामग्री का निर्माण करना बड़ा कठिन कार्य है। यह कार्य वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो स्वयं अद्यतन ज्ञान से पूर्ण हो और ऐसे व्यक्तियों की हमारे देश में थोड़ी कमी है। जो जानते भी हैं उनमें से कुछ उसे सही रूप से लिख नहीं पाते। इसके लिए आवश्यक है कि यह कार्य उच्च शिक्षा संस्थाओं के शोध एवं प्रकाशन विभागों को सौंपा जाए और लेखकों को उचित परिश्रमिक दिया जाए। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विशेष अनुदान देना चाहिए।

5. उचित प्रसारण सामग्री के निर्माण की समस्या:- यँ यह कार्य इस समय खुले विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दोनों कर रहे हैं परन्तु कृषि दर्शन की भाँति विज्ञान दर्शन, तकनीकी दर्शन, स्वास्थ्य दर्शन और शिक्षक दर्शन आदि कार्यक्रमों का निर्माण करना एक नई चुनौती होगी यहाँ यह समझना आवश्यक है कि विज्ञान शिक्षा से विज्ञान दर्शन का क्षेत्र भिन्न होगा। विज्ञान दर्शन में विज्ञान की नहीं विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली खोजों की जानकारी दी जाएगी और उनके अनुप्रयोगों की जानकारी दी जाएगी यही बात तकनीकी शिक्षा और तकनीकी दर्शन पर लागू होगी।

इस समस्या को हल करने के लिए आवश्यक है कि इसके साफ्टवेयर का निर्माण तत्सम्बन्धी उच्च शिक्षा संस्थाओं और हार्डवेयर का निर्माण राष्ट्रीय शिक्षा चैनल निर्माण केन्द्र पर किया जाए।

अभिमत:- वर्तमान में ज्ञान विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में इतनी तीव्रगति से विकास हो रहा है कि उसकी अद्यतन जानकारी हेतु सतत शिक्षा की व्यवस्था बहुत आवश्यक है। सतत शिक्षा के अभाव में हम मनुष्यों के दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं कर सकते, उनके कौशल में विकास नहीं कर सकते और उनकी उत्पादन क्षमता नहीं बढ़ा सकते और सतत शिक्षा की जो कमियाँ बताई जाती हैं वे उसकी कमियाँ नहीं हैं। ये कमियाँ या तो देश विशेष की हैं या सतत शिक्षा की व्यवस्था करने वालों की हैं देश की आर्थिक स्थिति और नागरिकों की मानसिकता की दृष्टि से वर्तमान में सतत शिक्षा की व्यवस्था पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन के माध्यम से की जानी चाहिए। इसमें तीनों का अपना अपना महत्व है जिसे जिस माध्यम से सीखने में सुविधा हो, वह इस माध्यम से सीखे और जो न सीखना चाहे न सीखे। जिज्ञासु एवं कर्मशील व्यक्ति के लिए सतत शिक्षा वरदान है। कर्महीन व्यक्तियों की तो कोई भी सहायता नहीं कर सकता।

13.12 सारांश :

आजीवन शिक्षा का विचार इस विचार धारा पर आधारित है कि सुसम्बद्ध रीति से सिखाने - पढ़ाने का कार्य जीवन के कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक ही सीमित नहीं है।

यह आजीवन चलने वाला एक उद्यम या कार्य है। यह शिक्षा उसी दिन समाप्त नहीं हो जाती जब बालक स्कूल या कालेज से प्रमाण पत्र या डिग्री प्राप्त कर लेता है, यह सतत चलती रहती है।

फ्रेंच भाषा में इसको एजूकेशन परमानेन्ट द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

20 वीं शताब्दी में ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में बहुत तीव्र गति से विकास हुआ है। 21 वीं शताब्दी में यह गति और तेज हो गई है और स्थिति यह है कि कल सीखा हुआ एवं कौशल आज कम अर्थ का होता जा रहा है अतः वर्तमान में किसी भी देश में सतत शिक्षा का बड़ा महत्व है, उसकी बड़ी आवश्यकता है, हमारे देश भारत में भी।

13.13 शब्दावली

सतत शिक्षा: आजीवन चलने वाली शिक्षा

13.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: 1. शिक्षक शिक्षा 2. प्रतिवेदन 3. 1978

13.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा- डॉ० जे. एस. वालिया
2. भारतीय शिक्षा का इतिहास- लाल एवं शर्मा
3. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ - पी.डी. पाठक
4. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ- डॉ० गुरशरण त्यागी
5. भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास- श्रीमती स्वाति जैन
6. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ - डा० आर. ए. शर्मा

13.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. सतत शिक्षा से आप क्या समझते हैं ? आज के युग में इसका क्या महत्व है?

2. सतत शिक्षा के क्षेत्र में जन संचार के माध्यमों की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
3. भारत में सतत शिक्षा का क्या क्षेत्र है? भारत में सतत शिक्षा की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
4. सतत शिक्षा के गुण दोष पर प्रकाश डालिए?

इकाई 14: पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education: Its Meaning, Nature and Objectives)

इकाई की रूपरेखा

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ व स्वरूप
- 14.4 पर्यावरण शिक्षा की प्रकृति
- 14.5 पर्यावरण शिक्षा की विशेषताएं
- 14.6 पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता
- 14.7 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य
- 14.8 पर्यावरण शिक्षा का महत्व
- 14.9 पर्यावरण शिक्षा में शिक्षक की भूमिका
- 14.10 सारांश
- 14.11 शब्दावली
- 14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.13 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 14.14 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना:

हम जानते हैं कि आज सम्पूर्ण विश्व के सामने पर्यावरण प्रदूषण की गम्भीर समस्या है। आज प्रत्येक प्रकार का प्रदूषण अपनी चरम सीमा पर है। इस प्रदूषण पर व्यंग्य करते हुए कहा जा सकता है कि आज हम पेट्रोल खाते हैं। रासायनिक उर्वरकों से उत्पन्न अनाज के रूप में उल्लेखनीय है कि रासायनिक उर्वरकों में पेट्रोल पदार्थों का उपयोग होता है, सिन्थेटिक वस्त्रों के निर्माण में पेट्रोल काम आता है और यातायात वाहनों का धुआँ वायु में मिलने से हमारी श्वसन क्रिया में जाता है। आज रासायनिक उर्वरकों के विरुद्ध आवाज उठ रही है, यातायात के साधनों के प्रति आक्रोश है। इसी प्रकार दूसरे प्रदूषण क्षेत्रों के प्रति भी सजगता आयी है। किन्तु यह सजगता बहुत ही कम लोगों में है। पर्यावरण की सुरक्षा, संरक्षता तथा सुरक्षा के प्रति लोगों की सजगता बढ़ानी होगी। क्योंकि पर्यावरण

की तीव्रता के साथ होता जा रहा विघटन सम्पूर्ण वनस्पति जाति तथा प्राणी जाति के अस्तित्व के लिए अत्यन्त ही हानिप्रद है। कानून इस दिशा में विशेष कुछ नहीं कर सकते हैं।

पर्यावरण के प्रति सजगता, जागरूकता एवं उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए शिक्षा सर्वोत्तम साधन है। पर्यावरण के प्रति जागरूकता, सजगता का विकास करने में शिक्षा और विशेषकर पर्यावरण शिक्षा (Environment Education) का विशेष महत्व है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप यह बता सकेंगे कि -

- पर्यावरण क्या है?
- पर्यावरण शिक्षा का क्या अर्थ है?
- पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप कैसा है?
- पर्यावरण शिक्षा के क्या पक्ष तथा घटक हैं?
- पर्यावरण शिक्षा की विशेषताएं क्या हैं?

14.3 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ व स्वरूप (Meaning and Nature of Environment Education):

पर्यावरण शब्द अधिक व्यापक है, अधिकांश विषयों में पर्यावरण का अध्यापन तथा अध्ययन किया जाता है। शब्दकोष में पर्यावरण में चारों ओर की उन सभी परिस्थितियों को सम्मिलित करते हैं जो कि पशुओं तथा जीवों, पौधों तथा व्यक्तियों के विकास, रहन-सहन तथा कार्य करने की परिस्थितियों को प्रभावित करती हैं।

अतः मनुष्य के समझने के लिए उसके चारों ओर के भौतिक वातावरण, जीवधारियों तथा पौधों को समझना होगा। पर्यावरण में सभी प्रकार के भौतिक, जैविक प्राणियों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार सभी शिक्षाविदों का सम्बन्ध 'बालक तथा उसके पर्यावरण से होता है। पर्यावरण का सन्दर्भ वह सम्पूर्ण परिस्थितियां हैं जिनमें व्यक्ति घिरा हुआ है और उसकी जीवनचर्चा तथा कार्यप्रणाली को प्रभावित करते हैं।

वोरिंग के अनुसार:- "एक व्यक्ति के पर्यावरण में वह सब कुछ सम्मिलित किया जाता है जो उसके जन्म से मृत्यु तक प्रभावित करता है।"

“A person’s environment consists of the sum total of stimulation which he receives from his conception until his death.” (Boring)

पर्यावरण में हम उन सभी बाह्य शक्तियों, प्रभावों तथा परिस्थितियों को सम्मिलित करते हैं जो शुक्र-कण को छोड़कर प्रत्येक जीवधारी के जीवन, व्यवहार, अभिवृद्धि, विकास तथा परिपक्वता को प्रभावित करते हैं। जीवधारी के चारों ओर कौन-कौन सी ऐसी शक्तियां हैं जो उसके जीवन, व्यवहार, विकास आदि को प्रभावित करती हैं, वे किस प्रकार प्रभावित करती हैं, क्यों प्रभावित करती हैं, इन शक्तियों का हमारे लिए क्या महत्व है, इनकी सुरक्षा व संरक्षा कैसे की जाए आदि तथ्यों से सम्बन्धित शिक्षा ही पर्यावरण शिक्षा कहलाती है।

नेहरू फाउण्डेशन फॉर डवलपमेंट, अहमदाबाद के सेण्टर फॉर इनवायरमेंट एजुकेशन ने पर्यावरण शिक्षा को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है:-

“पर्यावरण शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विश्व में ऐसी जनसंख्या का विकास करना है जो सम्पूर्ण पर्यावरण, उसकी समस्याओं के प्रति सजग हो एवं उससे सम्बन्ध रखती हो तथा जो सामूहिक रूप से इस का ज्ञान रखे, अभिवृत्तियाँ रखे, अभिप्रेरणा रखे तथा इसके उन्नयन हेतु व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से कार्य कर इससे सम्बन्धित समस्याओं के समाधान तथा नई समस्याओं को उत्पन्न होने से रोकने के प्रयास करें।”

“Environment Education is a process aimed at developing a world population that is aware of and concerned about that total environment and its associated problems and which has the knowledge, attitude, motivations, commitment and skills to work individually and collectively towards the solution of current problem as well as the preservation of new ones.”

Centre for environment education, Nehru Foundation for the Development.

यूनेस्को ने सन् 1970 में पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा देते हुए लिखा- “पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य तथा उसके पर्यावरण के विभिन्न तत्वों (सांस्कृतिक, भौतिक व जैविक) के पारस्परिक सम्बन्धों एवं अन्तःनिधारताओं को समझने का प्रयास करता है। इसमें पर्यावरण की गुणवत्ता से सम्बन्धित समस्याओं एवं मुद्दों पर निर्णय लेने और अपने कार्यों एवं व्यवहारों को निर्मित करने का अभ्यास भी सन्निहित है।”

“Environment education is the process of recognizing values and clarifying concepts in order to develop skills and attitude necessary to understand and appreciate the inter-relatedness among man, his culture and his bio-physical surroundings. It also entails practice in decision making and self-formulation of

a code of behaviour about problems and issues concerning environmental quality.”

अतः हम कह सकते हैं कि पर्यावरण शिक्षा के बारे में जानकारी देने, समझने और मानव द्वारा किए जा रहे उसके विविध कार्यकलापों के बारे में गुण व अवगुण के आधार पर जानकारी देने की व्यापक प्रक्रिया है, तो यह सर्वथा उचित व्याख्या है। इस प्रकार पर्यावरण शिक्षा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में पर्यावरण के संरक्षण, रखरखाव तथा सुधार के बारे में सोचने और समझने का अवसर प्रदान करती है। इसलिए संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विश्व समुदाय को पर्यावरण, उसके महत्व तथा समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान, अवोध, कौशल, रुचियों तथा अभिवृत्तियों का विकास करने की प्रक्रिया ही पर्यावरण शिक्षा है।

14.4 पर्यावरण शिक्षा की प्रकृति (Nature of Environment Education):

पर्यावरण शिक्षा की प्रकृति सामान्य शिक्षा की प्रकृति से काफी भिन्न है। क्योंकि पर्यावरण शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक तथा विस्तृत है। क्षेत्र की व्यापकता तथा विस्तार के कारण पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी विषयों की प्रकृति में हम निम्नलिखित विशेषताएं पाते हैं।

- 1.1 पर्यावरण शिक्षा किसी आयु वर्ग विशेष के लिए नहीं है। यह शिक्षा तो बालक-काल से लेकर वृद्धावस्था तक के सभी व्यक्तियों के लिए है।
- 1.2 पर्यावरण शिक्षा शिक्षित, अशिक्षित, कामकाजी, गैर-कामकाजी, स्त्रियों तथा पुष्पों सभी के लिए है।
- 1.3 पर्यावरण शिक्षा का विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों में सहज शिक्षण सम्भव है।
- 1.4 एक ही व्यक्ति या शिक्षक सभी स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा नहीं दे सकता। प्रत्येक स्तर पर विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित तथा योग्यताधारी शिक्षको की आवश्यकता होती है।
- 1.5 पर्यावरण शिक्षा को हम एक पृथक विषय के रूप में तथा अन्य विषयों से सहसम्बन्धित करके पढ़ा सकते हैं।
- 1.6 पर्यावरण शिक्षा का मानवजीवन से सीधा सम्बन्ध है इसलिए इसको जीवन से सम्बन्धित करके पढ़ाना अधिक उपयोगी रहता है।

1.7 पर्यावरण शिक्षा का मूल्यांकन करना उतना सरल नहीं है जितना कि अन्य विषयों की शिक्षा का, क्योंकि पर्यावरण शिक्षा के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों ही पक्ष होते हैं। इनका ज्ञानात्मक, मानसिक तथा भावात्मक पक्षों से सीधा सम्बन्ध होता है।

1.8 वास्तव में देखा जाए तो पर्यावरण शिक्षा कोई एक नया विषय नहीं है। अपितु पर्यावरण जीवन के प्रति एक नई सोच है।

1.9 पर्यावरण शिक्षा अनेक विषय-क्षेत्रों का संगम है।

1.10 पर्यावरण शिक्षा को हम सुनिश्चित सीमाओं में नहीं बांध सकते हैं, क्योंकि इसका मानव जीवन के क्षेत्र से सम्बन्ध है।

14.5 पर्यावरण शिक्षा की विशेषताएं (Characteristics of Environment Education):

पर्यावरण शिक्षा की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. पर्यावरण शिक्षा एक अन्तः अनुशासनात्मक विषय है।
2. इसमें सामाजिक विज्ञानों एवं जीव विज्ञानों तथा वनस्पति विज्ञानों आदि की विषयवस्तु ली जाती है।
3. पर्यावरण शिक्षा एक प्रक्रिया है, जो मनुष्य तथा उसके साँस्कृतिक, भौतिक एवं जैविक वातावरण में परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान कराती है।
4. पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण में पाए जाने वाले असन्तुलन का ज्ञान कराती है।
5. पर्यावरण शिक्षा बालक को सिखाती है कि स्वस्थ जीवन का विकास हो तथा इसके लिए वह बालकों में सृजनात्मक कौशल तथा रचनात्मक का विकास कराती है। पर्यावरण शिक्षा विभिन्न क्रियाओं एवं जीवन-मूल्यों का अभिविन्यास करने की कला तथा विज्ञान है।
6. पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण की जानकारी तथा उसके प्रति जागरूकता विकसित करने की एक प्रक्रिया है।
7. पर्यावरण शिक्षा भविष्य की ओर उन्मुख रहती है।

-
8. पर्यावरण शिक्षा का सम्बन्ध जीवन के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्षों से है।
9. पर्यावरण शिक्षा औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही साधनों से प्रदान की जा सकती है।
10. पर्यावरण शिक्षा तथा पर्यावरण जागरूकता में काफी अन्तर है।
11. पर्यावरण शिक्षा के ज्ञानात्मक, मनोगामक तथा भावात्मक पक्ष होते हैं।
-

क्रियाकलाप-1 (Activity-1)

- | | | |
|-----|--|------------|
| (क) | एक शिक्षा के मुख्य घटक बालक तथा पर्यावरण हैं। | सत्य/असत्य |
| (ख) | पर्यावरण सचेतना में भावात्मक पक्ष को महत्व देते हैं। | सत्य/असत्य |
| (ग) | पर्यावरण जागरूकता में ज्ञानात्मक पक्ष का विकास करते हैं। | सत्य/असत्य |
-

क्रियाकलाप-2 (Activity-2)

- (क) पर्यावरण शिक्षा में भौतिक, सामाजिक तथा पक्षों को महत्व दिया जाता है।
- (ख) शिक्षा के मुख्य घटक बालक तथा होते हैं।
- (ग) पर्यावरण जागरूकता के घटक भौतिक तथा होते हैं।
-

क्रियाकलाप-3 (Activity-3) बहुविकल्पीय प्रश्न

- (क) पर्यावरण शिक्षा के मुख्य पक्ष हैं-
- अ) पर्यावरण शिक्षा ब) पर्यावरण सचेतना स) उपरोक्त सभी
- (ख) पर्यावरण सचेतना में महत्व दिया जाता है-
- अ) ज्ञानात्मक पक्ष ब) भावात्मक पक्ष
- स) क्रियात्मक पक्ष द) किसी को नहीं
-

क्रियाकलाप-4 (Activity-4) लघुउत्तरीय

- (क) पर्यावरण शिक्षा का अर्थ समझाइए।
- (ख) पर्यावरण जागरूकता से आप क्या समझते हैं।
- (ग) शिक्षा के मुख्य घटकों के नाम लिखो।

14.6 पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता एवं उद्देश्य (Need and objective of Environment Education):

‘पर्यावरण शिक्षा’ एक नया प्रत्यय है। परन्तु इसकी जड़ें अधिक प्राचीन हैं। ऋग्वेद सभी वेदों में प्राचीन है इसमें पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेद की ऋचाओं में कामना की गई है कि ‘‘पृथ्वी की धूल तथा पितृ-तुल्य आकाश का प्रकाश मंगलमय हो, सूर्य अपने पूर्ण तेज के साथ अपने अंश से जुड़ा रहे।’’ अस्तु प्रत्येक प्रणाली प्रभु को विराट सत्ता के समक्ष अपने को उन्मुक्त कर दे तो वह सत्ता उसमें समाहित हो जाएगी। सम्पूर्ण विश्व अखिल ब्रह्माण्ड प्रभुमय होगा। आनन्द और शान्ति का अभ्युदय होगा।

किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आनन्द और शान्ति का स्थान क्रमशः शोक और अशान्ति ने ले लिया है। जिसका मुख्य कारण है पृथ्वी माता को धूल और पिता समान आकाश के प्रकाश का अमंगलकारी हो जाना, प्रदूषित हो जाना, पृथ्वी माता को धूल और पिता आकाश के प्रकाश को बनाए रखने के लिए नितान्त आवश्यक है कि मानव का जागरूक होना। जागरूकता शिक्षा से ही उत्पन्न होती है आम लोगों की अपेक्षाकृत शिक्षित मानव अपने वातावरण के प्रति अत्याधिक सचेत होगा।

वातावरण के प्रति जागरूकता लाने के लिए आज आवश्यकता है पर्यावरण शिक्षा की। इसी उद्देश्य के लिए प्रति वर्ष 5 जून को पूरे विश्व में ‘विश्व पर्यावरण दिवस’ मनाया जाता है। विश्व के सभी देश आज किसी न किसी प्रकार के पर्यावरणीय संकट से ग्रस्त हैं। पर्यावरणीय संकट को शिक्षा के माध्यम से कुछ कम तो किया जा सकता है, परन्तु उसका पूर्ण रूप नहीं प्राप्त किया जा सकता।

जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभाव, औद्योगिक क्रान्ति, प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग, मानव के अदूरदर्शिता पूर्ण कार्य व्यवहार से जल, वायु, भूमि का दोहन ही पर्यावरण को आन्दोलित एवं असंतुलित करते हैं। इन्दिरा गांधी ने 1987 में प्रथम अन्तरराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन में कहा था कि अधिक जनसंख्या गरीबी को बुलावा देती है और गरीबी प्रदूषण को जन्म देती है। अतः हम यदि यह

कहें कि जनसंख्या विस्फोट में प्रकृति से मिले विरासत में बहुमूल्य पदार्थ वायु, वनस्पति और जल को कम करने के साथ-साथ प्रदूषित ही नहीं किया है बल्कि पूरी प्रकृति के चक्र को ही विविध प्रकार से डगमगा दिया है तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतएव जनसंख्या पर नियन्त्रण करने के लिए साक्षरता बढ़ानी होगी।

आम आदमी की पर्यावरण सन्तुलन बनाए रखने में क्या भूमिका है? इस बात को जानना जरूरी है। अतः पर्यावरण शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जो विश्व समुदाय को पर्यावरण की समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी देती है। जिससे वे समस्याओं से अवगत होकर उन का हल खोज सकें। पर्यावरण शिक्षा एक सामान्य शिक्षा नहीं बल्कि पर्यावरणीय समस्याओं में उन के निदान, हल और सम्भावित बचाव सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने की शिक्षा है।

यह आवश्यकता निम्नलिखित बिन्दुओं से और भी स्पष्ट होती है।

1. पर्यावरण शिक्षा द्वारा जनसंख्या में पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षा के प्रति सजगता विकसित होगी।
2. आज पर्यावरण से सम्बन्धित भावनाओं तथा जीवन-मूल्यों के सकारात्मक रूप में परिवर्तित करना आवश्यक है। यह कार्य सम्पन्न करने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा की आवश्यकता है।
3. प्रकृति, पर्यावरण तथा उनके विभिन्न घटकों के प्रति वैज्ञानिक एवं सही दृष्टिकोण विकसित करने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा की आवश्यकता है।
4. आज हमें वृक्ष-पूजन, जल-पूजन एवं यज्ञ आदि का वास्तविक अर्थ समझना है। इसकी सही विधियां सीखनी हैं। धरती को हम माता का स्वरूप क्यों कहते हैं? इन सब के अर्थ को समझने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा आवश्यक है।
5. पर्यावरण प्रदूषण के कारणों, परिणामों तथा उसकी रोकथाम व नियन्त्रण के उपायों का ज्ञान करने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा आवश्यक है।
6. पर्यावरण के प्रदूषित होने से क्या हानियां हैं, इनसे कैसे बचा जाए? यह ज्ञान हमें पर्यावरणीय शिक्षा ही दे सकती है।
7. जीवन को सुखमय व्यवहारपरक तथा प्रकृति के साथ सामजस्य स्थापित करते हुए व्यतीत करने के लिए पर्यावरणीय शिक्षा आवश्यक है।

14.7 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Environment Education):

पर्यावरण शिक्षा के क्या उद्देश्य हों, इस सम्बन्ध में समय-समय-पर अनेक विद्वानों तथा संस्थाओं एवं आयोगों ने अपनी-अपनी सिफारिशों की हैं। देश में सरकारी, तथा गैरसरकारी अनेक संस्थाएं हैं जो पर्यावरण सचेतना को जागृत कर रही हैं। सन (1982) में पर्यावरण विभाग की स्थापना हुई। अलग से पर्यावरण मन्त्रालय खोला गया। अहमदाबाद में 'पर्यावरण शिक्षा केन्द्र' स्थापित किया गया है। लगभग दो सौ से अधिक गैर सरकारी संस्थाएं पर्यावरण शिक्षा दे रही हैं।

यूनेस्को को अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन (1977) में पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य का प्रतिपादन किया गया जिसमें सभी स्तरों तथा औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के उद्देश्यों के लिए संस्तुति की थी कि छात्रों को भौतिक तथा जैविक पर्यावरण के सम्बन्ध में जानकारी दी जानी चाहिए तथा विद्यालयों के अध्ययन विषयों के साथ पर्यावरण शिक्षा को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मानव पर्यावरण जून 1972 में जब पर्यावरण, संरक्षण, रख-रखाव तथा सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तरीय प्रयासों की बात कही गई तब इस बात पर बल दिया गया कि इस संस्था के स्थाई हल के लिए नागरिकों को शिक्षित करना होगा और उन्हें जागरूक कर उन्हें ऐसा मानव बनाना होगा कि पर्यावरण की वर्तमान स्थिति पर काबू रखते हुए उसे आगे विकृत होने से बचाया जा सके। यह भी प्रयास किया जाये कि स्थिति में सुधार हो। तीन वर्ष बाद बेलग्रेड में आयोजित हुई (अक्तूबर, 1975) अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में जिसमें 60 राष्ट्र के 96 संभागीय थे। 10 दिन तक विभिन्न मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की। वहीं विस्तार से पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य, विषय-वस्तु, शिक्षक-प्रशिक्षण, औपचारिक एवं अनौपचारिक तरीके, प्रत्येक आयु व स्तर के लोगों को सम्मिलित करने आदि पर निर्णय लिये जाये। अनेक पूर्व में तैयार पत्रों को आधार बनाया गया जो यूनेस्को द्वारा प्रकाशित (Trends in Environmental Education, 1977) में सम्मिलित है। यहां यह भी निर्णय लिया गया कि ऐसे वस्तुनिष्ठ उद्देश्य स्वीकार किए जाने चाहिए जो अत्यन्त व्यवहारिक हों और सम्पूर्ण पर्यावरणीय समस्याओं को आत्मसात कर सकते हों। अतः पर्यावरण शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. पर्यावरण के प्रति जागरूकता का विकास करना।
2. पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के प्रति संवेदनशीलताओं का विकास करना।

3. पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न घटकों का ज्ञान प्रदान करना।
4. पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का ज्ञान तथा अनुभव प्रदान करना और उन समस्याओं का समाधान तथा उपाय बताना।
5. पर्यावरण के विभिन्न घटकों में परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह स्पष्ट करना तथा उनको परस्पर निर्धारित करने का ज्ञान कराना।
6. पर्यावरण शिक्षा के द्वारा बालकों तथा व्यक्तियों में ऐसे कौशलों और रुचियों का विकास करना, जिससे वे पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान कर सकें।
7. पर्यावरण से सम्बन्धित समुचित मूल्यों का विकास करना।
8. छात्रों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक भावनाएँ और अभिवृत्तियों का विकास करना।
9. व्यक्तियों तथा छात्रों को इस योग्य बनाना कि वह पर्यावरण सुधार की दिशा में आवश्यक सृजनात्मक एवं रचनात्मक कार्य कर सकें।
10. उनमें पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों तथा योजनाओं का मूल्यांकन करने की योग्यता प्रदान करना।
11. पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों तथा योजनाओं का मूल्यांकन करने की योग्यता प्रदान करना।

इन उद्देश्यों के अलावा पर्यावरण शिक्षा को कुछ अन्य उद्देश्य भी लिखे जा सकते हैं, -जैसे कि:-

1. पर्यावरण से सम्बन्धित वास्तविक विभिन्न सूत्रों का सही ढंग से सदुपयोग करने का कौशल प्रदान कराना।
2. पर्यावरण के घटकों एवं समस्याओं की वास्तविक जीवन में सार्थकता का ज्ञान कराना।
3. पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न सूत्रों का सही ढंग से सदुपयोग करने का कौशल प्रदान कराना।
4. पर्यावरण से सम्बन्धित इन समस्याओं का बोध कराना और उनसे समस्याओं का समाधान करने के उपायों का ज्ञान कराना।
5. शिक्षा की योजनाओं तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन की योग्यता का विकास करना। पारिस्थितिक विज्ञान, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सौन्दर्यनुभूति के कारकों की प्रभावशीलता का आकलन करना।

6. पर्यावरण के सम्बन्ध में भावना, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास करना तथा सक्रीय भाग लेने हेतु अभिप्रेरित करना जिसमें पर्यावरण का संरक्षण तथा सुधार हो सके।

उपरोक्त उद्देश्य सभी स्तरों से सम्बन्धित है तथा औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा से भी इनका सम्बन्ध है, परन्तु इनमें पारस्परिक गह सम्बन्ध है। शैक्षिक स्तरों की दृष्टि से उद्देश्यों का वर्गीकरण यहां पर दिया गया है।

14.8 पर्यावरण शिक्षा का महत्व (Importance of Environment Education):

पर्यावरण शिक्षा के बढ़ते हुए महत्व को हम नीचे लिखे बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं।

1. जनसाधारण में बढ़ती हुई निरक्षरता तथा अज्ञानता के कारण पर्यावरण सुरक्षा व संरक्षण के उपायों का पूरा-पूरा प्रयोग नहीं हो पा रहा है। अज्ञान व अशिक्षा से ग्रसित व्यक्ति पर्यावरण की सुरक्षा नहीं कर सकता है।
2. पर्यावरण सुरक्षा के लिए जनसंख्या नियन्त्रण भी आवश्यक है। जनसंख्या विस्फोट को कैसे रोका जाये, यह पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में आता है।
3. वर्तमान में प्रत्येक देश में तीव्र गति से औद्योगिकरण हो रहा है। इससे पर्यावरण प्रदूषण की सम्भावनाएँ भी बढ़ी हैं। इनसे उत्पन्न प्रदूषण को रोकने व उसे नियन्त्रित करने के लिए पर्यावरण शिक्षा जरूरी है।
4. बढ़ते शहरीकरण तथा नगरों के आकार ने व्यक्तियों को प्रकृति से दूर कर दिया है। प्रकृति के जैविक एवं अजैविक तत्वों को समान प्रकृति के निकट जाने के लिए पर्यावरण शिक्षा आवश्यक है।
5. बढ़ते यातायात के साधनों से प्रदूषण का खतरा प्रयाप्त मात्रा में बढ़ गया है। वाहन प्रदूषण को रोकने के लिए पर्यावरण शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है।
6. पर्यावरण शिक्षा हमारी संस्कृति की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अपना सकती है। अहिंसा, जीव-दया, प्रकृति-पूजन आदि हमारी संस्कृति के मूलाधार हैं। पर्यावरण शिक्षा में इन तथ्यों की यथेष्ट मात्रा में शिक्षा दी जाती है।
7. पर्यावरण शिक्षा हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ाती है।
8. वनों का, वृक्षों का तथा पहाड़, नदी-नालों आदि का हमारे जीवन में क्या महत्व है? यह जानने के लिए पर्यावरण शिक्षा अनिवार्य है।

9. बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जनसाधारण के क्या कर्तव्य व दायित्व हैं, इसका हमें पर्यावरण शिक्षा ही ज्ञान करा सकती है।

10. पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ने से उत्पन्न खतरों तथा उनसे बचने के उपायों की जानकारी हमें पर्यावरण शिक्षा ही देती है।

11. पर्यावरण के प्रति चेतना जाग्रत करने, उसके प्रति साकारात्मक अभिवृत्तियों तथा भावनाओं का विकास करने में पर्यावरण शिक्षा की भूमिका है।

12. पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं को जानने, इनका विश्लेषण करने तथा उनका समाधान खोजने में हमारी सहायता करती है।

14.9 पर्यावरण शिक्षा में शिक्षक की भूमिका (Role of Teacher in Environmental Education):

पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार के अभियान को व्यापक तौर पर चलाने के लिए पूरे समाज की जिम्मेदारी है। किन्तु शिक्षक समाज का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व युक्त सदस्य है। इसलिए इस लक्ष्य की प्राप्ति में उसकी भूमिका विशेष रूप से मानी गई है। शिक्षक का सम्बन्ध विभिन्न आयु वर्ग के लोगों/छात्रों से होता है। एक पथ-प्रदर्शक की भांति वह समाज की विविध समस्याओं से उन्हें अवगत कराकर उनका नवीन एवं सफल समाधान ढूँढने हेतु छात्रों को प्रेरित कर सकता है। आज के समय में 'पर्यावरण प्रदूषण' एक ज्वलन्त समस्या है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में पूरे विश्व को उसके भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूपों में विकृति लाकर प्रभावित कर रही है। अतः समाज के बुद्धिजीवी वर्ग से शिक्षक इस समस्या विशेष के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में विशेष भूमिका निभा सकता है। क्योंकि वह समाज की समस्याओं का विद्यालय जैसी प्रयोगशाला में संशोधन करने वाला एक संवेदनशील एवं जिम्मेदार नागरिक होता है, जो अपने छात्रों में अपने वातावरण या पर्यावरण, भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिकता के प्रति चेतना विकसित करने के लिए विविध कार्यक्रमों का आयोजन कर सकता है।

1. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के आयोजन द्वारा पर्यावरण चेतना विकसित करने हेतु पर्याप्त भूमिका निभा सकता है। पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत छात्रों द्वारा निम्नांकित क्रियाएँ करवाई जा सकती हैं जिससे पर्यावरण में सुधार हो सकेगा। शिक्षक स्वयं अपनी उपस्थिति में उन्हें उत्प्रेरित कर भौतिक पर्यावरण की वर्तमान स्थिति को सुधारने में मदद कर सकता है। क्योंकि शिक्षक विद्यालय में विभिन्न विषयों का ज्ञान विद्यार्थियों को देता है। इसलिए उस विषय के साथ विभिन्न तरह के पर्यावरण की जानकारी सहज ढंग से दे सकता है।

i. वृक्षारोपण हरी-भरी बाटिकाओं का संरक्षण करना तथा कराना।

- ii. पाकों एवं जलाशयों की सफाई करवाना तथा स्वच्छता के प्रति जनसाधारण को जागरूक बनाने हेतु स्थान-स्थान पर छात्रों द्वारा स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई सन्देश पट्टिकाओं का लगवाना।
- iii. अपशिष्ट पदार्थों कूड़ा-कर्कट का उपयुक्त स्थान पर रखने की आदत विकसित करना। प्रायः शिक्षित समाज में आज भी यह कमियां दिखाई देती हैं।
- iv. छात्रों के पर्यावरण को स्वच्छ रखने के प्रति जागरूक बनाने की शिक्षा देना साथ ही क्रियात्मक रूप में गन्दी बस्तियों एवं गांवों में उन्हें ले जाकर ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करवाना जिससे जन सामान्य पर्यावरण सुधार के प्रति सजग हो सके और इसे सुधारने के लिए सभी वर्ग के लोगों का सहयोग ले सके।

2. पर्यावरण के तीनों स्वरूपों भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक में उत्पन्न प्रदूषण व विकृतियों के स्वरूपों को विश्लेषित एवं मूल्यांकित करने में भी शिक्षक की सहायता महत्वपूर्ण हो सकती है।

3. पर्यावरण सम्बन्धि फिल्मों, निबन्धों, लेखों एवं रिपोर्टों को सृजित करने तथा पूर्व निर्मित सामग्रियों में अपेक्षित सुधार लाकर उन्हें सूक्ष्म रूप में समझने में छात्रों की सहायता कर सकता है।

4. **पर्यावरण चेतना विकसित करने में विशेष भूमिका:** पर्यावरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों की गहराई में अध्ययन करने की दृष्टि से छात्रों के प्रति एवं विशेष रूप से समाज के एक विशेष प्रतिनिधि के रूप में शिक्षक विशेष भूमिका निभा सकता है। भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित शिक्षक छात्रों से सम्बन्धित नवीन जानकारियों से अवगत कराकर पर्यावरण सुधार के प्रति क्रान्ति ला सकता है।

(अ) शिक्षक वैज्ञानिक की भांति समस्याओं की पहचान करा कर उसके सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव को अपने छात्रों के समक्ष विश्लेषित कर सकता है तथा प्रत्येक तथ्य की तर्कपूर्ण व्याख्या कर सकता है जिससे छात्रों का मन-मस्तिष्क प्रत्यक्ष एवं सक्रिय रूप में प्रभावित हो सकेगा।

(ब) चूंकि शिक्षक समाज का प्रतिनिधि सदस्य है। शिक्षा का महत्वपूर्ण दायित्व उसके कंधों पर है उसका प्रत्यक्ष सम्पर्क सामाजिक क्षेत्र से होता है। अतः सामाजिक पर्यावरण में उत्पन्न भयावह स्थिति, विकृति को कम करने में वह विशेष भूमिका निभा सकता है। क्योंकि वह समाज का एक जिम्मेदार एवं संवेदनशील व्यक्ति विशेष होता है।

(स) शिक्षक मनोवैज्ञानिक की भांति छात्रों की संवेदना, कुंठा के प्रति जागरूक हो कर एक मित्र की भांति उनकी विक्षिप्तताओं को समझ कर उपयुक्त संसाधन ढूंढ कर सामान्य स्थिति में ला सकता है तथा उनमें प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण का विकास कर सकता है। जिससे वे अपनी कुंठाओं को समाज पर

आरोपित न करें वरन् विद्यालय में हो उसका सशोधन किया जाए एवं एक स्वस्थ मानसिक स्थिति वाला जिम्मेदार नागरिक का सृजन हो सके।

(5) **पर्यटक द्वारा शिक्षा:** छात्रों को भ्रमण एवं पर्यटन के माध्यम से विशिष्ट स्थलों एवं आत्म विकृतियों तथा प्रदूषणों को दृष्टांत प्रस्तुत कराकर शिक्षक विशेष भूमिका निभा सकता है। ऐसे स्थलों पर वह प्रदूषण द्वारा पड़े प्रभावों का निरीक्षण करने में अपने अनुभवों द्वारा छात्रों की सहायता कर सकता है।

(6) **सम्पर्क कार्यक्रमों के आयोजनों में विशेष भूमिका:** शिक्षक प्रसार शिक्षा के माध्यम से एक प्रसार कार्यकर्ता की भांति गांवों, शहरों में अभिभावकों तथा सामान्य लोगों के बीच जाकर पर्यावरण प्रदूषण एवं दुष्परिणामों की जानकारी दे सकता है। इस कार्य के लिए वह प्रसार की निम्नांकित आयाग विधियों का प्रयोग कर सकता है।

क्रियाकलाप (Activity) 4 :

- प्र.1 शैक्षिक स्तरों की दृष्टि से पर्यावरण शिक्षा के दो उद्देश्य लिखो।
- प्र.2 पर्यावरण शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालो।
- प्र.3 शिक्षा से पर्यावरण के प्रति जागरूकता का विकास किया जा सकता है। (हाँ या ना)
- प्र.4 पर्यावरण शिक्षा के द्वारा छात्रों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक भावनाओं का विकास किया जा सकता है। (हाँ या ना)
- प्र.5 पर्यावरण के प्रति जनसाधारण को जागरूक करना बहुत आवश्यक है। (हाँ या ना)
- प्र.6 पर्यावरण शिक्षा की कोई दो विशेषताएं लिखो।

14.10 सांराश

पर्यावरण उन सभी वस्तुओं और दशाओं का योग है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी स्थान विशेष पर जीवों तथा जीव समुदायों के जीवन के विकास और विशिष्टताओं को प्रभावित करता है। वास्तव में पर्यावरण भौतिक, जैविक तत्वों का एक योग है। इस योग में भौतिक एवं जैविक तत्व आपस में परस्पर इस प्रकार से संबन्धित होते हैं कि एक जैविक तत्व के अस्तित्व के साथ दूसरे तत्व का अस्तित्व जुड़ा हुआ है। हम इनको एकाकी रूप में नहीं देख सकते हैं। इन तत्वों का सहअस्तित्व ही पर्यावरण को संपूर्णता प्रदान करता है और उसमें संतुलन बनाए रखता है। पर्यावरण शिक्षा बचपन से ही प्ररम्भ से ही हो जानी चाहिए। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला होता है। अतः पर्यावरण की

शिक्षा बालक को इसी परिवार रूपी प्रथम पाठशाला से मिलनी चाहिए। परिवार में हम बालक को घर एवं स्वयं की सफाई भोजन सम्बन्धित स्वच्छ आदते, घर के कचरे का निस्तारण आदि बातों की शिक्षा दे सकते हैं। ये सभी बातें पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत आती हैं।

विद्यालय जीवन में बालको को पूर्ण प्राथमिक स्तर से ही पर्यावरण की शिक्षा दी जानी चाहिए। उच्च प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत भोजन, जल, वायु, भूमि, उनकी प्रकृति व सुरक्षा, स्थानीय भूगोल, स्थानीय समाज, स्थानीय प्राकृतिक सम्पदा का काफी महत्व है। माध्यमिक स्तर पर जल, वायु, मिट्टी, वन, वन्य जीवन, विज्ञान तथा शिक्षा के उच्च स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण, पर्यावरण सुरक्षा, प्रदूषण को रोकने के उपायों की व्यापक जानकारी, ओजोन क्षेत्र आदि का काफी महत्व है। पर्यावरण शिक्षा को विभिन्न खंडों में विभक्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि पर्यावरण जीवन की सत्ता है। यह हमारे जीवन को अनवरत प्रभावित करता रहता है, अतः पर्यावरण शिक्षा में भी अनवरता तथा सतत्ता का होना आवश्यक है। पर्यावरण शिक्षा हमारे सम्पूर्ण भाग का एक अंग होना चाहिए। इसका हमारे जीवन के हर स्तर पर औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से प्राप्त होना बहुत आवश्यक है। पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक आयु वर्ग विशेष कर बालको तथा युवा वर्ग को बढ़ाते हुए पर्यावरण प्रदूषण तथा संतुलन के प्रभावों की गह्र अनुभूति करने की दृष्टि से 'पर्यावरण शिक्षा' की नितांत तथा तत्काल आवश्यकता है। पर्यावरण शिक्षा विश्व समुदाय को पर्यावरण की समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी देता है ताकि समस्याओं से अवगत होकर उनका हल खोजा जा सके। अतः शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य, पर्यावरण की व्यापक समझ का विकास, जिसमें सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, समाजिक, आर्थिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कारकों के साथ-साथ अध्यात्मिक कारकों का एकीकृत प्रभावों के विश्लेषण की योग्यता का विकास सन्निहित है। पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं-

1. पर्यावरण सचेतना तथा वास्तविक अनुभव तथा ज्ञान प्रदान करना।
2. पर्यावरण के घटकों एवं समस्याओं की वास्तविक जीवन में सार्थकता का बोधा।
3. पर्यावरण के स्रोतों का उपयोग तथा समस्याओं के समाधान हेतु कौशल का विकास करना।
4. पर्यावरण समस्याओं का समाधान कर अपेक्षित विकास करना तथा भावना, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास करना

14.11 शब्दावली

पर्यावरण : पर्यावरण उन सभी वस्तुओं और दशाओं का योग है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी स्थान विशेष पर जीवों तथा जीव समुदायों के जीवन के विकास और विशिष्टताओं को प्रभावित करता है। पर्यावरण भौतिक व जैविक तत्वों का एक योग है।

पर्यावरण शिक्षा: पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत भोजन, जल, वायु, भूमि, उनकी प्रकृति व सुरक्षा, स्थानीय भूगोल, स्थानीय समाज, स्थानीय प्राकृतिक सम्पदा की जानकारी प्रदान की जाती है।

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क्रियाकलाप 1. उत्तर: (क) सत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्या

क्रियाकलाप 2. उत्तर:- (क) मनोवैज्ञानिक (ख) पर्यावरण (ग) जैविक।

क्रियाकलाप 3. उत्तर:- (क) स (ख) ब (ग) स

क्रियाकलाप 4. उत्तर:- 3. हाँ 4. हाँ 5. हाँ

14.13 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री:

Begon, D.B. and Keller, E.A. (1995): 'Education Studies', C.E. Merrill Company.

Kumar V.K. (1982): 'A study in Environmental Pollution', Tara Book Agency Varansi, 205pp

Khosboo, TN (1984): 'Environmental Concerns and Strategies', Indian Environmental Society.

Dassaman, R.D. (1976): 'Environmental Conservation', Mc. Graw Hill, New York.

Holiman, J. (1974): 'Consumer Guide to the Protection of the Environment', Ballanie London.

14.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण तथा शिक्षा में सम्बन्ध बताइए। उनके सम्मिलित तत्वों का वर्णन कीजिए।
2. पर्यावरण शिक्षा की परिभाषा दीजिए तथा पर्यावरण शिक्षा की विशेषताओं को बताइए।
3. पर्यावरण संचेतना का अर्थ तथा इसकी पाठ्य वस्तु बताइए। पर्यावरण शिक्षा में अन्तर कीजिए।
4. पर्यावरण संचेतना के विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर किए गए कुछ प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

-
5. पर्यावरण शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर क्या पाठ्यक्रम होना चाहिए? प्रत्येक बिन्दु की आवश्यकता पर अपने विचार लिखिए।
 6. पर्यावरण शिक्षाके महत्व व आवश्यकता की विवेचना करते हुए बताइए की पर्यावरण शिक्षा के लिए आप कौन सी शिक्षण विधि अपनाएंगे?
 7. पर्यावरण शिक्षा की आज आवश्यकता क्यों बढ़ गई है? कोई पांच कारण बताइए।

इकाई 15: पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार व इनका मानव जीवन पर प्रभाव (Types of Environmental Pollution and their effects on Human life)

इकाई की रूपरेखा

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा
- 15.4 पर्यावरण की विशेषताएं
- 15.5 पर्यावरण के प्रकार
- 15.6 पर्यावरण का स्वरूप
- 15.7 पर्यावरण प्रदूषण अर्थ एवं परिभाषा
- 15.8 प्रदूषण के प्रकार
- 15.9 वायु प्रदूषण
- 15.10 जल प्रदूषण
- 15.11 ध्वनि प्रदूषण

-
- 15.12 नाभिकीय प्रदूषण
 - 15.13 मृदा प्रदूषण/भूमि प्रदूषण
 - 15.14 ठोस अपशिष्ट प्रदूषण
 - 15.15 सारांश
 - 15.16 शब्दावली
 - 15.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 15.18 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
 - 15.19 निबंधात्मक प्रश्न
-

15.1 प्रस्तावना:

पर्यावरण एक अत्यन्त व्यापक प्रत्यय हैं जिसके अन्तर्गत हम विभिन्न विषयों को सम्मिलित कर सकते हैं। इसके अन्तर्गत सभी जैविक एवं अजैविक जगत का अध्ययन किया जाता है। जीवधारियों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त जैविक और अजैविक परिस्थितियों न एक दूसरे को प्रभावित करती है, अपितु एक दूसरे पर निर्भर भी रहती है। वास्तव में इन जैविक और अजैविक तत्वों के मध्य एक सतत् क्रिया चलती रहती है, जिसके कारण पर्यावरणीय परिस्थितियों में परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों का सीधा प्रभाव मानव व मानवीय परिस्थितियों पर पड़ता है।

अतएव कहा जा सकता है कि पर्यावरण विशाल सीमाओं को समेटे हुए एक बृहद वैज्ञानिक विषय है, जिसके अन्तर्गत हम विभिन्न तत्वों व उनकी अन्तःक्रियाओं का अध्ययन कर सकते हैं। पर्यावरण प्रदूषण एक मानवीय व प्राकृतिक क्रियाकलापों पर आधारित घटनाक्रम है। प्रस्तुत इकाई में आप पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार व इनका मानव जीवन पर प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप निम्न बिन्दुओं की व्याख्या करने में सक्षम हो सकेंगे।

- पर्यावरण अर्थ एवं परिभाषा
- पर्यावरण प्रदूषण अर्थ एवं प्रकार (वर्गीकरण)
- वायु प्रदूषण
- जल प्रदूषण
- ध्वनि प्रदूषण, नाभिकीय (रेडियोएक्टिव) प्रदूषण
- मृदा प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रदूषण

- पर्यावरण प्रदूषण के स्रोत तथा उनका मानव जीवन पर प्रभाव व इनसे बचाव के उपाय

15.3 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा

पर्यावरण शब्द अंग्रेजी भाषा के Environment शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसका अर्थ है “चारों ओर से घिरा हुआ”। इस प्रकार पर्यावरण उसे कहते हैं, जो किसी वस्तु को नजदीक से घेरे हुए हैं एवं उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी स्थान विशेष पर जीवों और जीव समुदायों के जीवन के विकास और विशिष्टताओं को प्रभावित करता है।

पर्यावरण को वातावरण (Atmosphere) तथा प्राकृतिक वास भी कहा जाता है, किन्तु इन शब्दों में पर्यावरण जैसी व्यापकता नहीं है, क्योंकि ये शब्द किसी एक तथ्य, दिशा या परिस्थिति के ही द्योतक (सूचक) मात्र हैं। पर्यावरण के व्यापक अर्थ को समझने के लिए इसकी परिभाषाओं को जानना आवश्यक है-

परिभाषाएं :

बोरिंग के अनुसार “ एक व्यक्ति के पर्यावरण में वह सबकुछ सम्मिलित किया जाता है जो उसके जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक प्रभावित करता है”। “A person’s environment consists of the sum total of the stimulation which he receive from his conception until his death”- Boring

अनस्टेसी, “व्यक्ति के वंशानुक्रम के अतिरिक्त वह सब कुछ पर्यावरण माना जाता है जो उसे प्रभावित करता है”। “The environment is everything that effects the individual exupt his genes”- Anastasi

सी०सी० पार्क, “मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण कहा जाता है”। “Environment refers to the sum total of conditions which he surroud man at a given point isspace and time”- C.C. Park (1980)

रॉस, “पर्यावरण एक वाहय शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है”।

फिटिंग, “जीवन की परिस्थितियों के समस्त तथ्य मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं”।

तॉसले, “प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीव रहते हैं, वातावरण (पर्यावरण) कहलाता है”।

इस प्रकार पर्यावरण से आशय उन समस्त प्राकृतिक सामाजिक सांस्कृतिक तथा भौतिक परिस्थितियों के योग से है जो मानव को चारों ओर से न केवल घेरे रहती है वरन् उसके जीवन को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करती है और स्वयं भी मानव द्वारा प्रभावित होती है।

वास्तव में पर्यावरण एक अतन्त व्यापक अवधारणा है, जिसमें वे सभी जैविक, भौतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ आ जाती है, जिसमें प्राणी जन्म लेते हैं, अभिवृद्धि व विकास करते हैं तथा रहते हैं।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के महानिदेशक श्री लक्ष्मीधर मिश्र इसे ध्यान में रखते हुए लिखते हैं कि “ पर्यावरण उन सभी प्रकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है जो धरती माता ने मानव जाति के लिए वरदान के रूप में दिए हैं। ये संसाधन हैं, जमीन जल, वायु, वनस्पति, वन और वन्य जीव, जो हमें घेरे हुए हैं और प्रतिदिन हमें प्रभावित करते हैं।”

15.4 पर्यावरण की विशेषताएं

1. व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक प्रभावित करने वाली सम्पूर्ण परिस्थितियों को पर्यावरण में सम्मिलित करते हैं।
2. वंशानुक्रम के अतिरिक्त सभी घटकों, कारकों तथा परिस्थितियों को जो प्रभावित करते हैं पर्यावरण कहते हैं।
3. जीवधारियों के विकास एवं उत्थान को प्रभावित करने वाले भौतिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक भावात्मक आर्थिक तथा राजनैतिक शक्तियों को पर्यावरण का अंग माना जाता है।
4. एक व्यक्ति विशिष्ट समय तथा स्थान पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हाता है, उसे पर्यावरण का अंग माना जाता है।
5. जीवधारियों के उत्थान एवं विकास को प्रभावित करने वाले वाह्य शक्तियों को पर्यावरण कहा जाता है।
6. इसके अन्तर्गत वायु, जल तथा भूमि और जैविक में पौधों, पशु पक्षियों तथा मनुष्यों को सम्मिलित करते हैं।
7. मानव की व्यवस्था, प्रबन्ध तथा संस्थाओं के वातावरण तथा गतिविधियों एवं कार्यों को भी सम्मिलित करते हैं।
8. पर्यावरण के अन्तर्गत भौतिक, रासायनिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा जैविक सांस्कृतिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

15.5 पर्यावरण के प्रकार

कर्ट लेविन ने (Life Space) जीवन विस्तार के सन्दर्भ में पर्यावरण को तीन प्रकार का बताया है, जो व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं।

1. **भौतिक पर्यावरण-** इसका सम्बन्ध भौगोलिक जलवायु मौसम तथा भौतिक परिस्थितियों से होता है।
2. **सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण** मानव के धर्म संस्कारों, शिक्षा राजनीति, आर्थिक स्थिति, कला, भाषा उद्योग, व्यवसाय को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।
3. **मनोवैज्ञानिक पर्यावरण-** कर्ट लेविन ने इसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण, माना है, उनके अनुसार एक ही प्रकार के भौतिक जैविक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण में रहकर प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं करता है। ये प्रतिक्रियाएं ही उसके व्यक्तित्व को नया व पृथक रूप प्रदान करती है।

15.6 पर्यावरण का स्वरूप

2. भौतिक (अजैविक) पर्यावरण- भूमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल
2. जैविक पर्यावरण- पौधे, जानवर व मनुष्य का वातावरण

अभ्यास प्रश्न -I

प्र01 - पर्यावरण शब्द किन दो शब्दों से मिलकर बना है ?

प्र02 - पर्यावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है। प्रस्तुत परिभाषा किसने दी है?

क- रास ख- वेबस्टर शब्दकोष ग- फिटिंग

प्र03- पर्यावरण में मनोवैज्ञानिक पर्यावरण का विचार कर्ट लेविन ने दिया। (सही अथवा गलत)

प्र04 - पर्यावरण के प्रकार बताईए ?

15.7 पर्यावरण प्रदूषण अर्थ एवं परिभाषा

पर्यावरण का निर्माण जैविक एवं अजैविक संघटकों द्वारा होता है। इसी से सभी तत्व संतुलित अवस्था में रहते हैं। इसी से सभी तत्व संतुलित अवस्था में रहते हैं। इनमें यदि किसी प्रकार की अव्यवस्था होती है तो उसकी क्षतिपूर्ति स्वनियामक क्रिया द्वारा हो जाती है। परन्तु जब परिवर्तन उसकी सहन शक्ति से बाहर हो जाए तथा क्षतिपूर्ति न हो सके तो उसे 'पर्यावरण अवनयन' कहते हैं।

जब यह पर्यावरण अवनयन इतना अधिक हो जाता है कि पौधों जीव-जन्तुओं और मानव पर प्राणघातक कुप्रभाव पड़ने लगता है तो उसे पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं।

प्रदूषण शब्द की उत्पत्ति हिन्दी के 'दूषण' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है-

दूषण-खराब होना, अपवित्र होना, मिश्रित हो जाना

इस प्रकार प्रदूषण का अर्थ- पर्यावरण का खराब अनुपयुक्त व स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाना।

'प्रदूषण' शब्द English के शब्द Pollution का हिन्दी पर्याय है। इस Pollution की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Pollure से मानी गयी है।

National Enviromental Research Council (1970) "मनुष्य के क्रिया कलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं"।

प्रो० जगदीश सिंह, "पर्यावरण के किसी भी तत्व के भौतिक, रासायनिक या जैविक विशेषताओं में कोई ऐसा परिवर्तन जो मानव अथवा अन्य प्राणियों के लिए हानिकारक हो पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है"।

भारतीय मानक संस्थान के अनुसार " , प्राकृतिक वातावरण में किसी भी वाहरी पदार्थ का मिश्रण प्रदूषण कहलाता है, यदि वह जैवमण्डल के जीवों और वनस्पतियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।"

Prof. Govind Prakash Davar " , पर्यावरण के अंगों जल, थल, वायु, नभ आदि में ऐसा परिवर्तन है जो कि उपरोक्त अंगों के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों को परिवर्तित कर दे, प्रदूषण कहलाता है"।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पर्यावरणीय तत्वों में होने वाला वह हानिकारक, अवांछनीय परिवर्तन जो मानवीय क्रिया कलापों से उत्पन्न अपशिष्टों द्वारा होता है तथा पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन उत्पन्न करता है, प्रदूषण कहलाता है।

15.8 प्रदूषण के प्रकार

(क) स्वरूप के आधार पर प्रदूषण के प्रकार:- 1. भौतिक प्रदूषण 2. सामाजिक प्रदूषण

भौतिक प्रदूषण का तात्पर्य होता है पर्यावरण के भौतिक संघटकों की गुणवत्ता में हासा।

भौतिक प्रदूषण- स्थल प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, पर्वतीय प्रदूषण, अंतरिक्ष प्रदूषण, सागरीय प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण

(क) भौगोलिकता के आधार पर प्रदूषण के प्रकार:- 1. स्थानीय प्रदूषण- ग्रामीण, नगरीय।

2. राष्ट्रीय प्रदूषण- नदी, समुद्र, पर्वत तथा वायुमण्डलीय प्रदूषण।

3. अन्तर्राष्ट्रीय प्रदूषण- हरित गैस प्रभाव, ओजोन परत का संरक्षण, ऊर्जा संकट, खनिज संकट तथा नाभिकीय प्रदूषण

4. ब्रह्माण्ड प्रदूषण- अंतरिक्ष प्रदूषण।

(ग) अवस्थिति के आधार पर प्रदूषण के प्रकार:-

1. बिन्दु प्रदूषण 2. अबिन्दु प्रदूषण

इस प्रकार का प्रदूषण स्थान विशेष पर प्रदूषकों के अभाव से उत्पन्न होता है। प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। जैसे- कल कारखानों व वाहनों से निकलने वाला धुँआ, नगरों से निकलने वाला कचरा व घरों से निकलने वाला मल, जल आदि। यह अप्रत्यक्ष रूप से होता है तथा यह किसी दूसरे स्थान पर पैदा होता है तथा किसी अन्य स्थान को प्रदूषित करता है, जैसे- कृषि कार्य हेतु खेतों में डाले हुए रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों का वर्षा के जल के साथ बहकर प्राकृतिक जल स्रोतों तक पहुँचना और उन्हें प्रदूषित करना।

(घ) प्रदूषक स्रोतों के आधार पर प्रदूषण के प्रकार:- औद्योगिक, वाहन, कृषि, महानगरीय, जनसंख्या, रासायनिक, नाभिकीय, प्लास्टिक इत्यादि।

15.9 वायु प्रदूषण (Air Pollution):

सभी जीवधारियों के लिए वायु अत्यन्त आवश्यक है। भोजन व जल के अभाव में कुछ समय तक जीवित रहा जा सकता है। लेकिन वायु के अभाव में एक क्षण भी जीवित नहीं रहा जा सकता है। मनुष्य दिन भर में 22000 बार श्वास लेता है और 16 किलो हवा का सेवन दिन भर में लगभग करता है जो उसके द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भनादि पदार्थों का 80 प्रतिशत है।

कार्बन चक्र की सक्रियता के कारण वायुमण्डल की गैसों में सन्तुलन बना रहता है, परन्तु मानव अपने क्रिया कलापों द्वारा इन गैसों के सन्तुलन में अव्यवस्था उत्पन्न कर रहा है, जिससे वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो रही है।

वायु प्रदूषण किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण विश्व के लिए भयंकर समस्या बन गया है।

वायु प्रदूषण की परिभाषायें - विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, “जब वायुमण्डल में दूषित पदार्थों का सान्द्रण मानव तथा पर्यावरण को हानि पहुंचाने की सीमा तक बढ़ जाता है तो उसे वायु प्रदूषण कहा जाता है”।

हैसकेप के शब्दों में, “वायु में ऐसे वाह्य तत्व की उपस्थिति जो मानव के स्वास्थ्य तथा कल्याण हेतु हानिकारक हो, वायु प्रदूषण कहते हैं”।

इस प्रकार वायु के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में अवांछित परिवर्तन हो जाता है, जिसके द्वारा मानव व अन्य जीवों की जीवन दशाओं पर कुप्रभाव पड़ने लगता है, तब उसे वायु प्रदूषण कहते हैं।

वायु प्रदूषण के प्रकार:

गैसीय वायु प्रदूषक: CO_2 , CO , क्लोरो फ्लोरो कार्बन, Hydro Carbon, सल्फर डाई आक्साईड, ठोस एव वायु प्रदूषक: सल्फ्यूरिक एसिड, Hydrogen Sulphide, Nitrogen Oxide, एलडी हाईड, क्लोरीन इत्यादि प्रदूषक इसके अन्तर्गत आते हैं। विभिन्न प्रकार के ठोस एवं द्रवीय पदार्थ भी वायु-प्रदूषण के स्रोत हैं।

वायु प्रदूषण के स्रोत :

प्रकृतिजनित स्रोत : ज्वालामुखी उत्पन्न राख धूम, कास्मिक धूलि फूल पराग, CO_2 , कवक के बीजाणु, धरातलीय धूलि, मिट्टी कण, लवण फुहार इत्यादि वायु प्रदूषक प्रकृति से उत्पन्न होते हैं।

मानव जनित स्रोत : मानव को अनेक प्रकार की गैसें, एयरसासल, सीसा, पारा, एसबेसटस इत्यादि के कण, रेडियोधर्मी तत्व, ऊष्मा इत्यादि वायु प्रदूषक मानव जन्य स्रोतों से प्राप्त होते हैं।

वायु प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव: वायु प्रदूषण पर्यावरण के भौतिक एवं जैविक संघटकों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को तीन वर्गों में रखा जाता है:-

मौसम तथा जलवायु पर प्रभाव: एयर कण्डीशर रेफ्रीजरेटर, Foam, Plastic, hair dresser, Fire Extinguisher तथा कई प्रकार के प्रसाधन की सामग्रियों से उत्सर्जित क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) तथा सुपरसानिक जेट विमानों से निर्मुक्त नाईट्रोजन आक्साइडस के कारण समताप मण्डल आजोन परत में अल्पता के कारण धरातलीय सतह पर सूर्य की पराबैंगनी किरणों की अधिक मात्रा में प्राप्ति के कारण निचले वायुमण्डल तथा धरातलीय सतह के तापनाम में बृद्धि के कारण वायुमण्डलीय विकिरण एवं ऊष्मा सन्तुलन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी।

धूम कोहरा (Smog): नगरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में ऊपर धुएं से युक्त कोहरे को धूम कोहरा कहते हैं। साधारण कोहरे के साथ धूम का मिश्रण हो जाता है तो धूम कोहरे का निर्माण होता है। जब इसके साथ वायु के प्रदूषकों जैसे सल्फर डाई ऑक्साईड, नाइट्रोजन के ऑक्साईडस तथा ओजोन का मिश्रण हो जाता है तो वह मानव के लिए विषायुक्त या प्राणघातक हो जाता है।

अम्ल वर्षा (Smog): जल वर्षा के साथ अम्ल के अवपात को अम्ल वर्षा कहते हैं। वर्षा के जल की PH-5 होती है। 7 PH मान वाला जल तटस्थ जल कहा जाता है। 7 से कम PH होने पर जल अम्लीय तथा 7 PH अधिक होने पर क्षारीय हो जाता है।

वायु प्रदूषण मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव:

कार्बन मोनाऑक्साइड मनुष्य के रक्त के हीमोग्लोबिन अणुओं से ऑक्सीजन की तुलना में 200 गुणा अधिक तेजी से संयुक्त हो जाते हैं, जिस कारण ऑक्सीजन की वायु में पर्याप्त मात्रा रहने पर भी श्वास अवरोध दम घुटन (Suffocation) होने लगता है।

ओजोन की अल्पता होने पर गोरी चमड़ी के लोगों में Skin Cancer होने की आशंका व्यक्त की गई है।

Sulphur Di Oxide से मिश्रित नगरी धूम कोहरे के कारण मनुष्य के शरीर में श्वसन प्रणाली अवरूद्ध हो जाती है, जिस कारण लोगों की मृत्यु हो जाती है।

Sulphur Di Oxide के प्रदूषण द्वारा आँख, गले एवं फेफड़े का रोग भी होता है।

Acid Rain के कारण धरातलीय सतह पर जलभण्डारों का जल तथा भूमिगत जल प्रदूषित हो जाता है।

वायु में नाइट्रिक ऑक्साइड के सान्द्रण में वृद्धि होने से मनुष्य के शरीर में सांस द्वारा पहुँचती है तथा O₂ की तुलना में एक हजार गुनी अधिक तेज गति से हीमोग्लोबिन से संयुक्त हो जाती है, जिस कारण सांस लेने में कठिनाई होती है, मसूड़ों में सूजन आती है, शरीर के भीतर रक्त श्राव होने लगता है, ऑक्सीजन कि कमी हो जाती है, तथा निमोनिया एवं फेफड़े का कैंसर हो जाता है।

कारखानों व स्वचालित वाहनों से उत्सर्जित निमम्बित कणिकीय पदार्थों जैसे- सीसा, एस्वेस्टस, जस्ता, तॉबा, धूल के कारण मानव शरीर में कई प्रकार के प्राण घातक रोग हो जाते हैं, जैसे- सीसा विषायण तथा एस्वेस्टोसिस एस्वेस्टस के कणों के शरीर में साँस प्रविष्ट होने पर होने वाली प्राणघातक फेफड़े की बीमारी।

वनस्पतियों पर प्रभाव:- पौधों की शारीरिक क्रिया दुष्प्रभावित होने के कारण पौधों का गुण परिवर्तन, विकास में बाधा तथा उत्पादकता कम हो जाती है। पत्तियों में Chlorophyll का अंश कम होना। कृषि उपजें दुष्प्रभावित होना।

सल्फर डाई ऑक्साइड की मात्रा अधिक होने से मई शाखाओं का निकलना बन्द होना, फूलों में परागन आना, फलों का निचला बन्द होना, फूलों का आकार छोटा होना। इसकी अधिकता से लाइकेन मर जाते हैं तथा वन नष्ट हो जाते हैं।

Hydrogen Floride की बहुलता होने पर पौधों में Neerosil (अतिगलन) रोग लग जाता है। Hydrogen Floride की कमी होने पर मिट्टी में नमी का अंश अल्प हो जाता है, जिससे पौधे सूखने लगते हैं। अम्ल वर्षा पौधों के लिए घातक होती है।

इस वायु प्रदूषण का सम्पूर्ण जीव जगत पर व्यापक प्रभाव पड़ता है, जिसका विवरण उपर्युक्त दिया गया है। ऐतिहासिक इमारतों पर इन गैसों का प्रभाव पड़ने के कारण इनकी प्राकृतिक सुन्दरता नष्ट होती जा रही है। वायु प्रदूषित नगरों में रेल की पटरियाँ अपेक्षाकृत चार गुनी अधिक तेजी से पिघलती है, जबकि SO_2 से इस्पात के क्षरण की प्रक्रिया तेज हो जाती है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय:- वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण करने के लिए रहन सहन के स्तर तथा ऊर्जा के उपभाग प्रारूप में परिवर्तन करना पड़ेगा। वायु प्रदूषण को कम करने के लिए निम्न उपाय कारगर हो सकते हैं।

1. समाज के प्रत्येक वर्ग को वायु प्रदूषण के घातक परिणामों से जागृत करना।
2. व्यापक सर्वेक्षण:- वर्तमान वायु प्रदूषण के घातक परिणामों से बचाव के लिए व्यापक सर्वेक्षण तथा अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार से प्राप्त सूचनाओं को आधार बनाकर प्रदूषण के भावी स्तर एवं उससे उत्पन्न होने वाले कुप्रभावों की समय से पूर्व भविष्यवाणी की जानी चाहिए तथा वायु प्रदूषण के खतरे से जनता का जगरूक करना चाहिए।
3. मानव शरीर पर प्रभावों की जानकारी: वायु प्रदूषण से मानव शरीर पर पड़ने वाले घातक प्रभावों से आम जनता को परिचित कराया जाना चाहिए।
4. सकल प्रदूषण भार को कम करने का प्रयास करना।
5. कम हानिकारक उत्पादों की खोज की जानी चाहिए जैसे सौर चलित मोटर कार।
6. प्राणघातक एवं प्रदूषण की सामग्रियों की समाप्ति:- Ozone क्षय करने वाले पदार्थों जैसे Chloro Fluoro Carbon (CEC फ्रियोन 11 तथा फ्रियोन 12) के उत्पादन व उपभोग पर भारी कटौती करनी चाहिए।

7. वायु प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम 1981 को उचित प्रकार से क्रियान्वित किया जाना चाहिए तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के द्वारा नियमों का पालन न करने पर उचित दण्ड देने का तथा जुर्माना देने का भी प्रावधान है।

8. वर्तमान तरीकों में सुधार:- वायु प्रदूषण के नियन्त्रण के वर्तमान तरीकों में सुधार किया जाना चाहिए तथा प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए नए प्रभावी तरीकों की खोज के लिए कारगर प्रयास करने चाहिए। गैसीय व कणिकीय पदार्थों द्वारा हाने वाले वायु प्रदूषण को रोकने के लिए निम्न यंत्रिय उपार्यों को प्रयोग में लाया जा सकता है।

बैग फिल्टर उपकरण:- इसके माध्यम से कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले कणिकीय पदार्थों को फिल्टर (Filter) करके अलग कर लिया जाता है। कारखानों की चिमनियों के साथ इसे लगा दिया जाता है तथा कणिकीय पदार्थों से युक्त धुआँ इस फिल्टर के सिलिण्डर से होकर गुजरता है। जैसे बेलनाकार बैग से होकर बाहर निकल जाती है, जबकि कणिकीय पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं।

साईक्लोन सेपरेटर तथा वेटस्क्रबर उपकरणों का प्रयोग:- 50 माइक्रोमीटर से बड़े आकार वाले कणिकीय पदार्थों को फिल्टर करने तथा अलग करने के लिए Cydone Separator तथा वेटस्क्रबर नामक उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत कारखानों से निससृत कणिकीय पदार्थों से युक्त धुआँ का तेज गति से मंथन होता है, परिणाम स्वरूप कणिकीय पदार्थ सिलिण्डर के निचले भाग के निकास से बाहर निकलते रहते हैं।

एलेक्ट्रोस्टैटिक प्रेसीपिटेटर, हाई एनर्जी स्क्रबर तथा फैब्रिक फिल्टर:- एक माइक्रोमीटर से छोटे आकार वाले कणिकीय पदार्थों को एलेक्ट्रोस्टैटिक प्रेसीपिटेटर (ESP), High Energy Scrubber & Fabric Filter नामक उपकरणों की सहायता से धुआँ से अलग किया जाता है।

1. प्रदूषण नियन्त्रण मण्डल द्वारा सभी उद्योगों की नियमित जाँच कर उनकी प्रदूषण नियन्त्रण व्यवस्था आश्वस्त करनी चाहिए।
2. विभिन्न उद्योगों की स्थापना के साथ प्रदूषण नियंत्रण उपकरण लगाये जाने चाहिए।
3. कारखानों के पास सघन वृक्षावली लगाने से कई प्रकार के प्रदूषक तत्व उन द्वारा अवशोषित होते हैं।
4. वाहनों के उपकरणों के बारे में राज्य सरकार के सम्बन्धित विभागों को वाहनों की नियमित चैकिंग करनी चाहिए। अधिक प्रदूषण फैलाने वाले वाहन मालिकों को चेतावनी कार्ड जारी करने चाहिए तथा वाहन की ठीक व्यवस्था न करने पर उनका रजिस्ट्रेशन निरस्त करना चाहिए।
5. वायु प्रदूषण निवारण के लिए प्रत्येक देश में शोध केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए।

6. इस प्रकार से निःसन्देह वायु प्रदूषण एक गम्भीर संकट है, जिससे बहुत सावधानी से बचाव करना आवश्यक है।

(क्रिया कलाप):-

प्र0- वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत बताईए ?

प्र0- वायु प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम कब पारित हुआ ?

क- 1976 ख- 1984 ग- 1981

प्र0- वायु प्रदूषण के मानव जीवन पर पड़ने वाले दो प्रभावों का नाम लिखिए ?

15.10 जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल पर्यावरण का जीवन साथी तत्व है। वनस्पति से लेकर जीव जन्तु अपने पोषक तत्वों की प्राप्ति जल के माध्यम से करती है। मानव शरीर का निर्माण भी जल से ही हुआ है। विश्व का 4 प्रतिशत जल पृथ्वी पर है, शेष 96 प्रतिशत जल खारे जल के रूप में समुद्र में है।

जनसंख्या वृद्धि तथा रासायनिक उद्योगों के प्रसार से पानी की कमी की समस्या पैदा हो रही है, तथा पानी प्रदूषित भी होता जा रहा है। मानव अपने क्रियाकलापों द्वारा प्रदूषकों को जल में उत्सर्जित करके जल की शुद्धिकरण क्षमता को प्रभावित करता है।

परिभाषाएं - मानव क्रियाकलापों/प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा जल के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन को जल प्रदूषण कहते हैं।

जल प्रदूषण का अर्थ है- मनुष्य द्वारा बहती नदी में ऊर्जा अथवा ऐसे पदार्थ का निवेश जिससे जल के गुण में कमी हो जाए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, “प्राकृतिक/अन्य स्रोतों से उत्पन्न अवांछित वाहरी पदार्थों के कारण जल दूषित हो जाता है तथा वह विमाक्तता एवं सामान्य स्तर से कम ऑक्सीजन के कारण जीवों के लिए हानिकारक हो जाता है तथा संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होता है।”

इस प्रकार जल प्रदूषण जल के भौतिक, रासायनिक व जैविक विशेषताओं में होने वाला परिवर्तन है। जल में वाह्य पदार्थों के मिलने से उसके प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते हैं और पारिस्थितिक तंत्र बिगड़ जाता है।

जल प्रदूषण के प्रकार:**(क) अलवण जलीय प्रदूषण-**

1. **भूपृष्ठीय जल का प्रदूषण-** नदी एवं झीलें भू-पृष्ठीय अलवण जलीय प्रदूषण के उदाहरण जलीय प्रदूषण के उदाहरण हैं। इनमें ताजा जल होता है। इनमें प्रदूषण के स्रोत घरेलू गन्दा पानी और वाहित मल, औद्योगिक अवशेष, कृषीय अवशेष, भौतिक प्रदूषक होते हैं।

2. **भूमिगत जल का प्रदूषण-** जब प्रदूषक जल के साथ भूमिगत जल में प्रवेश कर पाते हैं, तो ये भूमिगत जल को प्रदूषित कर देते हैं। भूमिगत प्रदूषक कचरा गर्त सैप्टिक बैंक, सोकपिट टैंक से भूमिगत जल में पहुँचते हैं।

(ख) **समुद्री प्रदूषण:-** यदि जल में लवण की मात्रा 35 पी.पी.टी. या उससे अधिक हो तो ऐसे जलाशय समुद्र कहलाते हैं। महासागरों, समुद्रों, मुहानों, लवणीय कच्छों और अन्य प्रकार के जलाशयों में प्रदूषण को समुद्री प्रदूषण कहते हैं। यह प्रदूषण भी मानवीय क्रियाओं का परिणाम होता है।

जल प्रदूषण के कारण:

(क) **प्राकृतिक कारण:-** इनके स्रोत यथा मृदा अपरदन, भूस्खलन, ज्वालामुखी उदगार द्वारा पौधों एवं जन्तुओं के विघटन एवं वियोजन हैं।

(ख) **मानव स्रोत-** औद्योगिक, नगरीय, कृषि तथा सामाजिक स्रोतों नगरीय स्रोतों से सीवेज कूड़ा-कचरा, नगरो में स्थित स्वचालित वाहनों से उत्सर्जित कणिकीय पदार्थ के अवपात से कृषि क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी रागनाशी व शाकनाशी कृत्रिम रासायनों से जल का प्रदूषण होता है। औद्योगिक स्रोत यथा कारखानों से निकलने वाले गन्दगी एवं अपशिष्ट जल, ठोस एवं घुले रासायनिक प्रदूषकों तथा कई प्रकार के धाविक पदार्थों द्वारा नदियों एवं सागर तटीय भागों के जल को प्रदूषित करते हैं।

1. दैनिक कार्यों से गन्दगी।
2. औद्योगिक अपशिष्ट।
3. कृषि रसायन, अपमार्जक, औद्योगिक तापीय प्रदूषण।
4. खनिज तेल, शवों के जल प्रवाह से प्रदूषण।

जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव:

जल प्रदूषण का सर्वाधिक कुप्रभाव प्रदूषित जल पीने से अनेक विषाणु व रोगाणु मानव शरीर में प्रवेश कर प्राणघातक बीमारियों को जन्म देते हैं, जिससे अनेक लोग प्रति वर्ष काल के ग्रास में जाते हैं।

जल प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव:- प्रदूषित जल से आँत सम्बन्धी रोग, टाईफाईड, हैजा, पीलिया, पेचिश इत्यादि रोग होते हैं। जो श्रमिक चमड़े के उद्योग में कार्य करते हैं उन्हें चर्म रोग ज्यादा होता है, जिससे मानव की कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित जल का पीना पीलिया एवं फ्लोरीसिस रोगों का एकमात्र कारण है। अप्रत्यक्ष रूप से जापान का मिनिमाता रोग प्रदूषित जल का ही परिणाम है। झारखण्ड के छोटा नागपुर प्रदेश में जल में खनिज अंश का बाहुल्य होने के कारण वहाँ के लोगों में पेट का रोग सबसे अधिक होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक आकलन के अनुसार प्रदूषित जल के सेवन से विश्व के प्रति वर्ष 5 लाख बच्चे मरते हैं, तथा 500 मिलियन व्यक्ति प्रदूषित जल पीने से उत्पन्न रोगों से दुष्प्रभावित होते हैं। 20 लाख लोग भारत में अशुद्ध जल पीने से प्रति वर्ष मरते हैं।

जलीय जीवों पर कुप्रभाव:- जलीय जीवों पर प्रदूषित जल का कई प्रकार से कुप्रभाव पड़ता है। जलीय परिस्थिति की तंत्र में जैव व अजैव पदार्थ भोजन श्रृंखला द्वारा आपस में रहते हैं और तंत्र की कार्यशीलता को बनाये रखते हैं। झीलों व औद्योगिक वहिःश्राव नदियों व समुद्री तटीय भागों में होन वाले शैवाल में वृद्धि होने लगती है। खनन और औद्योगिक प्रदेशों में कभी कभी अम्ल प्रधान लौह क्षेत्रों से वाहित जल के फेरोहाईड्रो ऑक्साइड निक्षेप से जलीय भाग की तली कठोर हो जाती है।

समुद्री जल में आणविक परीक्षणों व तेल वाहक टैंकरों से खनिज तेल के रिसाव के कारण जलीय जीव मर जाते हैं। विषैले रसायनों तथा डीडीटी का जल में कभी-कभी मिश्रण होने पर घरेलू पशु भी मरने लगते हैं।

वनस्पतियों पर दुष्प्रभाव:- वनस्पतियों पर जल प्रदूषण का अनेक रूपों में दुष्प्रभाव पड़ता ताप विद्युत गृहों या धातु कारखाने से जो बहिःश्राव होता है, जिससे शैवालों व कवक में तेजी से वृद्धि होने लगती है, जिससे श्वसन में वृद्धि होने पर ऑक्सीजन में कमी होने लगती है और जीव मरने लगते हैं, तथा वहाँ का पारिस्थितिक तंत्र असन्तुलित होने लगता है।

सूर्य का प्रकाश प्रदूषित जल गहराई तक नहीं पहुँच पाता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होने से जलीय पौधे नष्ट हो जाते हैं।

जहरीली हवाओं से मिश्रित जल पौधों में संश्लेषण क्रिया को बाधित करता है।

संसाधन की गुणवत्ता/उपलब्धता में हास - मिट्टी की गुणवत्ता में प्रदूषित जल द्वारा सिंचाई करने पर हास होता है। मिट्टी में क्षारीय अंश खारे पानी से सिंचाई के कारण बढ़ जाता है।

जल स्रोतों पर कुप्रभाव:- जल प्रदूषण की वजह से संयुक्त राज्य की ईरी झील निर्जीव हो चुकी है। ओन्टेरियो और सुपीरियर झीलें जीव रहित होने के कगार पर हैं।

यूरोप की वेहद खूबसूरत राइन नदी दुर्गन्धयुक्त बहते नाले के रूप में परिवर्तित हो गई है। कनाडा, फिनलैण्ड, नार्वे, संयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन आदि की झीलें बेकार हो गई हैं।

सागरों की क्षमता में कमी:- जल प्रदूषण के कारण मछली व पौधों को उत्पन्न करने में सागरों से 30 प्रतिशत से 35 प्रतिशत तक की कमी आई है। 1840 में सागरीय जल के नमूनों में ऑक्सीजन की मात्रा प्रति लीटर जल में 2.5 घन सेमी थी, लेकिन वर्तमान समय में यह मात्रा 0.1 घन सेमी रह गई है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रदूषित जल से मानव जलीय जीव, पशु पौधे इत्यादि दुष्प्रभावित हो रहे हैं।

जल प्रदूषण रोकने के उपाय:

- जल प्रदूषण पर विजय पाने के लिए अपशिष्टों के नियंत्रण व्यक्ति, उद्योग, राज्य और देश सभी को सम्मिलित होना चाहिए।
- प्रदूषक अवशिष्ट जो नदियों में बहाये जाते हैं, उन पर नियन्त्रण करना आवश्यक है।
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जल प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रमों पर राज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण एजेन्सियों का शासन होना चाहिए।
- उर्वरकों व रसायनों का प्रयोग सीमित मात्रा में करना चाहिए जल प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम 1974 द्वारा भारत में प्रदूषण रोकन का प्रयास किया जा रहा है।
- नदी में औद्योगिक अपशिष्टों को प्रोसेसिंग करके उत्सर्जित करना चाहिए।
- चमड़ा उद्योग, चीनी उद्योग, पशु वध उद्योग आदि ऐसे उद्योग हैं जो खतरनाक अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं। इसलिए इस प्रकार के उद्योगों को शहर से बाहर ही स्थापित किया जाना चाहिए।
- औद्योगिक नगरों को मण्डलों में बॉटकर नियोजन द्वारा जल प्रदूषण को नियंत्रित करना चाहिए।
- कुछ अन्य उपाय:- अपशिष्ट जल को शुद्ध करके पुनः उसका उपयोग करना चाहिए।
- शवों को नदियों में प्रवाहित करने से रोकना चाहिए तथा विद्युत शव दाह गृह बनाए जाने चाहिए।
- मवेशियों को तालाबों में धोने पर पाबंदी लगानी चाहिए।

- जल प्रदूषण के विभिन्न पक्षों के बारे में मानव समुदाय में जन चेतना तथा जन जागरण किया जाना चाहिए।

15.11 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution) :

ध्वनि का वैदिक व आध्यात्मिक जगत में अत्यन्त महत्व है। मानव तथा पशु पक्षी अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रायः किसी न किसी प्रकार की ध्वनि करते हैं। नदी, झरने बहते समय ध्वनि करते हैं। रेडियो, टीवी, लाउड स्पीकर, बिजली की गड़गड़ाहट, ज्वालामुखी, इत्यादि अनेक ऐसे कारक हैं जो कम/अधिक मात्रा में किसी न किसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती हैं।

जब वायुमण्डल में एक साथ और वह भी ऊँचे स्तर पर अनेक ध्वनियों बिना किसी तारतम्यता के प्रसारित हो तो वह शोर कहलाता है।

अलेक्सेंडर ग्राहम बेल (Alexander Graham Bell) टेलीफोन के आविष्कारक ने ध्वनि मापने के लिए पैमाना दिया, उसकी इकाई डेसीबल (डी0बी0) कहलाती है। एक बेल के 10 वें भाग के मान को डेसीबल कहा जाता है।

परिभाषा:- डा० वी० राज के अनुसार, “अवांछनीय ध्वनि जोकि मानवीय सुविधाओं, स्वास्थ्य तथा गतिशीलता में हस्तक्षेप करती है/प्रभावित करती है, ध्वनि प्रदूषण है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रकार:-

1. मानव उत्पादित:- मानव जन्य विविध क्रियाकलापों से उत्पन्न आवाज, नगरों व औद्योगिक क्षेत्रों में इनका व्यापक प्रभाव होता है।
2. प्रकृति उत्पादित:- प्रकृति जन्य स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि प्रदूषण इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इसका प्रभाव तात्कालिक
3. जीव जन्तु उत्पादित:- विभिन्न प्रकार के जंगली जानवरों व पालतू पशुओं द्वारा उत्पन्न ध्वनि प्रदूषण रात में इन जीवों की आवाज से नींद खराब होना।

ध्वनि प्रदूषण:- प्रकार व स्रोत:

- सामान्य प्रभाव:- बोलने में व्यवधान, चिड़चिड़ापन, नींद में व्यवधान तथा इनसे सम्बन्धित प्रभाओं व उससे सम्बन्धित समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। तीव्र शोर के कारण आवश्यक नींद की अवधि भी छोटी हो जाती है। कभी-कभी अधिक चिड़चिड़ापन तथा गुस्से के कारण मस्तिष्क में विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।

- श्रवण सम्बन्धी प्रभाव:- इसके अन्तर्गत विभिन्न तीव्रता वाली ध्वनि तथा शोर के कारण मनुष्यों की श्रवण क्रियाविधि में होने वाली साधारण क्षतियों को सम्मिलित किया जाता है।
- श्रवण क्रियाविधि में अस्थायी तथा साधारण क्षति
- स्थाई क्षति

उच्च तीव्रता वाली ध्वनि सुनने से कान के पर्दे फटने की सम्भावना अधिक हो जाती है। पश्चिमी देशों में शोर के कारण बधिरता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रति चार श्रमिकों में से एक असहाय श्रवण क्षति से पीड़ित होता है। इस प्रकार ध्वनि प्रदूषण के कारण विद्यार्थियों में श्रवण एवं स्मृति क्षीणता, सिरदर्द तथा अध्ययन विमुखता उत्पन्न होती है।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव:- उच्च स्तरीय ध्वनि प्रदूषण के कारण मनुष्यों तथा जानवरों में कई प्रकार के आचार/व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन हो जाते हैं। अवांछित शोर के कारण लोगों में खीझ, झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन, थकान उत्पन्न होने के कारण उनकी कार्यक्षमता में हास हो जाता है तथा कार्य करते समय गलतियाँ अधिक होती हैं। दीर्घ अवधि प्रदूषण के कारण लोगों में Neurotic Mental Disorder हो जाता है। मॉसपेशियों में तनाव व खिंचाव हो जाता है तथा स्नायुओं में उत्तेजना हो जाती है।

शारीरिक प्रभाव:- खीझ, उद्वेग, दुश्चिन्ता, तनाव के कारण मनुष्य के शरीर के हारमोन में परिवर्तन हो सकता है, जिस कारण मानव अनेक प्रकार की विकृतियाँ एवं बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। उच्च रक्तचाप, उत्तेजना, हृदय रोग, आँख की पुतलियों में खिंचाव तथा तनाव, मॉसपेशियों में खिंचाव, पाचन तंत्र में अव्यवस्था, मानसिक तनाव, अल्सर, पेट एवं आँतों का रोग आदि।

विस्फोटों तथा सैनिक बम की अचानक अति उच्च ध्वनि के कारण गर्भवती महिलाओं में गर्भपात भी हो सकता है लगातार शोर में जीवन यापन करने वाली महिलाओं के नवजात शिशुओं में विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

ध्वनि प्रदूषण का नियन्त्रण:-

ध्वनि प्रदूषण को निम्नांकित विधियों से नियन्त्रित कर सकते हैं-

- ध्वनि स्रोत पर नियंत्रण:- शोर जिस यंत्र से निकल रहा है, उस यंत्र को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए जिससे शोर कम हो।
- पौधे तथा वनस्पति:- सड़कों तथा मार्गों पर पौधे लगाने से शोर को कम किया जा सकता है। नीम, पीपल, आम, रोहणी, इमली इत्यादि वृक्ष प्रदूषण को कम करते हैं।

- शोर को फैलने से रोकना:- कमरों, कारखानों की दीवारों में ध्वनि अवशोषक पदार्थों को उपयोग करके शोर को फैलने से रोका जा सकता है। अधिक शोर वाले स्थानों जैसे औद्योगिक संस्थान, एयरपोर्ट पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को कानों के ईयर प्लग्स की सुविधा दी जानी चाहिए।

शिक्षा की भूमिका:- पर्यावरण शिक्षा से युवकों तथा वृद्धों में ध्वनि प्रदूषण की जानकारी तथा उसके दुष्प्रभावों की जानकारी से भी ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है। संचार माध्यमों का उपयोग भी प्रभावी हो सकता है।

प्रबन्ध तथा कानून:- ध्वनि प्रदूषण को वायु प्रदूषण के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया जाता है। इसलिए वायु प्रदूषण के एक्ट तथा कानून, ध्वनि प्रदूषण को रोकने में प्रयुक्त किए जाते हैं।

राज्य स्तर पर मध्य प्रदेश ने संगीत और शोर नियंत्रण अधिनियम 1950 (Control of Music & Noises Act) बिहार सरकार ने ध्वनि विस्तार यंत्र को बजाने पर नियन्त्रण व (Control of The Play of loudspeaker Act, 1955) राजस्थान सरकार ने शोर नियंत्रण अधिनियम 1963 (Noise Control Act, 1963)। ये अधिनियम अभी तक प्रभावशील नहीं हो सका है।

ध्वनि प्रदूषण को कम करने तथा उससे बचने के लिए बड़े स्तर पर बहुत चिन्तन की आवश्यकता है, क्योंकि प्रदूषण के क्षेत्र में धीरे-धीरे जनसाधारण की उपेक्षा पाकर इसमें जाने अनजाने निरन्तर वृद्धि हो रही है।

अभ्यास प्रश्न

प्र० - ध्वनि को मापने की इकाई को क्या कहते हैं?

प्र० - शिक्षा की ध्वनि प्रदूषण को रोकने में भूमिका होती है। (सही/गलत)

प्र० - ध्वनि प्रदूषण को किस कानून के अन्तर्गत शामिल किया जाता है ?

15.12 नाभिकीय प्रदूषण (Nuclear Pollution/Radio active Pollution)

पर्यावरण में कुछ प्रदूषक अदृश्य एवं भारहीन होते हैं। इस प्रदूषकों में से एक रेडियोधर्मी प्रदूषक भी है। यह अन्य प्रदूषणों से भिन्न होता है व अन्य की अपेक्षा हानिकारक भी होता है। इसका प्रभाव स्थल, जल तथा वायु तीनों पर ही पड़ता है।

“ नाभिकीय पदार्थों की क्रियाशीलता द्वारा प्रदूषण को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते हैं”।

मानव ने 20वीं शताब्दी के चौथे दशक में परमाणु युग का विकास किया है। रेडियो धर्मिता की मात्रा में गत चार दशकों में ही अधिक वृद्धि हुई है। अल्फा, बीटा तथा गामा तत्व आयन विकिरण के प्रकार हैं। रेडियो एक्टिव प्रदूषण का प्रभाव सर्वप्रथम जापान देश में अनुभव किया गया। यहाँ अगस्त 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिरोशिमा एवं नागासाकी में परमाणु बम गिराये गए। इसी प्रकार 28 मार्च 1979 को यू.एस.ए. में श्री माइल आइर लैण्ड रियेक्टर की दुर्घटना और 26 अप्रैल 1986 को सोविएत युनियन के चेरनोबिल में स्थित रिएक्टर की दुर्घटना से उत्पन्न विकिरण का प्रभाव दूर क्षेत्रों में देखा गया। इस प्रकार के रेडियो एक्टिव प्रदूषण से मानव, वनस्पति, जीव तथा उनकी खाद्य सामग्री प्रभावित होती है।

रेडियोएक्टिव प्रदूषण के स्रोत:

प्राकृतिक स्रोत व मानवीय स्रोत: प्राकृतिक विकिरण के विभिन्न स्रोत हैं, लेकिन इनके विकिरण को एक निश्चित सीमा ही मानव सहन कर सकता है व इससे अधिक विकिरण प्रदूषण की श्रेणी में रखी जाती है। भूगर्भ में पाये जाने वाले अनेक रेडियो एक्टिव तत्व यूरेनियम, थोरियम, व प्लूटोनियम भी इसके स्रोत हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली एक्सरे मशीन मानवीय स्रोत है।

रेडियोएक्टिव प्रदूषण के प्रभाव:- रेडियोएक्टिव पदार्थ विश्व की सम्पूर्ण सभ्यता मानव जाति, प्राणी जगत, वनस्पति जगत तथा निर्माण कार्यों को पूरी तरह विध्वंस करने की क्षमता रखता है। इसके तत्कालिक व भावी प्रभाव भी बड़े भयंकर होते हैं।

- जीन एवं गुणसूत्रों के लक्षणों में परिवर्तन हो जाता है, परिणाम स्वरूप बच्चे अपंग पैदा होते हैं।
- इससे त्वचा, खून के कण, हड्डियों में स्थित मज्जा, सिर के बालों का गिरना, शरीर से रक्त की कमी, कैंसर आदि घातक बीमारियाँ हो जाती हैं।
- गर्भस्थ अवस्था में शिशुओं की मृत्यु हो सकती है।
- परमाणु विस्फोट से जल प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण होता है।
- परमाणु भट्टियों के रिसाव से रेडियोधर्मी प्रदूषण होता है।
- नेत्र ज्योति कम होना या तन्त्र सम्बन्धी विभिन्न रोग होना।
- हाइड्रोजन बम के विस्फोट से CO_2 बनती है, जो बादलों के साथ जहाँ भी जाएगी वहाँ पाँच वर्ष तक के लिए सब कुछ नष्ट हो जाता है।

रेडियोएक्टिव प्रदूषण की रोकथाम के उपाय:-

निम्न उपायों द्वारा रेडियोएक्टिव प्रदूषण को रोका अथवा कम किया जा सकता है:-

- रेडियोधर्मी तत्वों का प्रयोग सैनिक व युद्ध उद्देश्यों के लिए पूर्ण प्रतिबन्धित होना चाहिए।
- समय-समय पर प्राकृतिक पर्यावरण में परमाणु विकिरण एवं प्रदूषण की जाँच करना आवश्यक है।
- रेडियोधर्मी प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए वैज्ञानिकों को सतत् शोध कार्य में लीन रहना चाहिए।
- परमाणु बिजलीघर में विसर्जन को दबाने के लिए सुरक्षित स्थान बनाये जाये जहाँ से इसके विकिरण को रोका जा सके।
- भूमिगत, वायुमण्डल और जलमण्डल में परमाणु बमों के परीक्षण पर रोक लगाकर अन्तराष्ट्रीय कानून बनाए जाए।
- परमाणु बम तथा अन्य नाभिकीय बमों के निर्माण पर रोक लगाई जाए।
- रेडियोधर्मी तत्वों का प्रयोग शान्ति, आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए किया जाना चाहिए।

15.13 मृदा प्रदूषण/भूमि प्रदूषण (Soil Pollution/Land Pollution)

भूमि पर्यावरण का महत्वपूर्ण पक्ष है। यह भोजन, वनस्पति प्राकृतिक श्रोत्रों का प्रमुख साधन है। जब मिट्टी में अधिक रासायनिक पदार्थों, खादों व कीटनाशक दवाओं का उपयोग होने से भूमि प्रदूषण होता है। (The contamination of soil with excess of chemicals, fertilizers, insecticides, and herbicides is known as soil pollution.)

मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट प्राकृतिक तथा मानवीय क्रियाओं में होती है। मिट्टी प्रदूषण, भूमिक्षरण से होते हैं। इससे मिट्टी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है आर्द्रता तथा ह्यूमस पदार्थ कम हो जाता है तथा तापमान में उतार चढ़ाव अधिक रहता है।

भूमि प्रदूषण के स्रोत:

भूमि प्रदूषण के प्रमुख स्रोत जनसंख्या की वृद्धि है, इस कारण भूमि का सही ढंग से उपयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि कृषि योग्य भूमि पर दबाव निरन्तर बढ़ रहा है।

1. प्रति वर्ष लाखों हेक्टेयर भूमि का ऊपरी सतह वर्षा के जल से या बाढ़ से बह जाती है।
2. जल और वायु से भूमि क्षरण निरन्तर हो रहा है।
3. रासायनिक खादों तथा कीटाणुनाशक दवाइयों से भूमि प्रदूषित हो रही है।

4. मवेशी तथा अन्य जानवरों द्वारा चराने हेतु भूमि क्षेत्र में चारागाहों का विकास।
5. भूमि का एक बहुत बड़ा भाग अन्य कार्यों में प्रयोग हो रहा है, जैसे मकानों के लिए ईंटों के बनाने में मिट्टी का उपयोग।
6. बढ़ती जनसंख्या के कारण सड़कें विविध आवासीय कालोनियों, जनहित हेतु अस्पताल, पोस्ट ऑफिस अथवा अन्य विभागों हेतु भवन निर्माण।
7. सुविधा हेतु एयरपोर्ट, बस अड्डे/अन्य संचार कार्यों हेतु भूमि का आवंटन होगा।
8. खनन कार्य हेतु पट्टों का वितरण।

मृदा प्रदूषण के स्रोत:

प्राकृतिक स्रोत- वायु, मृदा अपरदन और नदी बाढ़।

मानव जन्य स्रोत- औद्योगिक अपशिष्ट, जैविक स्रोत, रासायनिक उर्वरक व कीटनाशी दवाएं नगरीय वहिःश्राव और आणविक परीक्षण।

जैविक स्रोत- जे0सी0 में हता के अनुसार मिट्टी को प्रदूषित करने वाले जैविक स्रोत निम्नांकित हैं-

रोग उत्पादक जीवाणु:- मानव मल मूत्र से मिट्टी में उत्पन्न होकर पुनः मानव शरीर में पहुँच जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं।

- मिट्टी में स्वयं रोगोत्पादक जीवाणु होते हैं।
- ऑत सम्बन्धी जीवाणु और प्रोटोजोआ जीवाणु मानव मल के उत्सर्जन के बाद मिट्टी में मिल जाते हैं व मानव को हानि पहुँचाते हैं।
- रासायनिक दवाएं एवं अपशिष्ट।
- नगरीय वहिस्राव
- आणविक परीक्षण
- औद्योगिक अपशिष्ट

भूमि प्रदूषण: दुष्प्रभाव:

- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मिट्टी प्रदूषक मिट्टी में पहुँचकर भोजन श्रृंखला के माध्यम से मानव शरीर में पहुँचते हैं, जिससे अनेक लोग रोगग्रस्त होकर मर जाते हैं। प्रतिवर्ष 5 लाख व्यक्ति जैवनाशी दवाओं के प्रभाव में आकर मर जाते हैं।

- मिट्टी की गुणवत्ता में कमी।
- मिट्टी की उपजाऊ क्षमता कम हो जाती है, जिससे कृषि उत्पादन में कमी आती है।
- उत्पादित खाद्यान व साग सब्जियाँ भी प्रदूषित मिट्टी में प्रदूषित हो जाती है, जिसको खाने से मानव शरीर में कई रोग हो जाते हैं।
- रासायनिक उर्वरकों व जैवनाशी रसायनों के अधिक प्रयोग के कारण ऊसर व बंजर भूमि का विस्तार होता है।
- कृषि फार्मों के जीव जन्तु जैवनाशी रसायनों के छिड़काव से मर जाते हैं जिससे कृषि फार्म पारिस्थितिकी तंत्र अस्थिर हो जाता है।

भूमि प्रदूषण नियन्त्रण:

- खेतों में जलजमाव की व्यवस्था
- मृदा अपरदन को रोकना चाहिए।
- डी0डी0टी0 के प्रयोग पर प्रतिबन्ध।
- रासायनिक उर्वरकों व जैवनाशी रसायनों का विवेकपूर्ण उपयोग करना चाहिए।
- सिंचाई के लिए शोधन के पश्चात औद्योगिक वहिस्राव का उपयोग करना चाहिए।
- कृषि में फसल चक्र अपनाकर मिट्टी की गुणवत्ता को वृद्धि करके मिट्टी प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
- कृषकों में इसके सम्बन्ध में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए।
- कृषि भूमि का संतुलित उपयोग किया जाना चाहिए।
- शोध कार्यों को मिट्टी प्रदूषण रोकने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- नगरों के वाहित मल को सिंचाई के लिए उपयोग शोधन करने के पश्चात करना चाहिए।

5.14 ठोस अपशिष्ट प्रदूषण (Solid Waste Pollution)

ठोस अपशिष्ट प्रदूषण एक विकट समस्या है। घरों से, गलियों से, कारखानों से, कृषि कार्यों से, छोटे तथा बड़े उद्योगों से कार्यालयों से प्रतिदिन टनों कूड़ा करकट बाहर निकाला जाता है। हम सभी इसको बाहर फेंक देते हैं।

ठोस अपशिष्ट पदार्थ से तात्पर्य उस कूड़े करकट से है, जो मानव द्वारा परित्यक्त पदार्थ के कारण मल मूत्र तथा कूड़ा करकट इतना सड़कों पर एकत्रित हो जाता है कि नगर प्रशासकों के लिए इसको उपयुक्त स्थान पर एकत्रित करना मुश्किल होता जा रहा है।

नगरिकों के दैनिक उपयोग की सामग्री जैसे डिब्बे, पालिथीन की थैलियों, भवन निर्माण के फलस्वरूप उत्पन्न मलवा, कूड़ा, करकट, जूते, चप्पल, टूटे फूटे बरतन, मकानों व उद्योगों का कूड़ा करकट, मल मूत्र विसर्जन इत्यादि ठोस अपशिष्ट कहलाते हैं।

कूड़े करकट का वर्गीकरण:

- घरेलू अपशिष्ट पदार्थ:- रसोईघर, सब्जियों के छिलके, कतरने, पैकिंग पदार्थ, कपड़े तथा अनावश्यक सामान तथा विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ प्रतिदिन गलियों में फेंके जाते हैं।
- व्यापारिक कूड़ा करकट- 1. स्थाई बाजारों से उत्पन्न कचरा
- 2. में ले प्रदर्शनी तथा अस्थायी बाजार से उत्पन्न कचरा
- 3. सड़कों व गलियों में पड़ा कूड़ा करकट।
- कृषि सम्बन्धी कूड़ा करकट:- ग्रामीण क्षेत्रों में खेतों में फसल काटने के बाद विखरा कूड़ा करकट भी इसका प्रमुख कारण है, जिसमें या तो कृषक आग लगा देते हैं या सड़ने से लिए छोड़ दिया जाता है।
- औद्योगिक कूड़ा करकट:- 1. ताप शक्ति गृहों में उत्पन्न कचरा।

2. भारी उद्योगों से उत्पन्न कचरा

3. नाभिकीय संयंत्रों से पैदा हुआ कचरा

औद्योगिक कचरों की मात्रा उद्योगों के उत्पादन तथा उद्योगों के प्रकार पर निर्भर रहती है।

मलमूत्र सम्बन्धी कूड़ा करकट:- नगरों में कुछ लोग गाय भैंस तथा मुर्गी पालते हैं। इनको मलमूत्र की निकासी भी एक समस्या होती है।

ठोस अपशिष्ट प्रदूषण को रोकने के उपाय:-

विशेषतः नगरीय क्षेत्र में कूड़ा करकट उठाना, उसके रखरखाव व उसका उपयोग एक विकट समस्या है। कूड़े करकट के उचित प्रबन्ध के लिए निम्नलिखित उपाय है।

1. **कूड़े करकट को जलाना:** परन्तु ऐसा करके पर्यावरण प्रदूषण का दूसरा रूप धुंआ व राख द्वारा पैदा होता है व साथ ही कॉच, लोहा जैसे कठोर पदार्थ जिनको जलाया नहीं जा सकता, इनकी समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है।
2. **गहरे गड्ढों को भरना:** नगरों के निकट ईंट भट्टों में ईंट आदि के निर्माण के लिए खोदी गई खाई के अन्दर की इस कूड़े करकट को डालकर समतल किया जा सकता है।
3. **खाद तैयार करना:** कूड़े करकट में काफी भाग जैविकीय पदार्थ पत्तियाँ, पौधों के अवशेष व अन्य पदार्थ होते हैं, इन्हें दबाकर तथा सड़ाकर खाद तैयार किया जा सकता है।
4. **कचरा घर:-** कूड़े करकट को एक स्थान पर एकत्रित कर फिर ट्रकों या अन्य साधनों से नगर के बाहर भेजना चाहिए। घरों में भी कूड़ादान होना चाहिए, जिससे कि कचरा गलियों में न बिखरा रहे।
5. **पुनः उपयोग में लाना:** कचरे के अनेक पदार्थ जैसे कागज, गत्ता, प्लास्टिक लोहा आदि को पुनः उपयोग में लाने का प्रयास करना चाहिए।

15.15 सारांश

इस प्रकार हम भली भाँति समझ सकते हैं कि प्रदूषण चाहे वह जल, वायु, मृदा या अन्य किसी प्रकार का हो वह मानव तथा पर्यावरण तथा वनस्पतियों के लिए हानिकारक ही साबित होता है। शनैः शनैः मानव के जागरूक होने से प्रदूषण में कमी जरूर आई है व जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण यह समस्या अभी तक पूर्णतया समाप्त नहीं हो पाई है। इसके लिए हमें स्वयं को इसके प्रति जागरूक करना चाहिए तथा लोगों को भी इसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी देनी चाहिए ताकि वे भी इसके परिणामों के बारे में चिन्तन कर इसके प्रति सचेत रहे।

शिक्षा की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है, शिक्षा के द्वारा विभिन्न स्तर पर छात्र छात्राओं को विभिन्न स्तर पर छात्र छात्राओं को विभिन्न क्रिया कलाओं द्वारा पर्यावरण संरक्षण की जानकारी प्रदान की जा सकती है जो पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

इस प्रकार मानव को पर्यावरण के प्रति सचेत रहकर उसको पुनः पल्लवित करते का प्रयास करना होगा तभी मानव का जीवन भी सन्तुलित हो सकेगा।

15.16 शब्दावली

पर्यावरण प्रदूषण: पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति |

ठोस अपशिष्ट पदार्थ : ठोस अपशिष्ट पदार्थ से तात्पर्य उस कूड़े करकट से है, जिसमें मानव द्वारा परित्यक्त पदार्थ यथा मल मूत्र व अन्य प्रदूषक पदार्थ शामिल होता है।

भूमि प्रदूषण: जब मिट्टी में अधिक रासायनिक पदार्थों, खादों व कीटनाशक दवाओं का उपयोग होता है तो भूमि प्रदूषण की स्थिति कहलाती है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण: नाभिकीय पदार्थों की क्रियाशीलता द्वारा प्रदूषण को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते हैं।

ध्वनि प्रदूषण: अवांछनीय ध्वनि जोकि मानवीय सुविधाओं, स्वास्थ्य तथा गतिशीलता में हस्तक्षेप करती है/प्रभावित करती है, ध्वनि प्रदूषण कहलाती है।

जल प्रदूषण: मानव क्रियाकलापों/प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा जल के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन को जल प्रदूषण कहते हैं।

वायु प्रदूषण: वायु में ऐसे बाह्य तत्व की उपस्थिति जो मानव के स्वास्थ्य तथा कल्याण हेतु हानिकारक हो, वायु प्रदूषण कहलाती है।

15.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -I

1. परि तथा आवरण 2. क 3. सही 4. भौतिक पर्यावरण, सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण तथा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण

15.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. डा० कमला वशिष्ठ, “ पर्यावरण शिक्षण” यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा० लि० (जयपुर)
2. डा० रेणु त्रिपाठी, “पर्यावरण भूगोल” ओमें गा पब्लिकेशन्स (दिल्ली)
3. डा० यू०सी० गुप्ता, “पर्यावरण शिक्षण” के.एस.के. पब्लिशर्स व डिस्ट्रीब्यूटर्स
4. डा० उमा सिंह, “पर्यावरण शिक्षा” अग्रवाल पब्लिकेशन्स
5. डा० आर०ए० शर्मा, “पर्यावरण शिक्षा” आर० लाल बुक डिपो में रठ

15.19 निबंधात्मक प्रश्न :

1. पर्यावरण की परिभाषा तथा विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए ?
2. “शिक्षा की पर्यावरण संरक्षण में क्या भूमिका है”। इस कथन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

3. नाभिकीय प्रदूषण किसे कहते हैं ? वर्तमान में इसके द्वारा पर्यावरण को किस प्रकार से प्रभावित किया जा रहा है ? विवेचना कीजिए ?
4. पर्यावरण प्रदूषण किसे कहते हैं ? सभी प्रकार के प्रदूषण का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा इसको किस प्रकार से नियन्त्रित किया जा सकता है। स्पष्ट कीजिए।

इकाई 16: पर्यावरण संरक्षण की विधियां व कार्यक्रम (Methods and Programmes for Environmental Conservation)

इकाई की रूपरेखा

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 पर्यावरण संरक्षण का अर्थ
- 16.4 पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य
- 16.5 पर्यावरण संरक्षण की विधियां
 - 16.5.1 ऊर्जा संरक्षण
 - 16.5.2 वन संरक्षण
 - 16.5.3 मृदा संरक्षण
 - 16.5.4 जल संरक्षण
- 16.6 पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम
- 16.7 पर्यावरण संरक्षण हेतु क्रियाकलाप
- 16.8 सारांश
- 16.9 शब्दावली
- 16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 16.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पर्यावरण संरक्षण जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि हमारे चारों ओर के वातावरण को दूषित होने से बचाना पर्यावरण को सुरक्षित रखने से है। पर्यावरण संरक्षण की समस्या आज अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है जो कि धीरे-धीरे विकट रूप धारण कर रही है। इस समस्या को हल करने तथा विश्व का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जून 1972 में स्टॉकहोम में मानवीय पर्यावरण सम्मेलन आहूत किया गया था। तभी से प्रतिवर्ष 5 जून को पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। जिसका मुख्य उद्देश्य है- “मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए वैश्विक स्तर पर समुचित कदम उठाना।” इस सम्मेलन में प्रतिवर्ष बढ़ते हुए पृथ्वी के तापमान, खिसकते हुए ग्लेशियरों, वनों का हो रहा अंधाधुंध अवैध कटान, तीव्रगति से होता औद्योगीकरण, पहाड़ों एवं चट्टानों की दिन प्रतिदिन होती खुदाई एवं तीव्रगति से हो रहे जनसंख्या विस्फोट जैसी बढ़ती हुई पर्यावरण की समस्याओं पर चिन्ता व्यक्त की जाती है। वन तो क्षेत्रीय स्तर पर पूरी जलवायु का नियन्त्रण करते हैं तथा मिट्टी को बनाए रखने एवं उसके संरक्षण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वन विनाश के कारण जैविक विविधता धीरे-2 लुप्त होती जा रही है। वनों पर आधारित समाज में बेचैनी उत्पन्न हो रही है। प्राकृतिक आपदाएं, सूखा, बाढ़, भूक्षरण एवं भूस्खलन की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। पृथ्वी पर रेगिस्तान का विस्तार बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ रहा है। ग्रामीण लोग अकाल, गरीबी और भुखमरी से त्रस्त हैं। पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। ये सभी समस्याएं पर्यावरण से जुड़ी हुई हैं अतः इसका संरक्षण अति आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप पर्यावरण संरक्षण से सम्बंधित पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप -

- पर्यावरण संरक्षण का अर्थ बता सकेंगे।
- पर्यावरण संरक्षण का उद्देश्य स्पष्ट कर सकेंगे।
- ऊर्जा संरक्षण के पक्ष तथा घटकों का वर्णन कर सकेंगे।
- जल संरक्षण के उपायों को बतला सकेंगे।
- वन संरक्षण के उपायों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मृदा संरक्षण के उपायों का वर्णन कर सकेंगे।

16.3 पर्यावरण संरक्षण का अर्थ

पर्यावरण से तात्पर्य सम्पूर्ण वायु, जल तथा भूमि से होता है। सम्पूर्ण प्रकृति में जैविक एवं भौतिक पर्यावरण के सभी अंशों के उचित मात्रा में रहने से प्रकृति अपना कार्य सन्तुलित ढंग से करती है। जिसे हम सन्तुलित पर्यावरण का एक आवश्यक अंग मानते हैं। जब इन अंगों के विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा विभिन्न तत्वों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तो पर्यावरण में भी असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तो पर्यावरण में भी असन्तुलन हो जाता है। पर्यावरण की निश्चित एवं स्थिर अवस्थाओं में परिवर्तन को ही पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं।

पर्यावरण संरक्षण की मुख्य भूमिका प्राकृतिक एवं जैविक वातावरण का इस प्रकार प्रयोग करना है जिससे पर्यावरण पर कम दबाव डालते हुए मनुष्य के गुणात्मक जीवन स्तर के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध हो तथा उनकी अनवरत आपूर्ति बनी रहे। अतएव पर्यावरण संरक्षण का सिद्धान्त प्राकृतिक संसाधन, आधार एवं जनसंख्या एवं मानव जीवन स्तर के मध्य सन्तुलित समायोजन एवं अनुकूलन का प्रतिपादन करता है। ज्ञात है कि मानव सभ्यता की प्रगति तथा प्रत्येक मनुष्य के लिए संतोषजनक जीवन स्तर पर्यावरण के अंधाधुंध शोषण पर अधिक दिन तक नहीं टिक सकता। वस्तुतः प्राकृतिक संसाधन पूंजी के समान है जिसका सुनियोजित ढंग से समुचित लाभ के समान है जिसका विनियोग होना चाहिए। संरक्षण संसाधन का अनुत्पादक संचय नहीं वरन् सतत् उत्पादन के लिए विवेकपूर्ण उपयोग है।

वनों के संरक्षण एवं अवैध कटान को रोकने के लिए 1974 में गौरा देवी एवं सुन्दरलाल बहुगुणा ने चिपको आन्दोलन चलाया था तथा पेड़ों से चिपककर अपनी जान की परवाह किए बिना ठेकेदारों की कुल्हाड़ी का सामना किया था।

अमें रिकी राष्ट्रपति ने 1980 में विश्व 2000 नामक एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें कहा था कि “यदि पर्यावरण प्रदूषण को नियन्त्रित नहीं किया गया तो। सन् 2030 ई0 तक तेजाबी वर्षा, भुखमरी और महामारी का ताण्डव नृत्य होगा और मानवता का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा। जैसा कि पिछले कुछ वर्षों में देखा गया है कि भयंकर बाढ़, भू-क्षरण के कारण हजारों लोग बेकार एवं करोड़ों लोगों के जान-माल की क्षति हो जाती है। 1972 में कोयना, चमोली में हुए भू-स्खलन एवं बाढ़, 20 अक्टूबर, 1991 में उत्तरकाशी में भूकम्प, 29 मार्च 1994 में चमोली में भूकम्प, 26 जनवरी, 2001 में भूज (गुजरात) में आया भूकम्प और 26 दिसम्बर, 2004 को आया सुनामी 14 दिसम्बर, 2005 में सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में 2006 में पिथौरागढ़ में भूकम्प इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ये सब पर्यावरण के साथ मानव द्वारा किए गए अनियमित छेड़छाड़ का ही नतीजा है।

सन् 1920 में भूगर्भ वैज्ञानिकों ने संसार के तेल भण्डारों का अनुमान लगाते हुए उसकी मात्रा 60,000 लाख टन आंकी थी परन्तु आज कहा जाने लगा है कि 600,000 लाख टन का

उपयोग कर लेने के बाद भी ज्ञात तेल मण्डल में 870,000 लाख टन तेल के भण्डार बचे हुए हैं। अज्ञात हौजों की खोज की जा सकती है। उनमें 1,500,000 लाख टन तेल और भी मिलने की संभावना है।

प्राकृतिक खनिज गैसों के विषय में भी इसी प्रकार की आशावादी अभिव्यक्तियां की गई हैं। एक अंदाजा यह है कि हम लोग लगभग 200,000 लाख टन गैस का अब तक उपयोग कर चुके हैं। सुरक्षित भण्डारों में 1,80,000 लाख टन से 4,00,000 लाख टन गैस अब भी मौजूद हैं।

इस सबका निष्कर्ष यह है कि वायु, जल, मिट्टी, वनस्पति, जीव-जन्तु तथा आकाशीय रिशतों में सन्तुलन स्थापित करने हेतु किया गया कार्य नैतिक मूल्यों पर खरा उतरता है जबकि अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु प्रकृति के सन्तुलन को विध्वंस करना अनैतिक कार्य है। मनुष्य विश्व का सबसे अधिक चिन्तनशील एवं प्रकृति की अनूठी शान है। प्रकृति ने जीव-जन्तुओं, वनस्पति, नदी, पहाड़, वायु, जल, खनिज-सम्पदा आदि की रचना की है। मानव समाज का यह पावन कर्तव्य है कि प्रकृति की विविध आयामी देन का विवेकसम्मत सन्तुलित उपयोग करता हुआ हमारे समाज एवं राष्ट्र के भौतिक, आध्यात्मिक विकास में योगानुकूल अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाए।

16.4 पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य:

मनुष्य एक बुद्धिजीवी प्राणी होने के नाते उससे आशा की जाती है कि वह प्राकृतिक साधनों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप संतुलित करके और उनके वैकल्पिक साधनों को ढूँढ़े कि प्राकृतिक साधन न नष्ट होने पाएं और परिस्थितिकी का संतुलन भी बना रहे। मानव की आवश्यकताओं, प्राकृतिक दोहन की क्षमताओं और पर्यावरण के बीच समायोजन होना आवश्यक है। अतः शालाओं में मानव एवं पर्यावरण के महत्व को समझते हुए उन दोनों में सामंजस्य किया जाना चाहिए, क्योंकि कि इन दोनों को एक व्यवस्था में रखकर ही खुशहाल रहा जा सकता है।

अतः शुद्ध पर्यावरण को बनाए रखने के लिए निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करनी होगी-

1. परितंत्र को संतुलित बनाए रखने के उद्देश्य से विभिन्न जीवों एवं पेड़-पौधों का पर्यावरण में बना रहना उपादेय है-इसका अवबोध करवाना।
2. मानव एवं प्राकृतिक साधनों की एक-दूसरे पर निर्भरता का ज्ञान कराना।
3. प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से भविष्य में इन संसाधनों के समाप्त प्रायः हो जाने की आशंका से छात्रों को अवगत कराना।
4. प्रकृति के पास तथा प्रकृति से अलग रहने से व्यक्तियों को होने वाले लाभ तथा हानि के सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक ढंग से छात्रों को अवगत कराना।

5. परिस्थितिकी तंत्र को एक इकाई मानते हुए इसके तत्वों के पारस्परिक अंतर्संबंध को अक्षुण्ण रखना। किसी एक तत्व को विनष्ट करने का प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है। जैसे-यदि किसी वन को काटकर साफ कर दिया जाए तो मिट्टी का अपरदन भी बढ़ जाएगा एवं जल के प्रवाह में अनियमितता आ जाएगी। इसका प्रभाव कृषि की उत्पादका पर पड़ेगा और पूरा अर्थतंत्र को प्रभावित होगा।

6. जिन तत्वों को परिवर्धित या समुन्नत किया जा सकता है, उसको बढ़ाने का प्रयत्न होना चाहिए। जैसे मिट्टी में उचित फसल चक्र अपनाकर तथा उर्वरक की आर्पूति करके उससे अधिक समय तक अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

7. ऐसे संसाधनों का उपयोग करना चाहिए जो सतत् एवं नव्यकरणीय हो। कोयला, पेट्रोल, जैसे ऊर्जा स्रोतों के स्थान पर जल विद्युत, सौर ऊर्जा का उपयोग श्रेयस्कर है।

8. किसी भी क्षेत्रीय इकाई, जैसे देश, राज्य, विकास खण्ड में संसाधनों का पूर्ण लेखा-जोखा निरन्तर करते रहना चाहिए। उसी प्रकार वातावरण के किन तत्वों का हास हो रहा है, इस पर सदैव नजर रखना चाहिए। जैसे, किसी क्षेत्र में वनों एवं वृक्षों के बरोक-टोक कटान अथवा मिट्टी में निर्बाध अपरदन या भूमिगत जल के असीमित निष्कर्षण से दूरगामी कुपरिणाम होने की संभावना रहती है।

9. पर्यावरण में विभिन्न तत्वों के अत्यधिक मात्रा में संसाधन दोहन से हास या सक्रियता में कमी से बचाने के लिए विभिन्न पदार्थों का अधिकाधिक पुनर्चक्रण करना। पुनर्चक्रण द्वारा जैव भू-रासायनिक चक्रों की सक्रियता एवं क्षमता बढ़ायी जा सकती है जिससे संसाधनों में अभिवृद्धि होती है।

10. अधिक आवश्यक परन्तु सीमित मात्रा में पाये जाने वाले पदार्थों के विकल्प ढूँढने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान करने का सतत् प्रयास होना चाहिए। उदाहरण के लिए घरेलू ईंधन के लिए कम लकड़ी का उपयोग अथवा उसके स्थान पर बायोगैस का उपयोग करने हेतु उपयुक्त चूल्हे या संयंत्रों के निर्माण की चेष्टा करना श्रेयस्कर है।

16.5 पर्यावरण संरक्षण की विधियां

प्रत्येक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण हेतु उसकी क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक जैविक पर्यावरण में सुलभता तथा पारिस्थितिकी तंत्र की सक्रियता में भूमिका के अनुरूप विशिष्ट संरक्षण विधियों को अपनाने की आवश्यकता होती है। पारिस्थितिकी में ऊर्जा, वन, जल तथा मिट्टी का विशेष महत्व है। इनसे सम्बन्धित सामान्य संरक्षण विधियां निम्नलिखित हैं-

16.5.1 ऊर्जा संरक्षण:

ऊर्जा प्रवाह पारिस्थितिकी तंत्र का मूलाधार है। ऊर्जा प्रवाह से भोजन श्रृंखला संचालित होती है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार के प्राणी आबद्ध होते हैं। मनुष्य ने ऊर्जा पर नियंत्रण करके ही प्राविधिकी का विकास किया है। प्राविधिकी के सहारे मनुष्य प्राकृतिक, जैविक पर्यावरण से विभिन्न प्रकार के संसाधन प्राप्त करता है। यही संसाधन आधुनिक उपभोग परक संस्कृति की नींव है। इस प्रक्रिया में मनुष्य स्वाभाविक रूप से प्राप्त सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा के अतिरिक्त करोड़ों वर्षों से संचित पुरा जैव ऊर्जा पर अधिकाधिक निर्भर हुआ है। परन्तु इस प्रक्रिया में वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण की समस्याएं प्रकट हुई हैं जो दिनोदिन विकट होती जा रही हैं। अतएव प्रहद पारिस्थितिकी तंत्र की सक्रियता बनाए रखने और ऊर्जा संकट से बचने के लिए ऊर्जा संरक्षण की आवश्यकता है। ऊर्जा संरक्षण की प्रमुख विधियां अग्रलिखित हैं-

वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग- पुराजैविक इंधन अर्थात् कोयला, पेट्रोल, जो संचित मात्रा में उपलब्ध है के स्थान पर यथासंभव वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग करना नव्यकरणीय हो सकते हैं जिनसे निरन्तर ऊर्जा प्राप्त हो सकती है ऐसे स्रोत सौर ऊर्जा, जल, पवन, समुद्री लहरें एवं ज्वार, बायोगैस आदि हो सकते हैं। इनसे प्राप्त ऊर्जा न सिर्फ पुरा जैव स्रोतों पर निर्भरता कम करेगी वरन् इनसे प्रदूषण की समस्याएं भी कम होगी। साथ ही पुरा जैव इंधनों को खोदने, निकालने, ढोने, साफ करने से होने वाला व्यय एवं क्षय तथा प्रदूषण भी कम होगा।

गुणात्मक समुन्नति- जिन निम्नकोटि के कोयला या पेट्रोल स्रोतों को आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी मानकर छोड़ दिया जाता है ऐसे ऊर्जा स्रोतों को समुन्नत करके उपयोगी बनाया जा सकता है। जैसे- घटिया किस्म के भूरे कोयले से विद्युत उत्पादन करके विद्युत का परिष्ण किया जा सकता है।

अपशिष्टीकरण में कमी- भारी मात्रा में निकले अवशिष्ट पदार्थ जैसे-कोयला खोदने में कोयला के साथ भारी मात्रा में अन्य बेकार चट्टाने आदि खोद ली जाती है। इसके धरातल पर ढेर जमा हो जाने से कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इस मलबे का निस्तारण करना कठिन होता है। इस ढेर से उपयोगी भूमि भी बेकार हो जाती है। इससे विभिन्न प्रकार के अवांछित पदार्थ एवं गैसों वर्षा के साथ जल में मिलकर जल प्रदूषण फैलाती हैं।

क्षेत्रीय ऊर्जा विकास एवं उपयोग प्रतिरूप- जहां भी किसी देश में प्राकृतिक आर्थिक क्षेत्रीय विभिन्नता पाई जाती है सर्वत्र एक ही ऊर्जा का उपयोग तक्रसंगत नहीं है। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां जल विद्युत उत्पादन के अच्छे अवसर हैं, परन्तु पुरा जैव ईंधन का अभाव है जल विद्युत का अधिक विकास एवं उपयोग होना चाहिए। इसके विपरीत मैदानी क्षेत्रों में जहां कृषिगत अवशिष्ट पदार्थों एवं गोबर की अधिकता है बायोगैस पर अधिक निर्भरता होनी चाहिए। समुद्र तटीय क्षेत्रों में जहां वायु प्रायः वेग से चलती है अथवा समुद्री लहरों एवं खाद से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है, जैव स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा बड़े कारखानों या उपभोक्ताओं तक ही सीमित होना चाहिए। वास्तव में ऊर्जा उत्पादन

उपयोग प्रतिरूप ऊर्जा उत्पादन की क्षेत्रीय दशाओं, संभावनाओं एवं आवश्यकताओं ने अनुरूप होना चाहिए।

विवेकपूर्ण उपयोग- जो संचित ऊर्जा स्रोत सीमित मात्रा में है उनका अन्य विकल्प उपलब्ध न हो। उदाहरणार्थ-भारत में पेट्रोल का अभाव है। कुल मांग (लगभग 6 करोड़ टन वार्षिक) का लगभग आधा ही देश में उत्पादित होता है। परिवहन साधनों जैसे वायुयान, मोटरगाड़ियां तथा शिलक्षणक के लिए इसका कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है। अतएव पेट्रोल का उपयोग इन्ही कार्यों के लिए होना चाहिए।

16.5.2 वन संरक्षण:

पारिस्थितिकी तंत्र के सुचारू संचालन में वनों की विशिष्ट भूमिका है। वन ही जल एवं कार्बन चक्रों को जिनकी पारिस्थितिकी तंत्र की क्रियाशीलता में विशेष भूमिका है नियमित करते हैं। आश्चर्य नहीं कि वनों के समाप्त होने से अनेक पारिस्थितिकीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जिनका व्यापकदूरगामी दुष्परिणाम होता है। अतएव वन संरक्षण अनिवार्य है। वन संरक्षण की निम्न प्रमुख विधियां हैं-

1. वन संरक्षण का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कदम वनों की सुरक्षा है। वनों को सर्वाधिक खतरा आग लगने-फैलने से होता है। वनों में आग मनुष्यों द्वारा असावधानी बरतने एवं शुष्क मौसम में लगने की संभावना रहती है। अतएव वनों में आग लगने एवं फैलने से बचाने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। जैसे-वनों के भीतर ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे आग लगने का खतरा उत्पन्न हो। साथ ही ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिए जिससे लगी आग पर शीघ्र ही नियंत्रण पाया जा सके। इसके लिए वनों के बीच स्थान-स्थान पर निरीक्षण ग्रह होने चाहिए जहां अग्निशमक उपकरण एवं उत्पादन की व्यवस्था तथा चौकीदारों की तैनाती रहे। ऐसे निरीक्षण ग्रहों के बीच परस्पर संचार के माध्यम उपलब्ध होने चाहिए। जब वन सूखा हो उस समय अधिक देख-रेख की आवश्यकता होती है। प्रायः हेलीकॉप्टरों द्वारा निरीक्षण तथा रेडियो सम्पर्क होना आवश्यक है। वनों के बीच-बीच में अग्निरक्षा पथ तथा अग्नि अवरोधक पथ बनाये जाने चाहिए।

2. वनों की सबसे बड़ी समस्या अत्यधिक वृक्ष कटाव है। इस कटाव का कारण आर्थिक लाभ, विशेषकर विदेशी मुद्रा प्राप्ति के लिए, बड़ी कम्पनियों एवं ठेकेदारों को वनों की नीलामी है। अतएव वन संरक्षण का सर्वाधिक कदम चयनात्मक कटाई तथा संयुक्त उत्पादन विधि को अपनाना है। चयनात्मक कटाई द्वारा परिपक्व एवं रूग्ण को काटा जाता है। कभी-कभी वनों की सघनता कम करने के लिए भी बीच के वृक्षों को निकालना होता है ताकि शेष पेड़ स्वस्थ रह सकें तथा पूर्णरूपेण विकसित हो। इस प्रकार की कटाई को स्वास्थ्यकर कटाई कहते हैं। वृक्षों को काटने निकालने की ऐसी प्रक्रिया जिससे वन के वृक्ष एवं वनस्पति स्वस्थ दशा में वन संरक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।

3. वनों का उन्मूलन बहुत बड़े पैमाने पर फसल उत्पादन या पशु पालन हेतु कृषि क्षेत्र में विस्तार के लिए किया जा रहा है। विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा वनों का कटाव रोकना अनिवार्य है। इसके लिए साधन रहित निर्धन लोगों को रोजगार के वैकल्पिक साधन उपलब्ध कराना आवश्यक होगा ताकि वे झूमिंग पद्धति से अनार्थिक कृषि करने को प्रवृत्त न हो।

4. अब वनों से संघृत उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर प्राकृतिक वनों को काटकर व्यापारिक वन लगाए जा रहे हैं जैसे-यूकेलिप्टस अथवा चीड़ जिनमें जैविक विविधता नहीं मिलती है और पारिस्थितिकी दृष्टि से ये हानिकारक है। अतः दीर्घकालीन नीति के रूप में वन क्षेत्र में स्थानीय प्राकृतिक रूप से उगने वाली वनस्पतियों को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। पारिस्थितिकी विविधतापूर्ण वनों को एकरूपतापूर्ण वनों से अधिक प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

5. यथासम्भव वन प्रान्तर के निकट वायु प्रदूषण उत्पन्न करने वाली गैसों, वायुमण्डल में जलने वाले कारखानों विशेषकर सल्फर-डाई-ऑक्साइड (CO₂) और नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO₂) छोड़ने वाले कारखाने नहीं स्थापित किए जाने चाहिए क्योंकि इनसे निकलने वाले अम्लीय तत्वों से वृक्ष रोगग्रस्त हो जाते हैं। यूरोप एवं आंग्ल-अमेरिका में यही प्रमुख समस्या है।

6. प्राकृतिक वनों को सर्वाधिक क्षति उनके समीपस्थ ग्रामवासियों द्वारा खुले पशु चराने, चारा के लिए पेड़ों की डाले काटने अथवा पत्तियां तोड़ने एवं ईंधन के लिए स्वस्थ वृक्षों को काटने से होती है। इस प्रकार की क्षति से बचाने के लिए सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित करना श्रेयस्कर है।

संक्षेप में वन संरक्षण के लिए एक ऐसी लोचपूर्ण नीति अपनाने की आवश्यकता होती है जो स्थानीय दशाओं के अनुरूप उपर्युक्त विधियों का ऐसा सम्मिश्रण प्रस्तुत करे जिससे वनाच्छादित क्षेत्रों के संकुचन वन में जैविक विविधता का ह्रास तथा उनकी प्राकृतिक उत्पादकता में कमी पर अंकुश लगाने में समर्थ हो।

16.5.3 मृदा संरक्षण:

मिट्टी से दीर्घकालीन दृष्टिकोण से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए संरक्षण अनिवार्य है। मिट्टी संरक्षण का उद्देश्य मिट्टी को अपने स्थान पर कायम रखना, मिट्टी की उर्वरता तथा अन्य तत्वों की अभिवृद्धि करना अथवा कम से कम अपेक्षित मात्रा एवं अनुपात में बनाए रखना तथा दीर्घकालीन तक उत्पादन करते रहने के लिए इसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना है।

मिट्टी की उर्वरता का ह्रास रोकने की दिशा में सबसे पहला कदम भूमि उपयोग नियोजन है। जिसका मूल तत्व भूमि उपयोग तथा भूमि की उत्पादन शक्ति में सामंजस्य करना है। इसके अर्न्तगत भूमि के विभिन्न आवश्यक उपयोगों जैसे-वन, कृषि अन्य उपयोग आदि में समुचित

आवंटन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भूमि के अनुचित उपयोग से मिट्टी में तीन प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं-

1. भौतिक
2. रासायनिक तथा
3. जैविक

यद्यपि तीनों परस्पर सम्बन्धित समस्याएं उत्पन्न करते हैं। तथापि इनमें प्रथम का संरक्षण के दृष्टिकोण से अधिक महत्व है, क्योंकि इसके द्वारा अन्य दो भी नियन्त्रित होते हैं। भौतिक विकास का तात्पर्य मिट्टी में एक या अन्य तत्वों की कमी या मिट्टी का कटाव है।

मिट्टी के तत्वों के असन्तुलन को उस तत्व विशेष नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, जैव पदार्थ आदि की बाहर से उर्वरकों एवं खाद द्वारा आपूर्ति करके किया जा सकता है। ऐसा करने से मिट्टी के कटाव की प्रवृत्ति कम हो जाएगी।

मिट्टी के रासायनिक एवं जैविक विकारों को दूर करने के लिए भी ठोस एवं दीर्घकालीन उपाय अनिवार्य हैं। इसके लिए कृषि पद्धति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे मिट्टी में आवश्यक तत्वों की कमी नहीं प्रत्युत अभिवृद्धि हो। कम से कम जिस मात्रा में इन तत्वों का कृषि प्रक्रिया में शोषण होता है उतनी मात्रा की पुनः आपूर्ति होना आवश्यक है। इसके लिए कृषि पद्धति में निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. **आवरण फसलों का उपयोग-** जिस भूमि को परती छोड़ना हो उसमें आवरण फसलों को लगा देना अधिक उपयोगी होता है। कई पौधे इस प्रकार के होते हैं जो भूमि के कटाव को रोकने के साथ ही साथ मिट्टी को जैव पदार्थ तथा हरी खाद प्रदान करते हैं।
2. **उर्वरकों तथा खादों का उपयोग-** मिट्टी से शोषित खनिजों की पुनः आपूर्ति करने के लिए विविध रासायनिक खादों का उपयोग करना चाहिए। परन्तु उनके उपयोग के पहले मिट्टी का विश्लेषण करना तथा यह जानना आवश्यक है कि किस खनिज तत्व की मिट्टी में कमी है।
3. **जैविक अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग-** विविध प्रकार के जैविक अवशिष्ट पदार्थ, पत्तियां, डण्डल, बीज, छिलके आदि मिट्टी को महत्वपूर्ण उर्वरक प्रदान करते हैं। इनका समुचित उपयोग मिट्टी को उर्वराशक्ति प्रदान करने के लिए किया जाना चाहिए।
4. **कैल्शियम कार्बोनेट तथा विरल तत्वों का उपयोग-** जिस मिट्टी में अम्ल अधिक होता है उसमें कैल्शियम का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। उसी प्रकार मिट्टी को सुपोषित एवं उर्वर बनाये रखने के लिए उसमें विरल तत्वों जैसे कोबाल्ट, बोरोन आदि का होना आवश्यक है।

5-जैव पदार्थ एवं जल का संरक्षण- मिट्टी संरक्षण के सभी उपार्यों की सफलता अन्ततः मिट्टी में जैव पदार्थ तथा जल के अनुकूल सहचर्य पर निर्भर है। इन दोनों के समुचित सहचर्य के बिना मिट्टी निर्माण की प्रक्रिया सुपरिचालित नहीं रहती।

16.5.4 जल संरक्षण:

वन के समान ही जल पारिस्थितिकी तंत्र में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वस्तुतः जल के बिना जीवन संभव नहीं है। वर्तमान में स्वच्छ पेयजल सर्वसुलभ नहीं रह गया है। अतएव जल संरक्षण पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य हो गया है। जल संरक्षण के निम्न तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं-

1. जल की उपलब्धता बनाये रखना।
2. जल को प्रदूषित होने से बचाना तथा
3. संदूषित जल को स्वच्छ करके उसका पूनर्चक्रण

जल संरक्षण का प्रारम्भ वर्षा की बूंदों से धरातल पर गिरने के साथ ही होता है। यदि वर्षा की बूंदों से सतह पर तेजी से न बहने देकर उसे भूमिगत होने की परिस्थितियाँ पैदा की जाए तो (क) वाष्पीकरण से कम जल वायुमण्डल में विलीन होगा। (ख) भूमिगत जलागारों में जल का आयतन बढ़ेगा। (ग) मिट्टी में आर्द्रता बढ़ेगी तथा (घ) जल का मंदगति से निरन्तर प्रवाह बना रहेगा। अतएव जल संरक्षण जलचक्र के उस भाग को नियन्त्रित करने से होता है जिसमें वर्षा का जल धरातल पर प्रवाहित होता हुआ समुद्र में पहुंचता है। सतह पर अथवा भूमिगत जल का संचय करके जल प्राप्ति की नियमितता में वृद्धि करने से उसकी उपयोगिता बढ़ती है। भूमिगत जल संरक्षित जल है क्योंकि (क) इसका प्रवाह अतिमंद होता है। (ख) यह स्वच्छ होता है तथा (ग) इसमें कोई नुकसान नहीं होता। बांधों द्वारा निर्मित कृत्रिम जलाशयों के जल का बहुविध उपयोग करने में सुविधा होती है। यह संरक्षण का प्रमुख उद्देश्य है। बहुविध उपयोग का प्रारूप राष्ट्रीय जल नीति में वर्णित है।

जल संरक्षण का दूसरा सिद्धान्त है जल को प्रदूषित न होने देना। जल के प्रदूषण के प्रमुख स्रोत (क) कारखानों के बहिस्त्राव है जो बिना किसी परिष्करण के नदियों में जा पहुंचते हैं। इसे रोकने के लिए वाहितमल को नदी में मिलने से पहले स्वच्छ करना कानूनी रूप से अनिवार्य होना चाहिए। इस प्रकार के मल को पानी से छानकर उनसे उर्वरक बनाने के संयंत्र उपलब्ध हैं। इसी प्रकार उद्योगपतियों पर कारखानों से निकलने वाले उपद्रव्यों को भी छानकर ही जल को नदी में छोड़ने की बाध्यता होनी चाहिए। प्रदूषित जल को विभिन्न प्रक्रियाओं प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक द्वारा स्वच्छ करके पुररूपयोग में लाना।

16.6 पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम:

चिपको आन्दोलन- यह वन संरक्षण का जन आन्दोलन है, जो उत्तराखण्ड के हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में पेड़ों की कटाई को रोकने के उद्देश्य से हुआ था। इसका आरम्भ चमोली जिले के मण्डल गांव में 27 मार्च, 1973 ई0 को हुआ, जब उत्तर प्रदेश की सरकार ने अंगू के पेड़ों को काटने का ठेका इलाहाबाद की एक खेलकूद कम्पनी को दिया। अंगू का वृक्ष बैलों का जुआ बनाने के उपयोग में आता है। यहां के निवासियों ने प्रतिरोध के स्वर में कहना आरम्भ किया “जिन पेड़ों को हमने पाला-पोसा, उनका उपयोग हम अपने जिन्दा रहने के लिए नहीं कर सकते, परन्तु यहां से बहुत दूर आमोद-प्रमोद के साधनों के निर्माण के लिए ठेकेदार को बेचा जा सकता है। यह कैसा विज्ञान है?” उन्होंने सरकार के निर्णय को यह कहकर चुनौती दी कि “यदि पेड़ काटने के लिए कुल्हाड़ी वाले आए तो हम चिपककर वृक्षों की रक्षा करेंगे।” सन् 1974 में रेणी ग्राम की महिलाओं ने ठेकेदार के पेड़ काटने वाले श्रमिक को यह कहकर जंगल से खदेड़ दिया कि “यह जंगल हमारा मायका है हम इसे कटने नहीं देंगे।”

चिपको आन्दोलन में महिलाओं का सर्वाधिक योगदान रहा। गौरा देवी के नेतृत्व में सन् 1978 में महिलाओं ने पेड़ों से चिपककर ठेकेदार व पुलिस को वापस जाने को बाधित किया। महिलाओं ने नारा लगाया-

क्या हैं जंगल के उपकार? मिट्टी, पानी और बयार।

मिट्टी, पानी, और बयार, जिन्दा रहने के आधार।

महिलाओं के अलावा उत्तराखण्ड के लोगों की वन रक्षा संबंधी मांग का समर्थन लोकनायक जयप्रकाश नारायण, काका कालेलकर तथा आचार्य धर्माधिकारी ने भी किया। इस आन्दोलन ने पेड़ों की कटाई को 10 से 25 वर्ष तक बन्द रखने की मांग की, जिससे हिमालयका 60% हिस्सा वनों से ढका जा सके। इस आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि जन-जन में वृक्ष चेतना, संरक्षण के वैज्ञानिक तरीके हैं। चिपको आन्दोलन में चण्डी प्रसाद भट्ट तथा सुन्दरलाल बहुगुणा के नाम उल्लेखनीय हैं।

अरिपको आन्दोलन- यह आन्दोलन चिपको आन्दोलन की प्रेरणा से अगस्त 1983 ई0 में कर्नाटक में उत्तर कन्नड़ लोगों द्वारा की गई। अरिपको कन्नड़ भाषा का शब्द है, जो कन्नड़ में चिपको का पर्यायवाची है। यह आन्दोलन पूरे जोश के साथ 48 दिन तक चला। इस आन्दोलन में युवा वर्ग ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। इस क्षेत्र में कागज उद्योग को कच्चे माल की आपूर्ति के लिए वनों का सफाया होता था। कागज उद्योग को आपूर्ति के लिए दो वृक्ष काटने का ही प्रावधान था लेकिन ठेकेदारों द्वारा अधिक वृक्ष काटने से वनों का सफाया जनता के समक्ष प्रकट होने लगा। इस आन्दोलन के अर्न्तगत गांव वालों ने जल विद्युत परियोजना को पूरी तरह से बदलने की मांग की।

आंकड़ों के अनुसार उत्तर कन्नड़ का वन क्षेत्र 80.7 % है। लेकिन वास्तविक क्षेत्र 26 प्रतिशत है। दूसरी समस्या वनों को एक ही जाति के वृक्षों में रूपान्तरित करने से सम्बन्धित है। इससे पारिस्थितिक तंत्रों को आघात पहुंच रहा है। उदाहरण के लिए खाद एवं चारे के अभाव के साथ-साथ मधुमक्खी का पलायन है इसलिए इन परेशानियों के कारण लोगों ने इस जन आन्दोलन का सहारा लिया है।

नर्मदा बचाओ आन्दोलन- सन् 1985 में में धा पाटकर द्वारा 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' प्रारम्भ किया गया। इस आन्दोलन में सम्मेलन, सत्याग्रह का सहारा लिया गया। पर्यावरणवादियों का मानना है कि यह सरोवर खर्चीला, अनुत्पादक, अलाभकारी व निरर्थक बांध है, जिसको रोकना ही एकमात्र हल है। आन्दोलनकारियों के गुजरात में प्रवेश पर रोक के विरुद्ध 7 जनवरी, 1991 ई० को में धा पाटकर ने अनशन प्रारम्भ किया। 20 जून 1992 ई० को चेतावनी सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस आन्दोलन के प्रमुख कारण आवश्यक तथ्यों को ध्यान में न लेना, पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ने की समस्या की उपेक्षा तथा लोगों के पुनर्वास की उपेक्षा आदि है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम- स्वच्छ पर्यावरण तथा सन्तुलित पारिस्थितिकी मानव जीवन तथा पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीवधारियों तथा अजैविक घटकों के अस्तित्व के लिए प्रथम आवश्यकता है। आज पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विश्वव्यापी हो चुकी है। विज्ञान एवं पर्यावरण की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1991 ई० की तुलना में 1995 ई० में प्रदूषण से मरने वालों की संख्या में 28 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 1995 ई० में प्रदूषण से कोलकाता में 10.647, दिल्ली में 9.859 व मुम्बई में 7.023 व्यक्तियों की मृत्यु हुई। भारत में प्रतिवर्ष 2.6 करोड़ लोग प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। भारत ही नहीं पूरा विश्व ही पर्यावरण के इस बिगड़ते स्वरूप से प्रभावित हुआ है। इसलिए गत वर्षों में पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण रोकने के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं।

सामान्य कानून में भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 268, 290, 291, 426, 430, 431, 432 के तहत सामान्य पर्यावरण समस्याएं धारा 277 के तहत जल प्रदूषण तथा धारा 278 के तहत वायु प्रदूषण के प्रकार निपटाये जायेंगे। दण्ड विधि संहिता 1898 जिसे अब 1973 ई० से पुनः नवीन रूप दिया गया है, के तहत उपद्रव के अध्याय से ध्वनि प्रदूषण पर प्रतिबंध लगा है। इसके अतिरिक्त-

अ-वायु प्रदूषण के लिए-

1. दी एक्सप्लोसिव एक्ट, 1908
2. दी इंडियन बॉयलर्स एक्ट, 1923
3. दी ओरियन्टल गैस कम्पनी एक्ट, 1857

4. दी मोटर व्हीकल एक्ट, 1938

ब. जल प्रदूषण के लिए-

1. दी नार्थ केनाल एण्ड ड्रेनेज एक्ट, 1873
2. दी ऑब्स्ट्रक्शन ऑफ फेअरवेज एक्ट, 1881
3. इंडियन फिशरीज एक्ट, 1897

स. वन्य जीव संरक्षण के लिए-

1. दी इंडियन फोरेस्ट एक्ट, 1927
2. दी मैसूर डेरिट्रक्टिव इन्सेक्ट्स एण्ड पेस्ट एक्ट, 1917
3. दी केरल एग्रीकल्चर पेस्ट एण्ड डिजीज एक्ट, 1919
4. दी आंध्र प्रदेश एग्रीकल्चर पेस्ट एण्ड डिजीज एक्ट, 1919

द. कीटाणुनाशक के लिए-

1. दी पोईजन एक्ट, 1919

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जून, 1972 ई0 में स्टॉकहोम (स्वीडन) में आयोजित 'मानव पर्यावरण अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस' कानूनों पर विचार किया गया। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए कुछ अधिनियम बनाए गए, जो कि निम्न हैं-

क-जल प्रदूषण के क्षेत्र में-

1. दी रिवर बोर्ड एक्ट, 1956
2. महाराष्ट्र प्रीवेन्शन ऑफ वाटर पोल्यूशन एक्ट, 1969
3. उडीसा रिवर पोल्यूशन प्रीवेन्शन एक्ट, 1953
4. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम 1974 तथा उसका संशोधित अधिनियम, 1978
5. दी मर्चेण्ट शिपिंग एमें न्डमें न्ट एक्ट, 1970

ख. वायु प्रदूषण के क्षेत्र में-

1. दी फैक्टरीज एक्ट 1948
2. दी माइन्स एण्ड मिनरल (रेगुलेशन एण्ड डवलपमेंट) एक्ट, 1947
3. दी इण्डस्ट्रीज (डवलपमेंट एण्ड रेगुलेशन) एक्ट, 1951
4. दी गुजरात स्मोक न्युसेन्स एक्ट, 1963
5. वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

ग. ध्वनि प्रदूषण के क्षेत्र में-

1. दी बिहार कन्ट्रोल ऑफ दी यूज एण्ड प्ले ऑफ लाउडस्पीकर्स एक्ट, 1955
2. ग्रान्ट ऑफ परमीशन अण्डर दी हिमाचल प्रदेश इन्स्ट्रूमेंट्स (कन्ट्रोल ऑफ नायज) एक्ट, 1969

च. विविध क्षेत्रों में-

1. वन संरक्षण अधिनियम, 1980
2. दी प्रीवेन्शन ऑफ फूड एडल्टरेशन एक्ट, 1954
3. अणु शक्ति अधिनियम, 1962
4. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
5. दी एनशियेन्ट मोनूमेंट्स एण्ड आर्केलोजिकल साइट्स एण्ड रिमेंट एक्ट, 1958
6. वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972

मानव पर्यावरण कान्फ्रेंस के बाद जो सबसे पहला कदम भारत सरकार ने पर्यावरण संरक्षण के हित में लिया, वह संविधान में दो संशोधन थे, जिन्हें अनुच्छेद 48। तथा 51।(9) नाम दिए गए वे निम्न प्रकार से हैं-

भारत का संविधान 48A अनुच्छेद-“ सरकार पर्यावरण के संरक्षण व सुधार तथा देश के वन एवं वन्य जीवों के संरक्षण का प्रयास करेगी।“

भारत का संविधान: अनुच्छेद 51A (9) “ यह भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण और सुधार करे, जिसमें वन, झीलें, नदी व वन्य जीव सम्मिलित हैं तथा प्रत्येक जीवधारी के प्रति सहानुभूति (संवेदनशीलता) रखे।

हमारे देश में 200 से भी अधिक अधिनियम बने हुए हैं। स्वतंत्रता के बाद बनाए गए पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धित कुछ अधिनियम निम्न हैं-

1. परमाणु ऊर्जा एक्ट (विकिरण सुरक्षा अधिनियम) 1971
2. नदी बोर्ड एक्ट, 1956
3. नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 220,222
4. दामोदर घाटी निगम (जल प्रदूषण नियन्त्रण) नियमन एक्ट, 1948
5. राजस्थान शोर नियन्त्रण एक्ट, 1961
6. द बीड़ी एक्ट सिगार कन्ट्रोल एक्ट, 1961
7. कीटनाशी एक्ट, 1968
8. वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम, 1972 (1991 ई0 में संशोधित)
9. जल प्रदूषण (रोकथाम व नियन्त्रण) अधिनियम, 1974 (1988 ई0 में संशोधित)
10. द प्रीवेन्शन ऑफ फूड एण्ड एडल्टरेशन एक्ट, 1954

16.7 पर्यावरण संरक्षण हेतु क्रियाकलापः

क्रिया करने के लिए बच्चों को छोटे-छोटे काम देना या प्रश्न पूछना इत्यादि जिससे कि बच्चे संबंधित अध्याय के बारे में सीखे और पर्यावरण में सुधार हो सके। शिक्षक स्वयं अपनी उपस्थिति में उन्हें उत्प्रेरित कर भौतिक पर्यावरण की वर्तमान स्थिति को सुधारने में मदद करे। इसके अर्न्तगत विभिन्न प्रकार के पर्यावरण की जानकारी सहज ढंग से दी जा सकती है।

1. वृक्षारोपण, हरी भरी वाटिकाओं का संरक्षण कराना।
2. अपशिष्ट पदार्थों, कूड़ों इत्यादि को उपयुक्त स्थान पर रखने की आदत।
3. पार्कों एवं जलाशयों की सफाई करना। सफाई अभियान चलाते
4. हुए छात्रों द्वारा स्थान-2 पर स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरों में सन्देश पट्टिकाएं लिखवाना एवं लगवाना।
5. छात्र भ्रमण के बारे में जानकारी करे और फसलों के लिए उपयोगी एवं अनुपयोगी मृदा को पहचानें।

-
6. छात्र भ्रमण एवं पर्यटन के माध्यम से विशिष्ट स्थलों का निरीक्षण करें एवं ऐसे स्थलों पर प्रदूषण द्वारा पड़े प्रभावों का भी निरीक्षण करें।
 7. छात्र पर्यावरण के तीनों स्वरूपों-भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक में उत्पन्न प्रदूषण व विकृतियों के स्वरूपों का विश्लेषण करें।
 8. छात्र पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी योजनाओं को पूरा करे और उनमें सक्रिय भागीदारी करें।
-

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. पर्यावरण संरक्षण का अर्थ समझाइए।
2. पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार बताइए।
3. पर्यावरण संरक्षण के उपाय क्या हैं?
4. पर्यावरण संरक्षण के विश्व संगठनों के नाम बताइए।

सत्य/असत्य प्रश्न:

1. पृथ्वी सम्मेलन 14 जून 1972 में ब्राजील में हुआ था। सत्य/असत्य
2. हमारी एक मात्र पृथ्वी का नारा 'स्टाकहोम' सम्मेलन में दिया गया था। सत्य/असत्य
3. विश्व चार्टर संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1972 में पारित किया था। सत्य/असत्य
4. पर्यावरण संरक्षण से पर्यावरण का अनुरक्षण करना है। सत्य/असत्य
5. पर्यावरण संरक्षण के लिए भारतीय संविधान 42वें अनुच्छेद (1976) में संशोधन किया। सत्य/असत्य
6. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'युनेस्को' का पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। सत्य/असत्य

रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न:

1. पर्यावरण संरक्षण के लिए भारतीय संविधान में-----में संशोधन किया गया है।

2. पृथ्वी सम्मेलन सन् 1972 में-----में हुआ था।
3. पर्यावरण संरक्षण करना आज-----समस्या है।
4. हमारी एक मात्र पृथ्वी का नारा-----सम्मेलन ने दिया।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'विश्व चार्टर' को-----में पारित किया।
6. पर्यावरण का विघटन प्राकृतिक तथा-----क्रियाओं से होता है।

बहु विकल्पीय प्रश्न:

1. पर्यावरण का विघटन के कारक हैं-

अ-प्राकृतिक कारक	ब-मानवीय क्रियाएं
स-दोनों ही	द-कोई भी नहीं
2. पृथ्वी सम्मेलन ब्राजील में हुआ-

अ-1976 में	ब-1967 में
स-1972 में	द-1986 में
3. विश्व चार्टर संयुक्त राष्ट्र संघ ने पारित किया-

अ-1982 में	ब-1967 में
स-1972 में	द-2002 में
4. पर्यावरण संरक्षण समस्या है-

अ-भारत की	ब-संयुक्त राज्य अमेरिका
स-विश्व की	द-चीन की
5. भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण के लिए संशोधन हुआ-

अ-45वें अनुच्छेद 1972 में	ब-42वें अनुच्छेद 1972 में
स-42वां अनुच्छेद 1976 में	द-40वें अनुच्छेद 1976 में

16.8 सारांश

पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में वायु, वनस्पति, जीव, जन्तु, जल, मिट्टी अन्य बहुत सारी प्राकृतिक वस्तुओं तथा मानवीय रिश्तों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए किया गया कार्य नैतिक एवं भौतिक प्राणियों द्वारा प्रकृति के सन्तुलन को तोड़ना अनैतिक कार्य है। मनुष्य प्रकृति की अनूठी शान है। प्रकृति ने संसार के लिए उपहार स्वरूप वायु, जल, खनिज, सम्पदा, जीव, जन्तु, नदी, पहाड़, वनस्पति खाद्य पदार्थ आदि की रचना की है। अतः मानव समाज को इस देन का विवेकसम्मत व सर्वेदनशील होकर के सन्तुलित उपभोग करना चाहिए। समस्त मानव को समाज एवं राष्ट्र के भौतिक व आध्यात्मिक विकास में युगानुकूल अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण वर्तमान में विश्व के समस्त प्राणियों के लिए एक चुनौती है। जिसे सहर्ष स्वीकार करते हुए वर्तमान में ही संरक्षण न करके आने वाली पीढ़ी को भी संरक्षित करने के लिए प्रेरित किया जाए जिससे इसको अनिश्चितकाल तक उपहार स्वरूप संजोया जा सके।

16.9 शब्दावली

परिस्थितिकी तंत्र: समस्त पर्यावरण को एक इकाई मानते हुए इसके तत्वों के पारस्परिक अंतर्संबंध की प्रणाली।

पर्यावरण संरक्षण: प्राकृतिक एवं जैविक वातावरण का इस प्रकार प्रयोग करना जिससे पर्यावरण पर कम दबाव डालते हुए मनुष्य के गुणात्मक जीवन स्तर के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध हो तथा उनकी अनवरत आपूर्ति बनी रहे।

वैकल्पिक ऊर्जा : सौर ऊर्जा, जल, पवन, समुद्री लहरें एवं ज्वार, बायोगैस आदि ऊर्जा के स्रोत।

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य/असत्य प्रश्न: 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य

रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न: 1. 42वां अनुच्छेद 1976 में 2. ब्राजील 3. विश्व की 4. स्टाकहोम 5. 1972 6. मानवीय क्रियाएं 7.

बहु विकल्पीय प्रश्न: 1. स 2. स 3. स 4. स 5. स

16.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

Pal, B.P. (1981): National Policy on Environment, deptt. of Environment, Govt of india, New Delhi

- Kumar, V.K (1982): Study in Environmental Pollution Tara Book Agency, Varanasi
- Sharma, P.D (1990) Ecology And Environment Rastogi Publication, Meerut
- Verma, P.S And Aggarwal, V.K (1993) Environmental Biology, (Principles Of Ecology), S. Chand And Co. Publication, New Delhi
- Pal, S.K And Sudha Malhotra, (1994): Environment Trend And Thoughts in Education, Vol.XI. 1994 Published by Innovative Research Association Allahabad
- Vyas, H.(1995): Paryavaran Shiksha, Vidya Vihar, New Delhi
- Singh, S. (1995): Environmental Geography, Prayag Pustak Bhawan, Allahabad
- वशिष्ठ, कमला (2005): पर्यावरण शिक्षा, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर
- शर्मा, बी०डी० (2008): पर्यावरण शिक्षा, ओमें गा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- शर्मा, आर०ए० (2008): पर्यावरण शिक्षा, आर०लाल बुक डिपो, में रठ
- त्रिपाठी, रेणु एवं त्रिपाठी, अपर्णा, (2006): पर्यावरण भूगोल ओमें गा पब्लिकेशन नई दिल्ली
- गुप्ता, यू०सी०, (2008): पर्यावरण शिक्षा, के०एस०के० पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- सिंह, उमा (2009): पर्यावरण शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- Sharma, R.A. (2010): Environmental Education, R.Lall. Book Depo. Meerut.
- दुबे, सत्यनारायण (2011): पर्यावरण अध्ययन, शारदा पुस्तक भवन प्रकाशक, इलाहाबाद

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण संरक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए पर्यावरण प्रदूषण और पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध को बताइए ?
2. “पर्यावरण प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है। इस कथन को स्पष्ट करिए तथा बताइए कि इसमें राष्ट्रों के सहयोग की क्यों आवश्यकता है ?

3. पर्यावरण संरक्षण के मुख्य उपाय कौन-2 से हैं ? इसके सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय संघ, अधिनियम तथा संगठनों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
4. भारत में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों, अधिनियमों संविधान में संशोधन, संगठनों का वर्णन कीजिए।

इकाई 17: जनसंख्या शिक्षा: इसका संप्रत्यय, प्रकृति, उद्देश्य एवं महत्व (Population Education: Concept, Nature, Objectives and its significance)

इकाई की रूपरेखा

- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 उद्देश्य
- 17.3 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा
- 17.4 जनसंख्या शिक्षा की विशेषताएं
- 17.5 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य
- 17.6 जनसंख्या शिक्षा का महत्व व आवश्यकता
- 17.7 जनसंख्या शिक्षा की प्रकृति
- 17.8 जनसंख्या शिक्षा की अवधारणा
- 17.9 जनसंख्या शिक्षा का विकास
- 17.10 जनसंख्या वृद्धि समस्या व उनके समाधान
- 17.11 सारांश
- 17.12 शब्दावली
- 17.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 17.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

17.15 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

जनसंख्या शिक्षा का विचार सम्पूर्ण विश्व के लिए नवीन है। इस विचार के उदभव एवं प्रसार का मूल कारण है - जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि। इस वृद्धि का अनुमान डा0 मलैया के अंग्रकित शब्दों से सहज लगाया जा सकता है:

20वीं सदी के आरम्भ में संसार की जनसंख्या लगभग 1 अरब 50 करोड़ थी। वर्तमान में लगभग 6.5 अरब व्यक्ति हैं तथा इस सदी के अन्त तक यह सम्भावना है कि संसार की आबादी 7 अरब हो जाएगी। पिछले 20 वर्षों में संसार की आबादी लगभग 1 अरब बढ़ी है।

जनसंख्या की इस असाधारण वृद्धि ने संसार के समक्ष एक भीषण समस्या उपस्थित कर दी है, क्योंकि यह व्यक्तिगत, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष पर दूषित प्रभाव डाल रही है। इसका प्रभाव व्यक्ति सुख एवं सम्पत्ति पर, राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि पर और अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति पर पड़ता है। अतः जनसंख्या-वृद्धि अथवा विस्फोट को गम्भीरतम समस्या बताते हुए डा0 लल्ला तथा डा0 मूर्ति ने लिखा है – “जनसंख्या विस्फोट की गम्भीर समस्या ने हमारे समय के विश्व को मुसीबत में फंसा दिया है।”

पृथ्वी पर निरन्तर बढ़ती जनसंख्या आज विश्व में चिन्ता का प्रमुख कारण बन रहा है। क्योंकि इस वृद्धि ने लगभग सभी देशों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है और उनके प्रगति में बाधाएं उत्पन्न की हैं। अविकसित और विकासशील देशों में यह विविध प्रकार की समस्याओं को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है इनमें से प्रमुख समस्याएं इस प्रकार से हैं-

1. भोजन, कपड़ा, मकान व पीने योग्य पानी
2. रहने का निम्न स्तर
3. निरक्षता की समस्या
4. चिकित्सा सुविधाओं की कमी
5. बेरोजगारी
6. कम शिक्षा सुविधाएं
7. शहरीकरण - इसके फलस्वरूप मलिन बस्तियों, ड्रम-सेवन आदि को जन्म मिला है।

इन सभी समस्याओं को समुचित रूप से समझने के लिए आप इस इकाई में जनसंख्या शिक्षा का संप्रत्यय, प्रकृति, उद्देश्य एवं महत्व के बारे में अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- संसार में बढ़ती हुई जनसंख्या की प्रकृति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनसंख्या वृद्धि के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा का संप्रत्यय व प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य एवं महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

17.3 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा:

शिक्षा शब्द का अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। शिक्षा की पाठ्यवस्तु एवं प्रकृति भी बदलती रही है। शिक्षा एक समाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियन्त्रण का शक्तिशाली यन्त्र है। शिक्षा सामाजिक समस्याओं का व्यवहारिक समाधान भी देती है।

शिक्षा अध्ययन क्षेत्रों का उद्देश्य एवं प्रकृति भिन्न होती है। इस तथ्य को कुछ उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है-

शिक्षा का अध्ययन क्षेत्र	उद्देश्य एवं प्रकृति
1. शिक्षा मनोविज्ञान	बाल केन्द्रित शिक्षा
2. शिक्षा तकनीकी	उद्देश्य केन्द्रित शिक्षा
3. शिक्षा समाजशास्त्र	व्यवसाय केन्द्रित शिक्षा
4. पर्यावरण शिक्षा	समस्या केन्द्रित शिक्षा

जनसंख्या शिक्षा भी शिक्षा का एक अध्ययन क्षेत्र है। जनसंख्या की समस्या के समाधान में शिक्षा की अहम भूमिका है। इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा की प्रकृति समस्या केन्द्रित है।

जनसंख्या शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों में जनसंख्या की वृद्धि के सम्बन्ध में जागरूकता एवं संवेदनशीलता उत्पन्न करना है, जिस प्रकार पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत किया जाता है।

जनसंख्या शिक्षा, शिक्षा का एक नया पर्याय है, जिसका विकास विशेष रूप में सन 1970 में भारत में हुआ। इस प्रत्यय के प्रवर्तक कोलम्बिया विश्वविद्यालय के स्लोन आर0 बेलैण्ड माने जाते हैं। कुछ विद्वान इसे यौन शिक्षा, काम शिक्षा, जनसंख्यानिरोध शिक्षा, पारिवारिक जीवन शिक्षा, परिवार कल्याण शिक्षा आदि नामों से भी सम्बोधित करते हैं। परन्तु जनसंख्या शिक्षा सबसे उपयुक्त नाम माना गया है।

जनसंख्या शिक्षा के सम्बन्ध में फिलिप एम0 हापर का कहना है कि बीसवीं सदी के शिक्षा के पाठ्यक्रम में जनसंख्या शिक्षा महत्वपूर्ण प्रकरण है।

इसकी जानकारी विद्यालय में देने की आवश्यकता है। जनसंख्या अध्ययन तथा इसके निष्कर्ष भी इस शताब्दी के सन्दर्भ में देना चाहिए तथा इसकी उपयोगिता भी समझनी चाहिए।

डी0 गोपालराव के अनुसार, “जनसंख्या शिक्षा का अर्थ है कि ऐसा शैक्षिक पाठ्यक्रम जो जनसंख्या का अध्ययन इस प्रकार से करे कि तीव्रता से बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में तर्क संगत समाधान का निर्णय लेने में छात्रों की सहायता कर सके”।

अमेरिकी शिक्षाविदों ने जनसंख्या शिक्षा के लिए नया शब्द जनसंख्या जागृति का अधिक प्रयोग किया है।

जनसंख्या शिक्षा का सर्वप्रथम विशद वर्णन सितम्बर 1970 में युनेस्को की ओर से बैंकाक में आयोजित की जाने वाली जनसंख्या शिक्षा संगोष्ठी द्वारा इस प्रकार किया गया – “जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है, जिसमें परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्वभर की जनसंख्या की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन का उद्देश्य छात्रों में इस स्थिति के प्रति विवेकपूर्ण, उत्तरदायी दृष्टिकोण एवं व्यवहार का विकास करना है”।

उस्मान के अनुसार: “जनसंख्या शिक्षा, जनसंख्या वृद्धि और राष्ट्रीय विकास के अन्तर संबंधी समझ को विकसित करती है”।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रतिवेदन के अनुसार: “जनसंख्या शिक्षा जन-समुदाय में जनसंख्या की वृद्धि, नीति, कार्यक्रमों तथा लघु परिवार की अवधारणा को समझने का साधन है, जिससे समुदाय पर पड़ने वाले विपरीत प्रभाव की जानकारी दी जा सके”।

अतः इन परिभाषाओं से जनसंख्या का अर्थ, क्षेत्र एवं विशेषताओं का बोध होता है। इसका क्षेत्र अधिक व्यापक है जो पर्यावरण और मानव कल्याण से सम्बन्धित है।

17.4 जनसंख्या शिक्षा की विशेषताएं

उपरोक्त परिभाषाओं की समीक्षा से जनसंख्या शिक्षा की अधोलिखित विशेषताओं का बोध होता है-

1. जनसंख्या शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिससे जनसंख्या वृद्धि के प्रति जागरूकता का विकास किया जाता है।
2. जनसंख्या शिक्षा, शिक्षा विषय का एक नया क्षेत्र है, जिसमें जनसंख्या का अध्ययन किया जाता है, मनुष्य, समाज तथा राष्ट्र पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी दी जाती है।
3. इसके अन्तर्गत जनसंख्या की वृद्धि तथा स्वरूप में परिवर्तन तथा समस्याओं का अध्ययन, समाधान के उपाय तथा कारणों के पारस्परिक सम्बन्धों का बोध होता है।
4. जनसंख्या का अध्ययन करना और जीवन, परिवार और समाज में गुणवत्ता लाना है।
5. जनसंख्या शिक्षा से बालको में छोटे परिवार और उससे लाभ की जानकारी दी जाती है, जिससे जनसंख्या वृद्धि के प्रति समुचित अभिवृत्ति एवं मूल्यों का विकास करना है।
6. जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है, जो परिवार, समुदाय, राष्ट्र तथा विश्व में बढ़ रही जनसंख्या के कुप्रभाव के प्रति समुचित अभिवृत्ति एवं मूल्यों का विकास करना है।
7. यह शिक्षा का वह क्षेत्र है, जिसमें छात्र और अध्यापक में जनसंख्या वृद्धि के सम्बन्ध में जागृति लाकर, सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में ठोस योगदान करते हैं।

यह औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम द्वारा जानकारी दी जाती है।

17.5 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य:

भारत सरकार ने अप्रैल 1996 में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की इस नीति के उद्देश्य एवं लक्ष्यों को इस प्रकार निर्धारित किया की जनसंख्या के विस्फोट का ठीक तरह से मुकाबला किया जा सके और बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण देश पर आए संकट का मुकाबला किया जा सके।

जनसंख्या नीति के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा पर जोर दिया। फलस्वरूप इसे उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पाठ्यक्रम में इसे शामिल किया गया।

राष्ट्रीय एकता, प्रौढ़ शिक्षा, ग्राम विकास, पर्यावरण, कानूनी साक्षरता पर ज़ार देने का निश्चय किया गया। यह भी तय किया गया कि जनसंख्या शिक्षा को पाठ्य सहगामी क्रियाओं में शामिल किया जाए।

भारत में 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या बहुत अधिक है। यही बड़े होकर विवाह करके माता पिता बनेंगे। इनको परिवार के आकार के विषय में जानकारी देना चाहिए जिनका जनसंख्या वृद्धि से सीधा सम्बन्ध है। अतः इस वर्ग के बच्चों को बढ़ती जनसंख्या के दुष्प्रभाव से है अवगत कराना आवश्यक है। जिससे वे अपने भावी परिवार के आकार के विषय में निर्णय कर सकें।

इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा जिसमें युवा पीढ़ी के लोगो को जनसंख्या की गति, उसकी दिशा और देश के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, उसके प्रभाव और परिवार के आकार छोटे परिवार के लाभ आदि की जानकारी प्रदान की जाए।

विभिन्न विद्वानों ने जनसंख्या शिक्षा के भिन्न भिन्न प्रकार के उद्देश्य निश्चित किए हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद, दिल्ली राष्ट्रीय सेमिनार तथा सम्मेलन में जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों का प्रतिपादन किया है जिनका विवरण यहां दिया गया है-

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों को राष्ट्रीय सेमिनार द्वारा सार रूप से इस प्रकार अंकित किया गया है – “जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य – छात्रों को यह समझाने की योग्यता प्रदान करना चाहिए कि परिवार का सीमा निर्धारण राष्ट्र में उत्तम जीवन को सुविधाजनक बना सकता है और परिवार का छोटा आकर प्रत्येक परिवार के सदस्य के जीवन स्तर के उन्नयन में अतिशय योगदान दे सकता है”।

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य बहुआयामी हैं, यहाँ प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है।

1. जनसंख्या वृद्धि की गति से अवगत कराना: इसके लिए अपने देश स्तर तथा विश्व स्तर की जनसंख्या का अध्ययन किया जाता है, जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ो को दिया जाता है जिससे जनसंख्या वृद्धि की दर तथा वर्तमान स्थिति का बोध कराया जाता है।

2. जनसंख्या वृद्धि और विकास की गति के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना: जनसंख्या वृद्धि और विकास की गति एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। दोनो में परस्पर सम्बन्ध होता है। दोनों के मध्य घटकों की जानकारी से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

3. जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभाव से अवगत कराना: जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव मनुष्य का जीवन मापन तथा स्तर, समाज, राष्ट्र तथा विश्व पर किस प्रकार प्रभाव पड़ रहा है। सामाजिक जीवन, आर्थिक या सांस्कृतिक जीवन किस प्रकार प्रभावित हो रहा है इन तथ्यों की जानकारी देना।

4. मनुष्य तथा पारिवारिक जीवन को सुखी तथा समृद्धिशाली बनाना: परिवार में अच्छी शिक्षा दीक्षा, अच्छी देखभाल, स्वास्थ्य तथा उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान देकर पूर्ति करना है। जनसंख्या शिक्षा का अर्थ जन्मदर को कम करना ही नहीं है, अपितु परिवार के बच्चों के जीवन को सुखी एवं समृद्धिशाली बनाना है।

5. परिवार नियोजन कार्यक्रमों से सम्बन्ध स्थापित करना: परिवार नियोजन का जनसंख्या शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। अतः जनसंख्या शिक्षा प्राथमिक कार्य है। परिवार नियोजन की विधियों एवं कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देना।

6. जीवन स्तर को ऊँचा उठाना: जनसंख्या शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है और उसमें गुणात्मक परिवर्तन लाना है यह तभी सम्भव होगा जब परिवार को सीमित रखा जाये और जनसंख्या को शिक्षा के लक्ष्यों के प्रति जागरूकता रखा जायें।

7. उत्पाद क्षमता से सम्बन्ध स्थापित करना: जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न एवं अन्य जीवनोपयोगी सामग्रियों की आवश्यकता अपेक्षाकृत बढ़ जाती है। अतः व्यक्ति को अपनी उत्पादक क्षमता वृद्धि करनी चाहिये, जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से कर सकें।

8. जनसंख्या वृद्धि की गति रोकने के उपायों के प्रति जानकारी देना: जनसंख्या में हो रही वृद्धि को रोकने के लिये अनेक साधन एवं तौर तरीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इनकी जानकारी प्रत्येक के लिये आवश्यक है अतः इसके रोकने के उपायों पर बल देना चाहिये।

9. जनसंख्या एवं पर्यावरण से सम्बन्ध स्थापित करना: जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर किस सीमा तक प्रभाव पड़ता है इसके क्या क्या दुष्परिणाम हो रहे हैं आदि बातों की जानकारी करना इसका लक्ष्य होना चाहिए।

10. मानवीय मूल्यों का विकास करना: मानवीय मूल्यों मानव जीवन को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं? इससे व्यक्तिक कैसे आदर्श एवं संयमी जीवन की ओर उन्मुख हो सकता है? इसकी जानकारी देना जनसंख्या शिक्षा का अभीष्ट लक्ष्य होना चाहिये।

11. जीवन में गुणवत्ता विकास करना: व्यक्ति अपने जीवन में किस प्रकार स्वस्थ रहे, दाम्पत्य जीवन को किस प्रकार सुखी बनाया जा सके और जीवन के विविध पक्षों में गुणवत्ता लायी जाये।

12. जीवन शिक्षा के अन्य पहलुओं से अवगत करना: छात्रों को योजनाओं सम्बन्धी जीतियों, कानून, कार्यक्रम तथा मूल्यकन आदि के सम्बन्ध में जानकारी देना। जन संचार माध्यमों, रेडियो तथा दूरदर्शन के कार्यक्रमों की जानकारी देना। आत्म निर्भरता, विवाह बन्धन आदि के विषय में भी जानकारी दी जायें।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. जनसंख्या शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है -

1. छात्रों को जनसंख्या वृद्धि से जागृत कराना।
2. छात्रों को जनसंख्या वृद्धि के प्रति संवेदनशील करना
3. दोनो ही
4. उपरोक्त कोई नहीं

2. जनसंख्या शिक्षा की व्यवस्था कीजिए -

- | | |
|--------------------------|------------------------|
| 1. प्रथमिक स्तर पर | 2. उच्च शिक्षा स्तर पर |
| 3. जनसंख्या नीतियां दोषी | 4. उपरोक्त सभी |

17.6 जनसंख्या शिक्षा का महत्व व आवश्यकता

यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जनसंख्या शिक्षा की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि ने पर्यावरण की गुणवत्ता को अधिक प्रभावित किया है, जिससे मनुष्य तथा समाज को अनके प्रकार की कठनाईयों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। कहा जाता है कि पीने का पानी पीने योग्य नहीं रहा है, हवा श्वास लेने योग्य नहीं रहा तथा भोजन खाने योग्य नहीं रहा है तथा पर्यावरण में असुन्तलन आ गया है।

शिक्षाविद् तथा जनसंख्या अध्ययनवेत्ता यह अनुभव करने लगे हैं कि यदि जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण नहीं किया गया तो भुखमरी, अकाल, महामारी के प्रकोपों को नहीं रोका जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया है जिसमें शिक्षकों के प्रशिक्षण से जनसंख्या की जागृति पैदा की जाएगी।

इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा के कार्यक्रमों की महत्ता और आवश्यकता निम्न प्रकार से है -

1. छोटा परिवार सदैव सुखी होता है, अतः यदि जनसंख्या शिक्षा द्वारा बालकों एवं बालिकाओं में यह विचार समविष्ट कर दिया जाय तो वे अपने आप परिवार नियोजन करेंगे।

2. यदि जीव विज्ञान के अध्ययन को आवश्यक मानकर पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सकता है तो मानव जनसंख्या के अध्ययन को आवश्यकता मानकर पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए।
3. भारत में विवाह की आयु अन्य अनेक देशों की तुलना में बहुत कम है। अतः युवकों एवं युवतियों को विवाह से पूर्व जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से अवगत कराया जाना आवश्यक है।
4. प्रत्येक देश पर अपने नागरिकों के कल्याण, स्वास्थ्य एवं पूर्ण विकास का उत्तरदायित्व है। वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह तभी कर सकता है जब वह उनको जनसंख्या शिक्षा द्वारा जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभावों से परिचित कराये।
5. जनसंख्या की द्रुत गति से वृद्धि देश की आर्थिक प्रगति, समाजिक उन्नति एवं व्यक्तियों के रहन सहन के स्तर के उन्नयन में उल्लेखनीय अवरोध उपस्थित करती है। अतः जनसंख्या शिक्षा द्वारा बालकों एवं बालिकाओं को इन तथ्यों से परिचित किया जाना आवश्यक है।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर हम डा0 लल्ला व डा0 मूर्ति के शब्दों में बलपूर्वक कह सकते हैं कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आधुनिक समय के सन्दर्भ में जनसंख्या शिक्षा के महत्व एवं आवश्यकता की अपेक्षा नहीं कर सकता।“

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से भी है -

1. विकासशील देशों की एक विशेष बात यह है कि उनकी 40 से 45 प्रतिशत जनसंख्या 15 वर्ष की कम आयु की है। भारत में ऐसी जनसंख्या 42 प्रतिशत है। जनसंख्या की वृद्धि की दर रोकने के लिए इस विशाल जनसमूह की जनांकिकीय आचरण को प्रभावित करना आवश्यक है। अतः विद्यालयों तथा कालेजों की जनसंख्या शिक्षा को प्रदान करके ही ऐसा किया जा सकता है।
2. अधिकांश विकासशील देशों ने सन्तति नियन्त्रण के लिए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति तथा अन्य कार्यक्रम बनाये हैं। अतः परिवार नियोजन नीति तथा सन्तति नियन्त्रण के सम्बन्ध में जनसंचार के विभिन्न साधनों - समाचार पत्रों, पत्र पत्रिकाओं, रेडियो प्रसारणों, फिल्मों, विज्ञापनों, इशतहारों आदि का प्रयोग किया जा सकता है। स्पष्टतया इनसे पाठकों या श्रोताओं को दूर नहीं रखा जा सकता, साथ ही बच्चे भी उससे दूर नहीं रह सकते हैं। इस प्रकार संयोगवश या आकस्मिक ढंग से प्राप्त जानकारी से हानि हो सकती है। इसलिए जनसंख्या के लक्षणों की जनसंख्या शिक्षा के एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम के माध्यम से सुव्यवस्थित रूप से जानकारी प्रदान करने की आवश्यकता है।
3. छात्रों की जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि से देश की समाजिक उन्नति एवं आर्थिक प्रगति पर पड़ रहे कुप्रभावों में जनसंख्या शिक्षा द्वारा अवगत कराया जाना आवश्यक है।

4. यदि जनसंख्या का विस्फोट न होता और यदि सन्तति दर को कम करने के लिए प्रारम्भ किए गये कार्यक्रम के शीघ्र परिणाम न निकले होते तो विद्यालय में जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता प्रतीत न होती। वास्तविकता यह है कि जनसंख्या की जटिल समस्याओं का समाधान करने तथा परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को सफल बनाने एवं उनके लक्ष्यों की प्रप्ति के लिए विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता है।

5. जनसंख्या की समस्या एक दीर्घकालीन समस्या है। अतः प्रत्येक पीढ़ी को इसकी मूल बातों को समझना अनिवार्य है। इन मूल बातों की जानकारी प्रदान करने के लिए जनसंख्या शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है जिससे यह प्रत्येक नई पीढ़ी के लिए एक प्रेरणादायक शक्ति के रूप में निरन्तर कार्य कर सके।

6. जनसंख्या शिक्षा एक ऐसा साधन है कि जिसके माध्यम से युवा पीढ़ी को समकालीन जीवन की वास्तविकता का सामना करने की शिक्षा देकर सक्रिय नागरिक बनाया जा सकता है। और उनको 20 वीं सदी में जनसंख्या की बढ़ोत्तरी के परिणामों तथा तथ्यों से अवगत कराकर राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए तत्पर बनाया जा सकता है। अतः इस दृष्टि से भी जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता है।

7. हमारे देश में जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता ग्रामीण विद्यालयों में अधिक हैं क्योंकि भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में रहती है और दूसरे ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा जन्म दर अधिक है।

17.7 जनसंख्या शिक्षा की प्रकृति

जनसंख्या शिक्षा की सार्थकता के विषय में एनसर्ट के कार्यक्रम को मुख्य स्थान दिया गया है -

1. छात्रों को आधुनिक संसार की जनसंख्या विस्फोट की घटना से अवगत कराना।
2. जनसंख्या वृद्धि के दबाव का व्यक्ति, परिवार, समाज, देश तथा विश्व पर अनुभव करना।
3. परिवार का आकार तथा रहने के स्तर को सुधारना
4. जनसंख्या नियन्त्रण-तन्त्र तथा दुर्भिक्ष, अपराध तथा समाजिक संघर्ष, जन्म एवं मृत्यु दर, देश की शान्ति तथा सुरक्षा, भोजन, वस्त्र, मकान, रोजगार तथा शिक्षा आदि के सन्दर्भ में

इसलिए जनसंख्या शिक्षा की प्रकृति का स्पष्टीकरण इस प्रकार से किया गया है - जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य, प्रकृति, छात्रों को यह समझने की योग्यता प्रदान करना कि परिवार के आकार को नियन्त्रित किया जा सकता है, जनसंख्या का सीमा निर्धारण राष्ट्र में उत्तम जीवन को सुविधाजनक

बना सकता है और परिवार का छोटा आकार प्रत्येक परिवार के सदस्य के जीवन स्तर के उन्नयन में अतिशय योगदान दे सकता है।

जनसंख्या शिक्षा क्यों ?

प्रश्न उठता है – जनसंख्या शिक्षा क्यों दी जाए? इसका उत्तर स्पष्ट है। आज जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि भौतिक साधनों का विकास पीछे छूट गया है। भौतिक साधनों -अन्न, वस्त्र, आवास तथा जनसंख्या के मध्य असन्तुलन हो गया है। ये समस्याएँ, शोषण, उत्पीड़न को बढ़ावा दे रही है। समाजिक अन्याय बढ़ रहा है।

अतः इस परिस्थिति से निपटने के लिए शिक्षा शास्त्री तथा जनसंख्याविद् यह अनुभव करने लगे हैं कि इस समस्या को वैचारिक क्रान्ति का रूप प्रदान करना होगा। सरकारी अभिकरणों में एन्सर्ट तथा गैर सरकारी अभिकरणों में फैमिली प्लानिंग एसोसिएशन, आल इण्डिया फ़ैडरेशन ऑफ एजुकेशनल एसोसियेशन आदि संस्थाएँ जनसंख्या हेतु कार्य कर रही हैं।

यह कार्यक्रम 1. विद्यालयों, महाविद्यालयों अन्य शिक्षा संस्थाओं 2. जिन्होंने विद्यालय छोड़ दिया है या शिक्षा पाई ही नहीं है तथा 3. शिक्षक - प्रशिक्षकों एवं शिक्षकों, जो स्कूल प्रशिक्षण मार्ग दर्शन आदि के द्वारा शिक्षा देते हैं।

17.8 जनसंख्या शिक्षा की अवधारणा -

जनसंख्या की वृद्धि और उसके दूरगामी परिणामों के प्रति सचेत रहने का विचार सन् 1960 में विकसित हुआ है। अभी तक इस अवधारणा को स्पष्ट रूप से परिभाषित तथा व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया है। इसको शिक्षा की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। हॉजर, ने इसकी आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि अब समय आ गया है कि बीसवीं सदी के स्कूलों के पाठ्यक्रम में बीसवीं सदी की जनसंख्या की प्रवृत्ति तथा परिणामों का अध्ययन कराया जाए।

भारत में प्रोफेसर स्लोन वेलैण्ड ने जनसंख्या शिक्षा के विचार को मूर्त रूप दिया। प्रो0 स्लोन कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं। उन्होंने जनसंख्या शिक्षा के विषय में कहा है – संख्या चाहे जो भी हो, हमारा संबंध औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत निर्देशन प्रणाली में परिवार नियोजन की सार्वजनिक नीति, परिवार तथा राष्ट्र, परिवार नियोजन की वांछनीयता आदि को सम्मिलित किया जाए। साथ ही जनसंख्या का आर्थिक तथा समाजिक विकास, परिवार के आकार तथा परिवार के गुणों की गतिशीलता का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। अतः किसी विशेष समाज में भाषाशास्त्रीय प्रावधान में विद्यालय स्तर पर विशेष शिक्षण विधि की आवश्यकता विकसित करना है।

बर्लेसन ने जनसंख्या सचेतना के रूप में जनसंख्या शिक्षा को स्वीकार किया है। विद्यालय को इसका साधन बताते हुए उसने कहा है कि जनसंख्या शिक्षा के परिणामस्वरूप शिक्षा पर बढ़ते व्यय को और भी बढ़ाने का साधन बनाती है। शिक्षा जनसंख्या समस्या से सम्बन्धित ज्ञान के प्रति चेतना है। इसके दो उद्देश्य हैं 1. शिक्षा शास्त्री तथा उनसे सम्बन्धित लोग जनसंख्या के महत्व, विस्तार की हानि तथा प्रकृति को समझें तथा 2. छात्र तथा अध्यापक अपनी अभिवृत्तियों के स्वरूप को समझें।

जनसंख्या शिक्षा, उच्च शिक्षा की संस्थाओं में 1. पाठ्यक्रम में 2. समाज के विभिन्न वर्गों में चेतना की समस्या है। राष्ट्रीय एकता, प्रौढ़ शिक्षा, ग्राम विकास, पर्यावरण, कानूनी शिक्षा, जनता के लिए विज्ञान आदि को रखा जाना चाहिए। जनसंख्या शिक्षा को पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा संस्थाओं में जनसंख्या शिक्षा को आरम्भ करने की आवश्यकता अनुभव की है। अब यह शिक्षा हमारी शिक्षा प्रणाली का आधार बन चुकी है। औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा माध्यमों द्वारा यह शिक्षा प्रणाली को नई दिशा प्रदान करेगी।

17.9 जनसंख्या शिक्षा का विकास

जनसंख्या शिक्षा का विचार आधुनिक युग की देन है। जहां तक जनसंख्या वृद्धि से होने वाले दुष्परिणामों की बात है इस ओर सर्वप्रथम ध्यान 18 वीं सदी में इंग्लैण्ड के एक पादरी माल्थस का गया था। उनके बाद अर्थशास्त्रियों ने इस समस्या का अध्ययन शुरू किया और यह अर्थशास्त्र की विषय वस्तु बन गई। पर जब संसार की जनसंख्या अति तीव्र गति से बढ़ने लगी जो उसके दुष्परिणाम सामने आने लगे अतः अर्थशास्त्रियों के साथ साथ राजनीतिज्ञों का ध्यान भी जनसंख्या नियन्त्रण की ओर गया। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम 20 वीं सदी के छठे दशक में अमेरिकी अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और शिक्षा आयोजकों ने कदम रखा। उन्होंने जनसंख्या नियन्त्रण के लिए बच्चों को प्रारम्भ से ही जनसंख्या सम्बन्धी ज्ञान कराने और उसमें जनसंख्या नियन्त्रण के प्रति अभिवृत्ति का विकास करने पर बल दिया, कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स्लोन आर बैलैज़डेन ने इसे जनसंख्या शिक्षा की संज्ञा दी।

जहाँ तक भारत में जनसंख्या वृद्धि की बात है इस ओर हमारा ध्यान बहुत पहले गया था और स्वतंत्र होते ही हमने इसके नियन्त्रण के लिए प्रयास भी शुरू कर दिये थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 – 56) के दौरान 1952 में हमारे देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम शुरू किया गया। 1961 की जनगणना ने सरकार को और सावधान कर दिया और उसने परिवार नियोजन सम्बन्धी प्रचार कार्य को गति देना शुरू किया। पर जनसंख्या नियन्त्रण के लिए जनसंख्या शिक्षा पर सर्वप्रथम विचार 1969 में फैमली प्लानिंग एसोशियेशन आफ इण्डिया द्वारा बम्बई में आयोजित राष्ट्रीय

सम्मेलन में किया गया। इस सम्मेलन में जनसंख्या शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव सामने आए -

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद में जनसंख्या शिक्षा प्रकोष्ठ का गठन किया जाए जो पूरे देश के लिए जनसंख्या शिक्षा के स्वरूप और उसकी कार्यविधियों को निश्चित करे और इस क्षेत्र में केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों का मार्गदर्शन करे।
2. सभी स्तर की विद्यालयी शिक्षा और शिक्षक शिक्षा पाठयक्रमों में जनसंख्या शिक्षा को स्थान दिया जाय।
3. जनसंख्या शिक्षा की सामग्री तैयार की जाय, पुस्तकें तैयार की जाएं और उसके पढ़ाने तथा मूल्यांकन की विधियों को विकसित किया जाए।
4. यह शिक्षा इस प्रकार की हो कि बालक यह समझे कि छोटा परिवार सुख का सार होता है। परिवार के आकार को निश्चित किया जा सकता है और परिवार, समुदाय, राष्ट्र और समूचे संसार के हित के लिए परिवार का आकार छोटा होना अति आवश्यक है।

इस सम्मेलन के सुझाव पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद में जनसंख्या प्रकोष्ठ का गठन किया गया इस प्रकोष्ठ ने 1971 में जनसंख्या शिक्षा पर दिल्ली में दूसरे राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में निम्न निर्णय लिये गये -

1. प्रथमिक स्तर पर सबसे अधिक बच्चे पढ़ते हैं उन्हें सुखी परिवार के बारे में सामान्य जानकारी दी जाये। यह जानकारी भाषा और समाजिक विषयों में तत्सम्बन्धी प्रकरण जोड़े जाएँ और बच्चों को जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से अवगत कराया जाय।
2. उच्च प्राथमिक स्तर पर आते आते बच्चे और अधिक समझदार हो जाते हैं। इस स्तर पर भाषा एवं सामाजिक विषयों के साथ साथ जीव विज्ञान में भी तत्सम्बन्धी प्रकरण जोड़े जाएँ और बच्चों को जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से अवगत कराया जाय।
3. माध्यमिक स्तर पर बच्चों को भाषा इतिहास भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, जीव विज्ञान और गणित विषयों के साथ साथ जनसंख्या शिक्षा दी जाय।
4. सभी शिक्षक पाठयक्रमों में जनसंख्या शिक्षा की पाठ्य वस्तु एवं शिक्षण विधियों का समावेश किया जाए और एम.एड. स्तर पर इसे विशेष अध्ययन के रूप में जोड़ा जाए।
5. विद्यालय से बाहर के युवकों को जनसंख्या के प्रति सचेत करने हेतु विद्यालय सामुदायिक केन्द्रों के रूप में कार्य करे।

6. एन.सी.ई.आर.टी. को सबके लिए शीघ्रातिशीघ्र पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए और प्रान्तीय शिक्षा संस्थानों के सहयोग से उसे सभी प्रान्तों में लागू करना चाहिए।

7. विभिन्न प्रान्तों के माध्यमिक बोर्डों को भी इस कार्य में सहयोग प्रदान करना चाहिए।

इन सुझावों के आलोक में हमारे देश में जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में कार्य होने लगा। 1974 में एन० सी० ई० आर० टी० ने जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया और उसे केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों के पास भेजा। कुछ प्रान्तीय सरकारों इसे अपनी सुविधा के अनुसार लागू भी किया। 1980 में एन० सी० ई० आर० टी० ने इस सम्बन्ध में एक सर्वेक्षण किया और यह पाया कि कुछ प्रान्तों में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर भाषा, इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, जीव विज्ञान और गृह विज्ञान के साथ कुछ ऐसे प्रकरण जोड़े दिए गए हैं जिनसे बच्चों की जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक किया जा सकता है और यह भी पाया गया कि कुछ प्रान्तों के शिक्षा पाठ्यक्रमों में भी इसका समावेश कर दिया गया है। परन्तु इस सबसे बच्चों की मानसिकता पर क्या प्रभाव पड़ा इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं हो सका है।

17.10 जनसंख्या वृद्धि समस्या व उनके समाधान

जनसंख्या शिक्षा की समस्याएं असाधारण रूप से जटिल और उलझी हुई हैं। इसका कारण यह है कि जनसंख्या शिक्षा का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या की वृद्धि की गति, वितरण एवं स्वरूप और व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व पर पड़ने वाले उनके मुखर प्रभावों का अध्ययन सम्मिलित है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम जनसंख्या शिक्षा की सार्वभौमिक समस्याओं और उनके समाधान के उपायों का निम्नांकित शीषकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा रहा है यथा-

1. समस्या: छात्रों के लिए जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का अभाव: सभी स्तरों के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का अत्यधिक अभाव है। इस अभाव के फलस्वरूप उनको जनसंख्या वृद्धि के वास्तविक आँकड़ों और व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के जीवन पर इस वृद्धि के प्रभावों का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता है। यही कारण है कि विद्यालय स्तर पर जनसंख्या शिक्षा का प्रसार नहीं हो पा रहा है।

समाधान: पर्याप्त व उपयुक्त साहित्य की व्यवस्था: विद्यालय स्तर पर जनसंख्या शिक्षा के प्रसार को गति प्रदान करने के लिए पर्याप्त एवं उपयुक्त साहित्य की यथाशीघ्र व्यवस्था की जानी आवश्यक है। इस साहित्य का निर्माण सरल एवं सुबोध भाषा वाली पुस्तकों के रूप में किया जाना चाहिए। ताकि प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों को उनका अध्ययन करके, ज्ञान प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो। इसके अतिरिक्त, समाजिक विज्ञान की पुस्तकों में जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए।

2. समस्या: शिक्षकों में जनसंख्या सम्बन्धी ज्ञान का अभाव: सभी स्तरों के विद्यालयों के शिक्षकों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान का पर्याप्त अभाव है। इसके तीन मुख्य कारण हैं -

पहला, अभी तक जनसंख्या शिक्षा पर विद्वानों द्वारा बहुत कम पुस्तकों का लेखन किया गया है। अतः शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती है।

दूसरा, सेवारत शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, शिक्षा विभागों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा कोई संगठित योजना संचालित नहीं की गई है।

तीसरा, कालेजों, विश्वविद्यालयों एवं शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा नामक विषय को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

इन सब कारणों के फलस्वरूप सेवारत एवं नव प्रशिक्षित शिक्षकों में जनसंख्या शिक्षा के समुचित ज्ञान के होने की आशा करना कल्पना मात्र है। समुचित ज्ञान न होने के कारण वे छात्रों को जनसंख्या सम्बन्धी बातों का ज्ञान प्रदान करने में असमर्थ रहते हैं।

समाधान - शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान देने की व्यवस्था:- यदि हम शिक्षकों से यह आशा करते हैं कि ये छात्रों को जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्रदान करें तो यह परम आवश्यक है कि स्वयं शिक्षकों को इस ज्ञान से सम्पन्न करने के लिए उसकी व्यवस्था की जाये। इस कारण व्यवस्था के सम्बन्ध में दो सुझाव दिए जा सकते हैं यथा पहला, राज्यों या शिक्षा विभागों द्वारा जनसंख्या शिक्षा के केन्द्र स्थापित किए जायें और विद्यालयों द्वारा अपने सेवारत अध्यापकों को वहां निश्चित अवधि तक रहने के लिए पूर्ण वेतन पर अवकाश दिया जाये। इन केन्द्रों में अध्यापकों के लिए व्याख्यानों, विचार गोष्ठियों और अध्ययन की सभी सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाए।

दूसरा कालेजों, विश्वविद्यालयों एवं शिक्षक, प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा के विषय को सम्मिलित किया जाये।

यदि इन दोनों सुझावों को व्यावहारिक रूप प्रदान कर दिया जाए तो सेवारत एवं नव प्रशिक्षित दोनों प्रकार के शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा का पर्याप्त ज्ञान हो जायेगा। अतः वे अपने छात्रों को इस ज्ञान से लाभान्वित कर सकेंगे।

3. समस्या: विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी उपकरणों का अभाव:- हमारे विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी उपकरणों का अभाव है। ऐसे विद्यालय के दर्शन दुर्लभ हैं जो इन उपकरणों से पूर्णतया सुसज्जित हों। सामान्य शिक्षा के उपकरणों का संग्रह करने के लिए जितना प्रयास किया जाता है उसका शतांश प्रयास भी जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी उपकरणों को उपलब्ध

करने के लिए नहीं किया जाता है। सम्भवतः इस कारण इन उपकरणों का महँगा होना है। पर यदि प्रतिवर्ष थोड़ा थोड़ा धन व्यय करके इन उपकरणों का संचय किया जाय तो इनका अभाव अवश्य अदृश्य हो सकता है। किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि इनके प्रति लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है परिणामतः हमारे विद्यालयों में नितान्त अभाव है और इस अभाव का जनसंख्या शिक्षा की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

समाधान - उपकरणों की व्यवस्था:- विद्यालय प्रबन्धकों को यह समझना चाहिए कि जितने आवश्यक सामान्य शिक्षा के उपकरण हैं उतने ही आवश्यक जनसंख्या शिक्षा के उपकरण भी हैं। इन उपकरणों की व्यवस्था के लिए सतत् चेष्टा करनी चाहिए। इन उपकरणों में निम्नलिखित पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

1. जनसंख्या शिक्षा के लिए उपयोगी फिल्म और श्रव्य दृश्य सामग्री।
2. छात्रों को अपने देश एवं विश्व की जनसंख्या सम्बन्धी जानकारी प्रदान करने वाले ग्राफ, चार्ट, चित्र, माडल आदि

4. समस्या - जनसंख्या सम्बन्धी शोध कार्य का अभाव:- हमारे देश में जनसंख्या सम्बन्धी शोधकार्य अभी प्रारम्भिक अवस्था में हैं। फलस्वरूप विद्वानों एवं सुशिक्षित व्यक्तियों को भी जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों एवं परिणामों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। अतः सामान्य रूप से जनसंख्या शिक्षा के विषय में अभी तक अधिकांश व्यक्तियों में विविध प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं। यही भ्रान्तियाँ जनसंख्या शिक्षा के विकास में बाधा उपस्थित कर रही हैं।

समाधान - शोधकार्य की व्यवस्था:- व्यक्तियों को जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों एवं परिणामों से भली भाँति अवगत करने के लिए जनसंख्या सम्बन्धी शोधकार्य की उत्तम व्यवस्था की जानी अनिवार्य है। यह कार्य मुख्यतः निम्नलिखित प्रश्नों से सम्बन्धित होना चाहिए-

1. विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है?
2. विद्यालयों की प्रबन्ध समितियों एवं शिक्षा विभागों द्वारा जनसंख्या शिक्षा के प्रसार में कितना और किस प्रकार का योगदान दिया जा सकता है?
3. शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान से पूर्णरूपेण सम्पन्न करने के लिए किस प्रकार के कार्यक्रम उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं?
4. जनसधारण में जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं उपयोगिता के विषय में किन उपायों द्वारा अधिकाधिक विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है?

5. समस्या: अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अभिभावकों द्वारा जनसंख्या शिक्षा का विरोध:- एक अध्ययन के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि अशिक्षित एवं अर्द्ध शिक्षित अभिभावक विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा दिए जाने के विरोधी हैं। उनका विरोध निम्नलिखित चार कारणों पर आधारित हैं-

1. जनसंख्या शिक्षा, परिवार नियोजन का ही दूसरा नाम है। अतः इसका विद्यालय शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है।
2. जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध यौन शिक्षा से है। अतः यह शिक्षा बालकों एवं बालिकाओं के नैतिक चरित्र को भ्रष्ट कर देगी।
3. जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध जनसंख्या विषयक तथ्यों एवं आँकड़ों से है। ये तथ्य एवं आँकड़े इतने कठिन हैं कि अल्प आयु के बालक इनको आत्मसात नहीं कर सकते हैं।
4. जनसंख्या शिक्षा का विचार अन्य देशों से ग्रहण किया गया है। और उन्हीं से प्रभावित होकर इस शिक्षा को विद्यालयों में स्थान दिया जा रहा है। ऐसा किया जाना सर्वथा अनुचित है।

समाधान: अभिभावकों के विरोध की समाप्ति:- विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए अशिक्षित एवं अर्द्धशिक्षित अभिभावकों के विरोध को समाप्त किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अग्रलिखित दो उपायों का प्रयोग किया जा सकता है- पहला - पुस्तिकाओं, समाचारपत्रों, फिल्म प्रदर्शनी और विद्वानों के व्याख्यानों द्वारा जनसंख्या शिक्षा की धारणा का स्पष्टीकरण किया गया है।

दूसरा - विद्यालयों द्वारा जनसंख्या शिक्षा के दिवसों, समारोहों आदि का आयोजन किया जाय और अभिभावकों को उनमें आमन्त्रित करके शिक्षा सम्बन्धी बातों से परिचित किया जाए।

ये उपाय विलम्बकारी और कुछ सीमा तक खर्चीले भी हैं। पर यदि धैर्य और लगन से कार्य किया जाय जो इन उपायों द्वारा अभिभावकों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी उचित धारणा का विकास करके उनके विरोध का अन्त किया जा सकता है।

17.11 सारांश

इसमें दो मत नहीं कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का मूल साधन है। पर कुछ सामाजिक परिवर्तनों के लिए शिक्षा से अधिक महत्व सामाजिक एवं राजनैतिक क्रान्तियों का होता है। जनसंख्या नियन्त्रण विचार नहीं कार्य है। इसके लिए इस समय शिक्षा से अधिक महत्व सामाजिक एवं राजनैतिक क्रान्तियों का है। और इसका सबसे अच्छा साधन जन संचार के माध्यम यथा पोस्टर, पम्पलेट, पत्र पत्रिकाएँ, रेडियो और टेलिविजन हैं।

इसके सन्दर्भ में दूसरा निवेदन यह है कि अब जनसंख्या संबंधी कोरे ज्ञान से काम चलने वाला नहीं है। अब परिवार नियोजन सम्बन्धी कानून बनाने की आवश्यकता है और उसका सख्ती से पालन करने की आवश्यकता है। जब चोटी के नेता स्वार्थ हित में राष्ट्रहित की बात नहीं सोच पाते तो साधारण जनता राष्ट्रहित की बात कैसे सोच सकता है। अब आवश्यकता है वोट की राजनिती छोड़कर राष्ट्रहित की राजनिती करने की। शासनतन्त्र कोई भी हो उसे लोकहित की बात अवश्य सोचनी चाहिए एवं करनी चाहिए। परिवार नियोजन में लोकहित छुपा है। अतः भारत में ही नहीं इसका पालन पूरे संसार में होना चाहिए। ईश्वर सबको सद्बुद्धि दे।

17.12 शब्दावली

जनसंख्या शिक्षा: जनसंख्या शिक्षा का अर्थ है कि ऐसा शैक्षिक पाठ्यक्रम जो जनसंख्या का अध्ययन इस प्रकार से करे कि तीव्रता से बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में तर्क संगत समाधान का निर्णय लेने में छात्रों की सहायता कर सके।

जनसंख्या नियंत्रण : प्राकृतिक एवं मानवीय प्रयासों द्वारा बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या को काबू में लाना।

अनुकूलतम जनसंख्या : किसी भी देश के प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूल जनसंख्या ।

17.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.दोनों ही 2.सभी स्तरों पर 3. उपरोक्त सभी

17.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा- डॉ० जे. एस. वालिया
2. भारतीय शिक्षा का इतिहास- लाल एवं शर्मा
3. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ - पी.डी. पाठक
4. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ- डॉ० गुरशरण त्यागी
5. भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास- श्रीमती स्वाति जैन
6. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ - डा० आर. ए. शर्मा

17.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
2. जनसंख्या शिक्षा के विकास में बाधक कारकों को बताइये तथा समाधान के सुझाव दीजिए?
3. जनसंख्या शिक्षा के विकास में बाधक कारकों को बताइये।

इकाई 18: जनसंख्या नियंत्रण हेतु शैक्षिक कार्यक्रम (Educational programmes for Population Control)

इकाई की रूपरेखा

- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 उद्देश्य
- 18.3 मानवीय जनसंख्या की अभिवृद्धि का इतिहास
- 18.4 मानव जनसंख्या को प्रभावित करने वाले कारक
- 18.5 जनसंख्या वृद्धि की समस्याएं
- 18.6 जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण के उपाय
- 18.7 जनसंख्या विस्फोट
- 18.8 जनसंख्या विस्फोट के कुप्रभाव
- 18.9 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति

 18.10 सारांश

18.11 शब्दावली

18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.13 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

आज ज्ञान के विस्फोट तथा जनसंख्या के विस्फोट की अधिक चर्चा रहती है। ज्ञान दस वर्ष में दो गुना होता है। जनसंख्या 25 वर्ष में दो गुनी होती है। ज्ञान वृद्धि की दर जनसंख्या वृद्धि से ढाई गुनी अधिक है। जनसंख्या की वृद्धि की समस्या अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मनुष्य ने पृथ्वी पर व्यापक परिवर्तन किये हैं। मानव पृथ्वी की सतह पर परिवर्तन लाने वाला अधिक सशक्त कारक माना जाता है जिसके समान कोई अन्य कारक नहीं है। वैज्ञानिक, औद्योगिक, तकनीकी क्षेत्र में उसकी पहुँच से भी कुछ परे नहीं है। उनके प्रकरण जो विवादास्पद है जैसे आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा शिक्षा से सम्बन्धित समस्याएँ हैं, जो जनसंख्या की वृद्धि से जुड़ी हुई है। जन्म दर में हस्तक्षेप करने को अनैतिक कार्य तथा अपराध मानते हैं, क्योंकि उच्च जन्म दर भुखमरी तथा अन्य प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। यह कहा जाता है कि यदि किसी प्रकार जनसंख्या की वृद्धि होती रही, तब भविष्य में अकाल और भुखमरी को कोई रोक नहीं सकता है।

पर्यावरण की अधिकांश समस्याएँ तथा प्रदूषण का मुख्य कारण जनसंख्या का विस्फोट अथवा जनसंख्या वृद्धि ही है।

मानव जनसंख्या का विस्फोट अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देता है। सबसे गम्भीर समस्या पर्यावरण प्रदूषण की है, जिसे जनसंख्या के विस्फोट ने ही उत्पन्न किया है। मानव तथा समाज की प्रसन्नता तथा खुशहाली पर्यावरण की गुणवत्ता पर ही निर्भर है। इसीलिए आज की आवश्यकता पर्यावरण प्रबन्धन की है। प्रस्तुत इकाई में आप जनसंख्या नियंत्रण हेतु शैक्षिक कार्यक्रम के बारे में अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाले कुप्रभावों के बारे में बता पायेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनसंख्या नियन्त्रण के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण पर पड़ने वाले कुप्रभावों की व्याख्या कर पायेंगे।

- जनसंख्या सम्बन्धी योजना व नीतियों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय व साधनों को स्पष्ट कर सकेंगे।

18.3 मानवीय जनसंख्या की अभिवृद्धि का इतिहास

मानवीय जनसंख्या में अतीत से समय समय पर वृद्धि होती रही है। परन्तु 1800 ई० के मध्य जनसंख्या में वृद्धि अधिक हुई है। मानवीय जनसंख्या की वृद्धि का सम्बन्ध पर्यावरण तथा मनुष्य के सम्बन्धों पर आधारित होता है। मानव की परिस्थितिकी तथा जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति का अध्ययन तीन स्तरों पर किया जाता है।

1. प्राचीन मानव की परिस्थितिकी
2. कृषि मानव की परिस्थितिकी
3. औद्योगिक मानव की परिस्थितिकी

1. प्राचीन मानव की परिस्थितिकी : जब से मनुष्य के मस्तिष्क का विकास हुआ है और मानव इतिहास में क्रान्ति भी आई है। प्राचीन मानव की परिस्थितिकी तथा प्राकृतिक समुदाय की स्थिति अस्पष्ट रही है क्योंकि वह अपने खाने की खोज तक ही सीमित रहा है।

प्राचीन युग में मानव छोटे छोटे समूह में जंगलों में रहता था तथा अपने भोजन के लिए जानवरों का शिकार करता था तथा फलों को एकत्रित करता था तथा अक्सर जंगली खाने पर ही निर्भर रहता था।

मनुष्य शारीरिक और मानसिक दृष्टि से शाकाहारी और मांसाहारी दोनों ही था। मनुष्य पहला जीवित प्राणी है जो शाकाहारी अर्थात् अपना भोजन पौधे से प्राप्त करता था। इसके अतिरिक्त अपने भोजन हेतु जानवरों का शिकार भी करता था। प्राचीन काल में कुछ फलों, बीजों, तनों, जड़ों को भी अपने भोजन के रूप में उपयोग करता था। वह मांसाहारी जानवरों का मांस भी अधिक पसन्द करता था।

प्राचीन युग की इस अवस्था में मनुष्य की संस्कृति भोजन चक्र के एक घटक के रूप तक ही सीमित रही और जनसंख्या वृद्धि से भोजन की जटिलता बढ़ती गई। प्रत्येक वर्ष नष्ट पौधों को लगाना और उनका प्रतिवर्ष उपभोग करना था। इस प्रकार मनुष्य का मुख्य कार्य आखेट करना तथा खाने हेतु फलों, जड़ों आदि को एकत्रित करना था।

कृषि मानव की परिस्थितिकी : लगभग 7 हजार ई0 पूर्व मिश्र में आदि मनुष्य ने अपने पर्यावरण में सुधार लाने का प्रयास आरम्भ कर दिया था और विशिष्ट प्रकार के पौधों को उगाना आरम्भ किया जिससे वे अनाज पैदा करने लगे। जानवरों का पालना भी आरम्भ किया उनके लिए अनाज को भोजन के रूप में प्रयुक्त करने लगे। यदि परिस्थितिकी शब्दावली में कहा जाए तब यह उपयुक्त होगा कि व्यक्तिगत रूप में उसने भोजन चक्र में ही परिवर्तन किया। कृषि के विकास के साथ मनुष्य ने अपने रहने हेतु आवास की व्यवस्था करनी आरम्भ की थी। जिससे वे स्थाई रूप से निवास कर सके व सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि से अपने जीवन को सुरक्षित रख सके। उनका जीवन अपेक्षाकृत सुरक्षित हुआ और स्थाई रूप से भोजन की व्यवस्था करने लगे। इस प्रकार उनके बच्चे भी जीवित रहने लगे। शिशु मृत्युदर भी कम हुआ फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि होना आरम्भ हुआ। आठ हजार ई0 पूर्व विश्व की कुल जनसंख्या 50 लाख के लगभग थी। विश्व जनसंख्या 1650 में 4.5 अरब हो गई।

3. औद्योगिक मानव परिस्थितिकी: मानवीय जनसंख्या में वृद्धि होती रही और मनुष्य पर्यावरण को परिवर्तित करता गया। परिणाम यह हुआ कि जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई। पहियों के आविष्कार ने यातायात का विकास किया और एक स्थान से भोजन की सामग्री दूसरे स्थान पर पहुँचाना आरम्भ हो गया। एक स्थान पर अधिक जनसंख्या केन्द्रित होने लगी। कोयला और रेल की खोज हुई जिससे ईंधन का क्षेत्र बढ़ा, जिसका प्रभाव जनसंख्या की वृद्धि पर भी हुआ। मशीनों के आविष्कार ने औद्योगिक मानव का विकास किया। भोजन की सामग्री को वे संचित भी करने लगे। औषधि विज्ञान का विकास हुआ जिससे मृत्यु दर कम हुई। कृषि विज्ञान से अधिक अनाज का उत्पादन होने लगा। पालतू जानवरों के अच्छे साधन विकसित हो गए।

इस औद्योगिक युग में जनसंख्या की वृद्धि हुई और जन्म दर में भी अधिक वृद्धि हुई। सन 1930 तक विश्व की आबादी 1 खरब हो गई थी तथा 1930 में 2 खरब तथा 1960 तक 3 खरब हो गई थी। 1830 से 1930 के मध्य जनसंख्या की वृद्धि 10 करोड़ के लगभग हुई थी।

आधुनिक समय में जनसंख्या की वृद्धि की दर अधिक है। प्रतिवर्ष 55 करोड़ की वृद्धि हो रही है। 1.5 लाख वृद्धि प्रतिदिन। 6300 प्रति घण्टा या 100 व्यक्ति प्रतिमिनट की दर से वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त मृत्यु दर जन्म दर से अधिक है। यह अनुमान किया गया कि एक खरब जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि तथा औद्योगिक स्रोत कर सकते हैं।

जनसंख्या विज्ञान के आधार पर विस्तृत सांख्यिकी के कुछ निष्कर्षों को यहां पर दिया गया है -

1. जनपद की अपेक्षा गाँव में लोग कृषि करते हैं, उनकी जन्म दर अधिक होती है। जितना बड़ा शहर होता है जन्मदर उतनी कम होती है।
2. किसी क्षेत्र में शहर हो या गाँव हो निम्न आर्थिक स्तर वर्ग के व्यक्तियों में जन्मदर अधिक होती है।

3. जब किसी मानवीय वर्ग में समृद्धि का विकास होता है तब उनमें जन्म दर कम हो जाती है।
4. पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्युदर कम होती है।
5. समृद्धि के विकास से तलाक की दर भी अधिक होती है।

18.4 मानव जनसंख्या को प्रभावित करने वाले कारक:

जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मनुष्य ने पर्यावरण पर नियन्त्रण करने का प्रयास किया है। वे साधन इस प्रकार से हैं :-

1. कृषि के द्वारा खाद्य पदार्थों का उत्पादन, खाद्य पदार्थों की सुरक्षा करना, बिना मौसम के खाद्य पदार्थों को कोल्ड स्टोर के द्वारा उपलब्ध कराना तथा बेयर हाउस भण्डारण में अनाजों का संचय करना।
2. सौर मण्डल की ऊर्जा का उपयोग करना, परमाणु ऊर्जा का उपयोग, विद्युत शक्ति का उपयोग करने से मानव कार्य की क्षमता में वृद्धि हुई है।
3. पशुओं के शत्रुओं को समाप्त करना जैसे: शेर, चीते, तेन्दुओं, जहरीले साँप व जन्तुओं आदि से जीवन अधिक सुरक्षित हुआ है।

औषधि विज्ञान का विकास होना तथा उसकी सुविधाओं उपलब्ध होने से बीमारियों पर भी नियन्त्रण पाने का प्रयास किया है।

उपरोक्त पर्यावरण घटकों पर नियन्त्रण के फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई है। परन्तु कुछ ऐसे अभिक्रम हैं, जिनसे जनसंख्या नियंत्रण का प्रयास किया गया है।

1. **खाद्य पदार्थ का भण्डारण:** इसकी सुविधा से फसल न होने पर, कृषि के लिए मौसम ठीक न होने के कारण फसल नष्ट हो जाने पर, ऐसी स्थिति में भण्डारण की सुविधा से अकाल पड़ने से सुरक्षा हो जाती है।
2. **अपर्याप्त आवास:** आवास असुविधाओं के कारण गर्मी, सर्दी तथा बरसात के मौसम में मृत्यु अधिक हो जाती है। बीमारियाँ भी बढ़ जाती हैं।
3. **प्राकृतिक प्रकोप:** जैसे बाढ़ का आना, सूखा पड़ना, ज्वालामुखी विस्फोट, भूचाल आना तथा आँधी का आना जैसे प्राकृतिक प्रकोप मानव जीवन को प्रभावित करते हैं। इसके कारण मृत्यु दर बढ़ जाती है और जनसंख्या कम हो जाती है।

4. युद्ध तथा महायुद्ध: अतीत काल से मानव जनसंख्या में युद्ध तथा महायुद्ध होते रहे हैं जिससे मनुष्यों का संहार होता रहा है। मानव जाति में स्पर्धा की भावना तथा एक दूसरे पर विजय पाने की प्रकृति होने के कारण युद्ध हुआ करते हैं। युद्ध के फलस्वरूप हमेशा मृत्यु दर में वृद्धि होता है।

5. बीमारियाँ तथा महामारी: अतीत काल से बीमारियाँ तथा महामारियों से जनसंख्या कम होती रही है। औषधि विज्ञान के विकास होने पर भी बीमारियाँ पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो सकी है। अधिकांश मृत्यु का कारण बीमारियाँ ही होती है।

6. विस्फोट और दुर्घटनाएं : आज के समय में विस्फोट अधिक हो रहे हैं। वायुयान, रेल दुर्घटनाओं में बड़ी संख्या में जन हानि, सुड़क दुर्घटनायें होती है। इन विस्फोटों तथा दुर्घटनाओं से भी जनसंख्या में कमी आती है। उपरोक्त सभी कारक जनसंख्या वृद्धि पर लगाम लगाता है।

18.5 जनसंख्या वृद्धि की समस्याएं

मानवीय जनसंख्या वृद्धि की समस्यायें दो प्रकार की होती हैं -

एक वह देश जिसकी जनसंख्या बहुत अधिक हो चुकी है तथा दूसरा वह देश जिसकी जनसंख्या कम है जैसे कनाडा, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया तथा यूरोपीय देश है, सबकी समस्याएं अलग अलग हैं। कम जनसंख्या वाले देशों की समस्यायें दूसरे प्रकार की है यहाँ उनका वर्णन करना आवश्यक नहीं है। यहाँ उन्ही देश की समस्याओं का वर्णन किया गया है जिन देशों की जनसंख्या अधिक है जैसे चीन, भारत, बांग्लादेश तथा पाकिस्तान।

मानव जनसंख्या की वृद्धि का प्रभाव स्रोतों तथा साधनों पर अधिक पड़ता है। क्योंकि उनका विशेष रूप से कृषि योग्य भूमि पर अधिक दबाव पड़ता है फलस्वरूप सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितिकी और पर्यावरण संबंधी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। पर्यावरण की समस्यायें स्थान, समय के अनुसार तथा क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार विविध प्रकार की होती है। यहाँ उन समस्याओं का वर्णन किया गया है जो राष्ट्र विकसित हो रहे हैं जिनकी जनसंख्या भी अधिक है।

1. विकासशील देशों की समस्यायें: विश्व की कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत चीन तथा 16 प्रतिशत भारत में है। विकासशील देशों में विश्व की 75 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। यहाँ तकनीक का विकास निम्न स्तर का है जिसका प्रभाव कृषि की क्षमता पर पड़ता है और यह औद्योगिक विकास में भी बाधक है जबकि स्थानीय स्रोत पर्याप्त रूप से उपलब्ध है।

2. विकसित देशों की जनसंख्या की समस्याएं: विकसित देशों में शहरीकरण अधिकतया यहाँ के औद्योगिक तथा तकनीकी विकास पर निर्भर करता है। इन देशों में कृषि का विकास भी बड़े स्तर पर हुआ है। इन देशों में औद्योगिक तथा तकनीकी विकास भी हुआ है। फिर भी जनसंख्या की

समस्यायें इन राष्ट्रों की अपनी ही हैं। विकासशील देशों की जनसंख्या वृद्धि सम्बंधित समस्याएं निम्न प्रकार से हैं;

विकासशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर और अभिवृद्धि तेजी से हो रही है। बेरोजगारी, आवास की सुविधाओं का अभाव, स्वास्थ्य संबंधी अल्प सुविधायें, प्राकृतिक स्रोतों का उचित उपयोग न होना तथा औद्योगिक विकास धीमी गति से होना आदि प्रमुख समस्यायें हैं। इन समस्याओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है।

1. जनसंख्या की वृद्धि में तीव्रता: अधिकांश विकासशील देशों में जन्म दर अधिक है और मृत्यु दर कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। क्योंकि औषधि विज्ञान का विस्तार तेजी से हो रहा है तथा सभी विकासशील देश परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपना रहे हैं और उन्हें बढ़ावा भी दिया जा रहा है तथा इसके लिए प्रयास भी किया जा रहा है। परन्तु भारत में इसे गंभीरता से नहीं लिया जा रहा है। जनसंख्या का कृषि, आवास, शिक्षा संस्थाओं तथा समाजिक सुविधाओं पर बोझ अधिक हो रहा है। प्रत्येक स्थान पर लम्बी कतारें लगी दिखाई देती हैं।

2. बेरोजगारी की समस्या: विकासशील देशों की बड़ी जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, द्वितीय स्थान उद्योग का है क्योंकि औद्योगिक विकास कम हुआ है। शिक्षित व्यक्तियों के लिये अवसर कम हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से व्यक्ति शहरों की ओर नौकरी की खोज में आते हैं इसलिये शहरों की आबादी तेजी से बढ़ रही है। इसका परिणाम यह है कि सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरण की समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं।

3. रहन सहन के स्तर में गिरावट व भोजन की गुणवत्ता में हास: जनसंख्या वृद्धि के कारण पौष्टिक तथा सन्तुलित आहार में कमी होती जा रही है। रहन सहन का स्तर भी गिरता जा रहा है। क्योंकि जनसंख्या वृद्धि अनुसार आवास सुविधायें भी पर्याप्त रूप से नहीं बढ़ पा रही हैं। स्वास्थ्य की समस्यायें भी बढ़ रही हैं। और औषधि की सुविधायें भी पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि आर्थिक स्रोतों का अभाव है जिसका सीधा प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है।

4. नगरीकरण की समस्या : शहरों का विस्तार तेजी से हो रहा है। जिसके कारण यातायात पर दबाव बढ़ रहा है। जल वितरण व सीवर की समस्या हो रही है। फैक्टरी तथा मिलों के धुएँ से वायु और जल प्रदूषण बढ़ रहा है। यातायात के शोर गुल से ध्वनि प्रदूषण बढ़ रहा है। इसके कारण अनेक प्रकार की मानसिक हृदय तथा श्वास की बीमारियाँ बढ़ रही हैं।

नगरों का विस्तार होने से झुग्गी तथा झोपड़ी में रहने वालों की संख्या भी बढ़ती है जिससे गन्दगी अधिक हो रही है जो शहरों की मुख्य समस्या है। इसके अतिरिक्त अधिक उपजाऊ भूमि को आवास तथा सड़को के लिये घेरते जा रहे हैं तथा कारखानों का विकास भी शहरों में हो रहा है। इस प्रकार कृषि की उपजाऊ भूमि भी कम होती जा रही है।

5. कृषि स्रोतों का समुचित प्रबन्धन न होना: विकासशील देशों का मुख्य आर्थिक स्रोत कृषि है। आज भी कृषि परम्परागत ढंग से की जा रही है। आर्थिक स्रोत तथा साधनों का अभाव है। इसलिए किसान खाद तथा कृषि यन्त्रों का उपयोग नहीं कर पा रहा है। इस कारण कृषि उत्पादन की दर कम है। खेतों का आकार छोटा होने के कारण कृषि यन्त्रों का उपयोग नहीं हो पाता है। यह भी कृषि विकास तथा उत्पादन में बाधा करते हैं तथा कृषि उत्पादन की दर भी कम है।

6. औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि की गति धीमी है: विकासशील देशों में औद्योगिक क्षेत्र में विकास की गति धीमी है। उसका कारण आर्थिक सुविधाओं का अभाव है जिससे प्राकृतिक स्रोतों का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। औद्योगिक प्रशिक्षण तथा कार्य कुशलता का विकास नहीं हुआ है। क्योंकि अधिकांश जनसंख्या गरीब है। यह उत्पादों को नहीं खरीद सकती है। इन कारणों से औद्योगिक विकास की गति धीमी है।

7. व्यक्तियों में रूढ़िवादी प्रवृत्ति : विकासशील देशों की गम्भीर समस्या व्यक्तियों की रूढ़िवादी प्रवृत्ति है। वह अपनी परम्पराओं को छोड़ना नहीं चाहते और नये औद्योगिक तथा तकनीकी आयामों को स्वीकार नहीं करते हैं। इनमें धार्मिक प्रवृत्ति भी अधिक होती है। इसलिये जीवन के नये मूल्यों तथा नये ढंग को भी स्वीकार नहीं करते हैं। इस प्रवृत्ति के प्रौढ़ शिक्षा तथा सतत् शिक्षा व जनसंख्या की शिक्षा के कार्यक्रमों से ही दूर किया जा सकता है।

8. ग्रामीण जनसंख्या का अधिक विस्तार: भारतवर्ष में तथा अन्य विकासशील देशों में लगभग 70 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या निवास करती है। भारत में स्वतंत्रता के बाद जो विकास हुये यथा - शिक्षा के विस्तार हेतु महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, व्यवसायिक पाठ्यक्रम तथा संस्थायें, अस्पताल, बैंक सेवायें, संचार माध्यमों का विकास एवं विस्तार, मनोरंजन के साधन तथा सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुविधाओं का विकास शहरों में ही किया गया है जहाँ देश की 25 प्रतिशत जन संख्या रहती है। इस कारण गाँव से शहर सुरक्षित है। कृषि के कार्यों में जन शक्ति का अभाव होने लगा है। गाँव का जीवन स्तर तथा प्रति व्यक्ति आय भी कम है।

9. जनसंख्या की वृद्धि से पर्यावरण की समस्या: पर्यावरण की अधिकांश समस्यायें जनसंख्या की वृद्धि के कारण ही हैं। आर्थिक, कृषि एवं औद्योगिक विकास जनसंख्या की वृद्धि के कारण देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रही है। जनसंख्या की वृद्धि पर्यावरण में अधोलिखित समस्यायें उत्पन्न करती हैं।

1. पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट आती है।
2. भोजन तथा खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

3. कृषि के उत्पादन के लिए रासायनिक खादों का उपयोग करने तथा कृषि के पौधों की बीमारियों के लिए दवाओं का प्रयोग भी पर्यावरण में प्रदूषण उत्पन्न करता है। अनेक प्रकार की बीमारियों का फैलाता है।
4. जनसंख्या वृद्धि से नगरीकरण अधिक होता है। अर्थात् नगरों तथा कस्बों का विस्तार होता है। जिससे जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण अधिक होता है।
5. औद्योगिक तथा तकनीकी का विकास ही देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। परन्तु इनके विकास से भी पर्यावरण, जल, वायु, भूमि प्रदूषण होता है।
6. जनसंख्या की वृद्धि से जीवन स्तर भी गिरता है और अर्थिक स्तर भी नीचा हो जाता है।
7. उच्च शिक्षा सुविधाओं में भी कमी जाती है क्योंकि जिस गति से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उस गति से शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि नहीं हो पा रही है। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों पर निरंतर जनसंख्या का दबाव दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है।

इसके अतिरिक्त व्यवसायिक तथा तकनीकी संस्थाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव बढ़ रहा है, जिसके कारण छात्रों में असन्तोष बढ़ रहा है और अनुशासनहीनता भी बढ़ रही है।

8. जनसंख्या वृद्धि के कारण मानव की गुणवत्ता में भी गिरावट आयी है। समाज में बुराईयां, भ्रष्टाचार तथा दोष बढ़ रहे हैं। राजनीति, धर्म, समाज तथा संस्कृति के क्षेत्र में भी मूल्यों का हास हो रहा है। इसलिए आज नैतिक शिक्षा, मूल्यों में शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। मानव में भी शारीरिक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रदूषण हो रहा है जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि ही है।

इतना ही नहीं आज प्रत्येक क्षेत्र में यथा सरकारी सेवाओं तथा सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में भी गिरावट आई है। क्योंकि सभी क्षेत्रों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा है। प्रत्येक कार्यालय में लम्बी कतारें लगी दिखाई देती हैं। इस कारण इन सभी क्षेत्रों में गिरावट आई है। यदि हम इन सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान करना चाहते हैं तब जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण करना होगा। जनसंख्या में पलायन की प्रवृत्ति को भी नियन्त्रित करनी होगी। सरकार को बिना किसी अन्य विचार के जनसंख्या के नियन्त्रण हेतु कानून बनाना होगा तथा उन्हें कड़ाई से लागू भी करना होगा। तभी इस दिशा में सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकेंगे। सभी के लिए समान कानून लागू करना होगा। सभी परिवारों के लिए समान मानक प्रयुक्त करने होंगे।

18.6 जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण के उपाय-

परिवार-नियोजन व जनसंख्या शिक्षा

भारत में जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण करने के लिए दो उपायों का प्रयोग किया जा रहा है। यथा 1. परिवार नियोजन व 2. जनसंख्या शिक्षा।

इन दोनों उपायों के सम्बन्ध से हमें इण्डिया 1979 में निम्न विवरण मिलते हैं। भारत सरकार ने यह अनुभव किया कि जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, व्यक्तियों के रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता देने के स्थान पर बाधा उपस्थित करेगी। अपने इस अनुभव के कारण सरकार ने सन् 1952 में परिवार नियोजन का कार्यक्रम आरम्भ किया। इस कार्यक्रम में चिकित्सा सम्बन्धी सेवाओं को प्राथमिकता दी गई। सन् 1961 की जनगणना के परिणामों के प्रकाशन के पश्चात सरकार को यह ज्ञात हुआ कि जनसंख्या वृद्धि की वास्तविक दर अनुमानित दर से अधिक थी। अतः सरकार ने चिकित्सा सम्बन्धी सेवाओं के साथ साथ प्रचार का कार्य भी आरम्भ किया। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए अनेक योजनाएं कार्यान्वित की गईं। यथा फिल्मों का प्रदर्शन, पुस्तिकाओं का प्रकाशन, पंचायतों एवं अन्य स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से परिवार नियोजन सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसार और विद्यालय के पाठ्यक्रम में जनसंख्या शिक्षा को सम्मिलित करने का निश्चय किया।

क्योंकि भारत में परिवार नियोजन का कार्य पूर्णरूपेण स्वैच्छिक है। इसलिए सरकार को उल्लिखित उपायों के बावजूद जनसंख्या वृद्धि की दर को कम करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। अतः सरकार ने जनसंख्या शिक्षा की योजना कार्यान्वित की।

भारत सरकार ने जनसंख्या शिक्षा का विचार अमेरिका के शिक्षाविदों से ग्रहण किया। इन शिक्षाविदों में उल्लेखनीय है कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बेलैण्ड। डा० मलैया के अनुसार सन् 1960 के बाद ही जनसंख्या शिक्षा के सम्बन्ध में कार्य प्रारम्भ किया गया। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बेलैण्ड महोदय ने इस सम्बन्ध में बहुत कार्य किया तथा भारत में जनसंख्या शिक्षा के प्रसार का श्रेय इन्हीं को है।

प्रोफेसर बेलैण्ड के कार्य से प्रभावित होकर भारत सरकार के आदेशानुसार परिवार नियोजन संघ ने 7 और 8 मार्च 1968 को बम्बई में एक सेमिनार का आयोजन करके जनसंख्या शिक्षा के प्रसार का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। हमारे देश की सरकार और शिक्षाविदों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया और यह विचार व्यक्त किया कि जनसंख्या शिक्षा को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना आवश्यक है। उसी समय से इस विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान किए जाने का सतत प्रयास किया जा रहा है।

भारत सरकार ने सन 1980 में राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना की स्थापना की। इस परियोजना के माध्यम से स्कूल कालेजों के छात्रों तथा वयस्क और अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों तक छोटे परिवार एवं जनसंख्या सम्बन्धी अन्य मुद्दों का संदेश पहुंचाने का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कदम उठाए गए। यह परियोजना अब विद्यालय एवं अनौपचारिक शिक्षा, कालेज तथा

वयस्क परियोजना के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है। इस परियोजना ने विद्यालय शिक्षा प्रणाली में जनसंख्या शिक्षा को अब संस्थानिक रूप प्रदान करने के लिए कदम उठाए हैं। इस समय यह परियोजना 29 राज्यों में एवं तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में चल रही है। सातवीं योजना में व्यवस्थित रूप से अनौपचारिक क्षेत्रों की ओर उन्मुख किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा के सभी स्तरों पर छोटा परिवार सम्बन्धी मानदण्ड को पाठ्यक्रम के एक मुख्य घटक के रूप में अपनाने के लिए कहा गया। जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम के माध्यम से इसे प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। माध्यमिक स्तर पर भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, विज्ञान भाषा की पाठ्य पुस्तकों और इनके पाठ्यक्रमों में जनसंख्या से सम्बंधित विषय वस्तु को एकीकृत किया गया है। यह विषय वस्तु जनसंख्या और आर्थिक विकास, समाजिक विकास, पर्यावरण, स्वास्थ्य और पोषण, परिवारिक जीवन तथा जनसंख्या डायनामिक्स जैसे क्षेत्रों से ली गई है। यह विषय वस्तु 6 प्रमुख शीर्षकों से सम्बन्धित है। जो इस प्रकार है -

1. परिवार का आकार और परिवार कल्याण
2. विलम्ब से विवाह
3. उत्तरदायी अभिभावत्व
4. जनसंख्या परिवर्तन तथा संसाधन का विकास
5. जनसंख्या से जुड़े हुए मूल्य
6. महिलाओं का स्तर

18.7 जनसंख्या विस्फोट

पृथ्वी पर निरन्तर बढ़ती जनसंख्या आज विश्व में चिन्ता का प्रमुख कारण है क्योंकि इस वृद्धि ने लगभग सभी देशों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है और उनकी प्रगति में बाधाएं उत्पन्न की है। बढ़ती जनसंख्या देश में उपलब्ध साधन तथा उपभोक्ताओं के अनुपात को गड़बड़ा देती है। विकसित और विकासशील देशों में यह विविध प्रकार की समस्याओं को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसमें से प्रमुख समस्याएँ निम्न प्रकार है:-

1. भोजन कपड़ा, मकान तथा पीने योग्य पानी का अभाव,
2. रहने का निम्न स्तर,
3. निरक्षता की समस्या

4. चिकित्सा सुविधा की कमी
5. बेरोजगारी
6. शिक्षा की अल्प सुविधायें
7. शहरीकरण इसके फलस्वरूप मलिन बस्तियों, ड्रग्स सेवन आदि को जन्म मिला है
8. जनाधिक्य की समस्या
9. प्राकृतिक संसाधन जैसे वायु, जल, वनस्पति आदि की सीमित उपलब्धता
10. वनों का विनाश
11. प्रदूषण में वृद्धि - श्रीमति इन्दिरा गाँधी के शब्दों में “अधिक जनसंख्या गरीबी को बुलावा देती है और गरीबी प्रदूषण को जन्म देती है”।
12. अत्यधिक कोलाहल, ध्वनि प्रदूषण, समाजिक प्रदूषण आदि।

18.8 जनसंख्या विस्फोट के कुप्रभाव

भारत में जनसंख्या विस्फोट के कुप्रभाव वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में उभर कर सामने आ गये हैं। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने के कारण प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि नहीं हुई है। फलस्वरूप अधिकांश व्यक्तियों का रहन सहन का स्तन निरन्तर गिरता चला जा रहा है। इससे भी अधिक दुख की बात यह है कि धनाभाव ने कितने ही व्यक्तियों को चिन्ता का शिकार बना दिया है जिसका कुफल वे अपने स्वास्थ्य को खोकर या मानसिक एवं संक्रामक रोगों से ग्रस्त होकर जीने को मजबूर होते हैं। इसके अतिरिक्त उन व्यक्तियों की संख्या कम नहीं है जिनको धनाभाव के कारण न तो पेट भरने के लिए भोजन मिलता है, न तन ढकने को कपड़ा और न रहने के लिए मकान। इन बदनसीब व्यक्तियों को हजारों की संख्या में नगर के फुटपाथ पर अपनी जिन्दगी के दिन गिनते हुए देखा जा सकता है।

जनसंख्या की असाधारण वृद्धि ने सामाजिक तनाव और सामाजिक दूरी को जन्म देकर हमारे देश की सामाजिक एकता को तहस नहस करने की खुली चुनौती दे दी है। इस एकता के विनाश का दुष्परिणाम ग्रामों में विशेष रूप से दिखाई दे रहा है।

18.9 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति

अप्रैल 1976 में घोषित जनसंख्या नीति में संशोधन किया गया। संशोधन नीति की महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं -

1. परिवार कल्याण से सम्बन्धित चिकित्सा सेवाओं तथा पुनर्जनन योग्य बनाने वाली सेवाओं की निशुल्क व्यवस्था,
2. माता तथा बच्चे के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों को महत्व देना,
3. औपचारिक तथा अनौपचारिक माध्यमों के द्वारा महिलाओं के शिक्षा स्तर में सुधार लाना,
4. लड़कों व लड़कियों की विवाह आयु बढ़ाकर क्रमशः 21 तथा 18 वर्ष करना,
5. जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा पर अधिक बल देना,
6. राज्य सरकारों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का 8 प्रतिशत विशेष रूप से परिवार कल्याण कार्यों के निष्पादन तथा सफलता से सम्बन्धित करना,
7. परिवार कल्याण के कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा प्रचार माध्यमों का पूरी तरह उपयोग करना जिनमें प्रसार दृष्टिकोण भी शामिल है।
8. भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के सभी मन्त्रालयों तथा विभागों को परिवार कल्याण कार्यक्रम से सम्बद्ध करना।

18.10 सारांश

आज हमारा देश में जनसंख्या एक विराट रूप ले चुकी है। हालांकि ज्ञान का स्तर भी बढ़ा है। शिक्षा के नए नए आयाम भी स्थापित किए जा रहे हैं। भारत सरकार व राज्य सरकारें मिलकर जनसंख्या नियन्त्रण करने में अपना काम लगातार कर रही है। लेकिन उसके बावजूद भी जनसंख्या नियन्त्रण नहीं हो पा रही है। अधिकांश लोग बच्चे के जन्म को भगवान का देन मानते हैं और वे सरकार द्वारा चलाए जा रहे नीतियों को मानने में संकोच करते हैं।

अतः अब सरकार को चाहिए कि इस नियम का सख्ती से लागू करे और साथ ही शिक्षा के साधनों द्वारा लोगों के दिलों में यह बात बैठाए कि छोटा परिवार ही सुखी परिवार होता है। उस परिवार को हर प्रकार की सुविधा प्रदान करना चाहिए।

18.11 शब्दावली

1. **जनसंख्या अध्ययन:** जनसंख्या की प्रक्रिया का वर्णन, गतिविधि तथा सांख्यिकी विश्लेषण करने वाला विज्ञान।
2. **जन्मदर:** एक हजार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष पैदा होने वालों की संख्या जन्मदर कहलाती है।
3. **मृत्युदर:** एक हजार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष मरने वालों की संख्या को मृत्युदर कहते हैं।
4. **शिशु मृत्युदर:** एक हजार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष मरने वाले शिशुओं की संख्या को शिशु मृत्युदर कहते हैं।
5. **जीवन आकांक्षा:** मरने वालों की औसत आयु को जीवन आकांक्षा कहते हैं। भारत वर्ष में जीवन आकांक्षा 54 वर्ष की आयु है। जबकि न्यूजीलैण्ड में 74 वर्ष तथा ब्रिटेन में 75 वर्ष की आयु है। इसका कारण यह है कि भारत में शिशु मृत्युदर अधिक है क्योंकि शिशुओं के मरने की संख्या अधिक होती है।
6. **प्राकृतिक वृद्धि:** प्रति एक हजार की जनसंख्या में मरने वालों की संख्या में पैदा होने वालों की संख्या की अधिकता को प्राकृतिक वृद्धि कहते हैं। बाहर से आने वाली जनसंख्या को इसमें सम्मिलित नहीं करते हैं।
7. **उत्पादकता / उपजाऊपन:** जनसंख्या की वास्तविकता पैदा करने की संख्या को उत्पादकता कहा जाता है। उत्पादकता सामाजिक तथा प्राकृतिक वृद्धि घटकों पर निर्भर होती है। इसमें अधिक विषमता पाई जाती है।
8. **मानवीय जन्म दर:** प्रति एक हजार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष पैदा होने वालों की औसत संख्या को मानवीय जन्म दर कहा जाता है। जबकि प्रत्येक आयु में व्यक्तियों की उत्पादकता समान नहीं होती है। जनसंख्या अध्ययन विशेषज्ञ प्रत्येक आयु वर्ग के व्यक्तियों की जन्मदर को विशिष्ट मापक के रूप में प्रयुक्त करते हैं।
9. **मानवीय मृत्यु दर:** प्रति एक हजार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष मरने वालों की औसत संख्या को मानवीय मृत्यु दर कहते हैं। यहाँ भी विशेषज्ञ अधिक संवेदनशील मापक का प्रयोग करते हैं। क्योंकि विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों का मानवीय मृत्यु दर समान नहीं होता है। कुछ में मृत्यु दर अधिक होती है तथा कुछ में कम होती है। यह भी सामाजिक तथा परिस्थितिकी के उपर निर्भर करती है।
10. **मानवीय जनसंख्या का घनत्व:** पृथ्वी पर जनसंख्या का वितरण असमान है। मानवीय जनसंख्या का वितरण गाँव नगर, जिला, प्रदेश, राष्ट्र, विश्व तथा किसी विशिष्ट क्षेत्र में विभाजित

किया जाता है। किसी क्षेत्र के भूमि के क्षेत्र का सम्पूर्ण रहने वाले व्यक्तियों की जनसंख्या के योग में भाग देकर ज्ञात किया जा सकता है। प्रति वर्ग किलोमीटर या प्रति वर्ग मील में रहने वालों की औसत संख्या को जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। इसमें जनसंख्या की सघनता तथा विरलता के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। विश्व की औसत जनसंख्या का घनत्व 27 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।

11. विस्तृत सांख्यिकी: जनसंख्या के अध्ययन में सांख्यिकी के विश्लेषण में जो मापक प्राप्त किए जाते हैं, उसे विस्तृत सांख्यिकी कहते हैं।

18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा- डॉ० जे. एस. वालिया
2. भारतीय शिक्षा का इतिहास- लाल एवं शर्मा
3. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ - पी.डी. पाठक
4. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ- डॉ० गुरशरण त्यागी
5. भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास- श्रीमती स्वाति जैन
6. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ - डा० आर. ए. शर्मा

18.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाले कुप्रभावों को स्पष्ट कीजिए।
2. जनसंख्या शिक्षा के संप्रत्यय को विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3. जनसंख्या नियन्त्रण के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।
4. जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण पर पड़ने वाले कुप्रभावों की व्याख्या कीजिए।
5. जनसंख्या सम्बन्धी योजना व नीतियों की विवेचना कीजिए।
6. जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय व साधनों को स्पष्ट कीजिए।